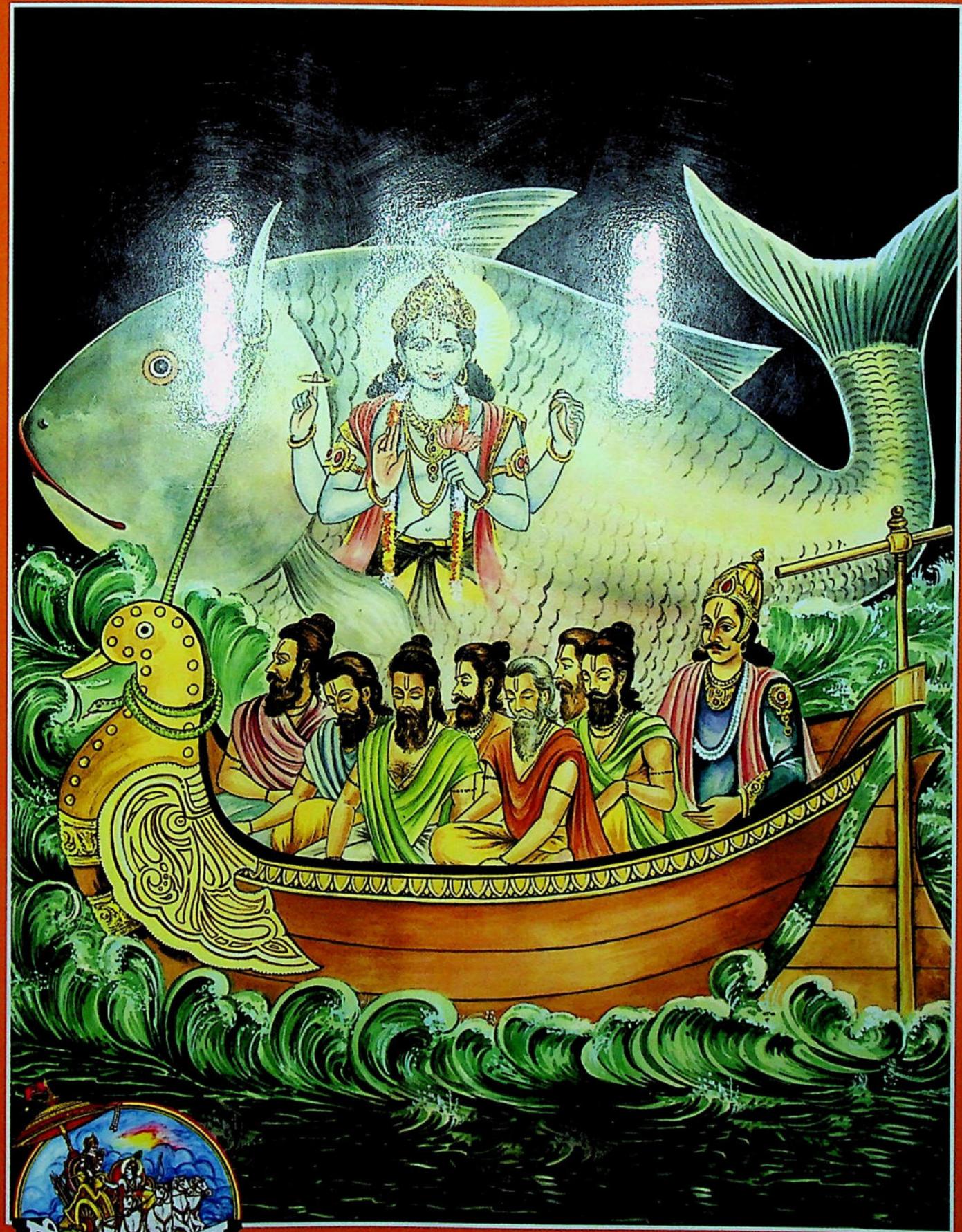


॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# मत्स्यमहापुराण

[ सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित ]



गीताप्रेस गोरखपुर  
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

॥ श्रीहरि ॥

557

# मत्स्यमहापुराण

( सचिन, हिन्दी-अनुवादसहित )



गीताप्रेस, गोरखपुर



# मत्स्यमहापुराण

( सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित )

|        |          |         |          |        |
|--------|----------|---------|----------|--------|
| त्वमेव | माता     | च       | पिता     | त्वमेव |
| त्वमेव | बन्धुश्च | सखा     | त्वमेव । |        |
| त्वमेव | विद्या   | द्रविणं | त्वमेव   |        |
| त्वमेव | सर्वं    | मम      | देवदेव ॥ |        |

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०७६ चौदहवाँ पुनर्मुद्रण ३,०००  
कुल मुद्रण ४६,५००

❖ मूल्य—₹ ३००  
( तीन सौ रुपये )

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५  
( गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान )

फोन : ( ०५५१ ) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१

web : [gitapress.org](http://gitapress.org) e-mail : [booksales@gitapress.org](mailto:booksales@gitapress.org)

गीताप्रेस प्रकाशन [gitapressbookshop.in](http://gitapressbookshop.in) से online खरीदें।

॥ श्रीहरि: ॥

## नम्र निवेदन

अठारह पुराणोंमें मत्स्यपुराण अपना विशिष्ट स्थान रखता है। भगवान् विष्णुके मत्स्यावतारसे सम्बद्ध होनेके कारण यह मत्स्यपुराण कहलाता है। भगवान् मत्स्यके द्वारा राजा वैवस्वत मनु तथा सर्सर्षियोंको जो अत्यन्त दिव्य एवं कल्याणकारी उपदेश दिये गये थे, वे ही मत्स्यपुराणमें संगृहीत हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें जब हयग्रीव नामक असुर वेदादि शास्त्रोंको चुराकर पातालमें चला गया, तब भगवान् ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार किया। भगवान् विष्णुके दस अवतारोंमें मत्स्यावतार सर्वप्रथम है।

वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्यादि सभी सम्प्रदायोंमें मत्स्यपुराणकी समानरूपसे मान्यता है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है, जो २९१ अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसमें भगवान् के मत्स्यावतारकी कथा, मनु-मत्स्य-संवाद, सृष्टि-वर्णन, तत्त्व-मीमांसा, मन्वन्तर तथा पितृवंशका विस्तृत वर्णन है। श्राद्धोंके सांगोपङ्ग निरूपणके साथ चन्द्रवंशी राजाओंका वर्णन भी इस पुराणका पठनीय विषय है। यथाति-चरित्रका वर्णन अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद है, जो भोगमार्गको सर्वथा अनुचित बताकर निवृत्ति एवं त्यागधर्मका आश्रय ग्रहण करनेकी प्रेरणा देता है।

विविध व्रतोंका वर्णन भी इस पुराणकी महती विशेषता है। अनेक व्रतानुष्ठानोंकी विधि, विविध दानोंकी महिमा, शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म, नवग्रहोंका स्वरूप एवं तर्पण-विधिका प्रतिपादन सुन्दर कथाओंके माध्यमसे किया गया है। तदनन्तर प्रयाग-महिमा, भूगोल-खगोलका वर्णन, ज्योतिश्वक, त्रिपुरासुर-संग्राम, तारकासुर-आख्यान, नृसिंह-चरित्र, काशी तथा नर्मदा-माहात्म्य, ऋषियोंका नाम-गोत्र तथा वंश, सती-सावित्रीकी कथा तथा राजधर्मोंका इसमें सरस चित्रण किया गया है।

पुराणोंकी विषयानुक्रमणिका, भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, वसिष्ठादि गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंके वंश-वर्णन, राजनीति, यात्राकाल, स्वजनशास्त्र, शकुनशास्त्र, अंगस्फुरण, ज्योतिषशास्त्र, रत्नविज्ञान, विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाओंके स्वरूप-लक्षण, प्रतिमान-मान तथा निर्माण-विधि, देव-प्रतिष्ठा एवं गृह-निर्माणसम्बन्धी वास्तुविद्या आदि इस पुराणके अन्य उपयोगी विषय हैं। इसमें वर्णित कच-देवयानी-आख्यान, त्रिपुर-वध, पार्वती-परिणय, विभूति द्वादशीव्रत आदिकी कथाएँ अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी हैं। इस पुराणके पठन-पाठन एवं श्रवणके माहात्म्यके विषयमें स्वयं मत्स्यभगवान् ने कहा है—यह पुराण परम पवित्र, आयुकी वृद्धि करनेवाला, कीर्तिवर्धक, महापापोंका नाशक तथा शुभकारक है। इस पुराणके एक श्लोकके एक पादको भी जो पढ़ता है, वह पापोंसे मुक्त होकर श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है तथा दिव्य सुखोंका भोग करता है।

कल्याणके विशेषाङ्करूपमें लेटरप्रेससे पूर्व प्रकाशित यह महत्त्वपूर्ण पुराण बहुत समयसे अनुपलब्ध था। विषयकी उपयोगिता एवं बहुमूल्य पौराणिक साहित्यको जन-सामान्यको उपलब्ध करानेकी दृष्टि एवं पाठकोंके आग्रहको ध्यानमें रखकर 'मत्स्यमहापुराण' सानुवादके इस नवीन संस्करणको ऑफसेटकी सुन्दर छपाई, आकर्षक साज-सज्जा एवं मजबूत जिल्द आदि विशेषताओंसे युक्त करके पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। आशा है, पाठकगण गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य पुराणोंकी भाँति इस पुराणकी महत्त्वपूर्ण सामग्रीके पठन-पाठनके द्वारा अपने आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त करेंगे।

—प्रकाशक

## विषय-सूची

| अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|---|--------------|
| १-     | मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्यनन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें आगामी प्रलयकालकी सूचना देना  | ..... १३     |        | उत्पत्ति  | ..... ३३     |
| २-     | मनुका मत्स्यभगवान्‌से युगान्तविषयक प्रश्न, मत्स्यका प्रलयके स्वरूपका वर्णन करके अन्तर्धान हो जाना, प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मनुका जीवोंको नौकापर चढ़ाकर उसे महामत्स्यके सींगमें शेषनागकी रस्सीसे बाँधना एवं उनसे सृष्टि आदिके विषयमें विविध प्रश्न करना और मत्स्यभगवान्‌का उत्तर देना | ..... १६     | ८-     | प्रत्येक सर्गके अधिपतियोंका अभिषेचन तथा पृथुका राज्याभिषेक                                  | ..... ३७     |
| ३-     | मनुका मत्स्यभगवान्‌से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवान्‌द्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन   | ..... १९     | ९-     | मन्वन्तरोंके चौदह देवताओं और सप्तर्षियोंका विवरण  | ..... ३९     |
| ४-     | पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए— एतद्विषयक मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्‌का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदिसृष्टिका वर्णन  | ..... २३     | १०-    | महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त   | ..... ४२     |
| ५-     | दक्ष-कन्याओंकी उत्पत्ति, कुमार कार्तिकेयका जन्म तथा दक्ष-कन्याओंद्वारा देवयोनियोंका प्रादुर्भाव  | ..... २७     | ११-    | सूर्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन तथा इलाका वृत्तान्त   | ..... ४५     |
| ६-     | कश्यप-वंशका विस्तृत वर्णन  | ..... ३०     | १२-    | इलाका वृत्तान्त तथा इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन   | ..... ५०     |
| ७-     | मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-ब्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी   |              | १३-    | पितृ-वंश-वर्णन तथा सतीके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें देवीके एक सौ आठ नामोंका विवरण                 | ..... ५४     |
|        |  |              | १४-    | अच्छोदाका पितृलोकसे पतन तथा उसकी प्रार्थनापर पितरोंद्वारा उसका पुनरुद्धार                   | ..... ५८     |
|        |  |              | १५-    | पितृ-वंशका वर्णन, पीवरीका वृत्तान्त तथा श्राद्ध-विधिका कथन                                  | ..... ६०     |
|        |  |              | १६-    | श्राद्धोंके विविध भेद, उनके करनेका समय तथा श्राद्धमें निमन्त्रित करनेयोग्य ब्राह्मणके लक्षण | ..... ६३     |
|        |  |              | १७-    | साधारण एवं आभ्युदयिक श्राद्धकी विधिका विवरण   | ..... ६८     |
|        |  |              | १८-    | एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि   | ..... ७४     |
|        |  |              | १९-    | श्राद्धोंमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्यकी प्रासिका विवरण                       | ..... ७६     |
|        |  |              | २०-    | महर्षि कौशिकके पुत्रोंका वृत्तान्त तथा पिपीलिकाकी कथा                                       | ..... ७८     |
|        |  |              | २१-    | ब्रह्मदत्तका वृत्तान्त तथा चार चक्रवाकोंकी गतिका वर्णन                                      | ..... ८०     |
|        |  |              | २२-    | श्राद्धके योग्य समय, स्थान (तीर्थ) तथा कुछ विशेष नियमोंका वर्णन                             | ..... ८४     |

| अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--------|---|--------------|
| २३-    | चन्द्रमाकी उत्पत्ति, उनका दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंके साथ विवाह, चन्द्रमाद्वारा राजसूययज्ञका अनुष्ठान, उनकी तारापर आसक्ति, उनका भगवान् शङ्करके साथ युद्ध तथा ब्रह्माजीका बीच-बचाव करके युद्ध शान्त करना ..... | १०           |        | पास जाना तथा शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना .....  | १२१          |
| २४-    | ताराके गर्भसे बुधकी उत्पत्ति, पुरुरवाका जन्म, पुरुरवा और उर्वशीकी कथा, नहुष-पुत्रोंके वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिका वृत्तान्त .....  | १४           | ३३-    | ययातिका अपने यदु आदि पुत्रोंसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर पूरुको जरावस्था देकर उसकी युवावस्था लेना तथा उसे वर प्रदान करना ..... | १२५          |
| २५-    | कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानीकी सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहनेके पश्चात् मृतसंजीविनी-विद्या प्राप्त करना .....  | १९           | ३४-    | राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना .....  | १२८          |
| २६-    | देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना .....  | १०५          | ३५-    | वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति .....  | १३०          |
| २७-    | देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यके साथ वार्तालाप .....   | १०८          | ३६-    | इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना .....  | १३२          |
| २८-    | शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष .....  | १११          | ३७-    | ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना .....  | १३४          |
| २९-    | शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको सन्तुष्ट करना .....                                    | ११२          | ३८-    | ययाति और अष्टकका संवाद .....  | १३५          |
| ३०-    | सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वन-विहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीके साथ बातचीत तथा विवाह .....   | ११५          | ३९-    | अष्टक और ययातिका संवाद .....  | १३८          |
| ३१-    | ययातिसे देवयानीको पुत्रप्राप्ति, ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्त-मिलन और उनसे एक पुत्रका जन्म .....   | ११९          | ४०-    | ययाति और अष्टकका आश्रमधर्म-सम्बन्धी संवाद .....   | १४२          |
| ३२-    | देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानीका रूठना और अपने पिताके   |              | ४१-    | अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना .....   | १४४          |
|        |   |              | ४२-    | राजा ययातिका वसुमान् और शिविके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना .....  | १४६          |
|        |   |              | ४३-    | ययाति-वंश-वर्णन, यदुवंशका वृत्तान्त तथा कार्तवीर्य अर्जुनकी कथा .....   | १५०          |
|        |   |              | ४४-    | कार्तवीर्यका आदित्यके तेजसे सम्पन्न होकर वृक्षोंको जलाना, महर्षि आपवद्वारा कार्तवीर्यको शाप और क्रोष्टके वंशका वर्णन .....  | १५४          |
|        |   |              | ४५-    | वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तक-मणिकी कथा .....   | १६०          |
|        |   |              | ४६-    | वृष्णि-वंशका वर्णन .....  | १६३          |
|        |   |              | ४७-    | श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन, दैत्योंका   |              |

| अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--------|---|--------------|
|        | इतिहास तथा देवासुर-संग्रामके प्रसङ्गमें<br>विभिन्न अवान्तर कथाएँ  | ..... १६५    |        | उसका माहात्म्य  | ..... २५५    |
| ४८-    | तुर्वसु और हृहृके वंशका वर्णन, अनुके<br>वंश-वर्णनमें बलिकी कथा और<br>कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग                                  | ..... १८८    | ६५-    | अक्षयतृतीया-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                  | ..... २५७    |
| ४९-    | पूरू-वंशके वर्णन-प्रसङ्गमें भरत-वंशकी<br>कथा, भरद्वाजकी उत्पत्ति और उनके<br>वंशका कथन, नीप-वंशका वर्णन तथा<br>पौरवोंका इतिहास   | ..... १९५    | ६६-    | सारस्वत-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                      | ..... २५८    |
| ५०-    | पूरुवंशी नरेशोंका विस्तृत इतिहास  | ..... २०१    | ६७-    | सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय स्नानकी विधि<br>और उसका माहात्म्य    | ..... २६०    |
| ५१-    | अग्नि-वंशका वर्णन तथा उनके<br>भेदोपभेदका कथन  | ..... २०७    | ६८-    | सप्तमीस्त्रपन-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                | ..... २६२    |
| ५२-    | कर्मयोगकी महत्ता  | ..... २११    | ६९-    | भीमद्वादशी-ब्रतका विधान                                       | ..... २६६    |
| ५३-    | पुराणोंकी नामावलि और उनका<br>संक्षिप्त परिचय  | ..... २१४    | ७०-    | पण्यस्त्री-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                   | ..... २७२    |
| ५४-    | नक्षत्र-पुरुष-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य  | ..... २२१    | ७१-    | अशून्यशयन (द्वितीया)-ब्रतकी विधि<br>और उसका माहात्म्य         | ..... २७७    |
| ५५-    | आदित्यशयन-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य  | ..... २२५    | ७२-    | अङ्गारक-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                      | ..... २७९    |
| ५६-    | श्रीकृष्णाष्टमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य  | ..... २२८    | ७३-    | शुक्र और गुरुकी पूजा-विधि                                     | ..... २८३    |
| ५७-    | रोहिणीचन्द्रशयन-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य  | ..... २३०    | ७४-    | कल्याणसप्तमी-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य                 | ..... २८४    |
| ५८-    | तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली,<br>पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा<br>आदिका विधान  | ..... २३३    | ७५-    | विशोक्सप्तमी-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य                 | ..... २८६    |
| ५९-    | वृक्ष लगानेकी विधि  | ..... २३८    | ७६-    | फलसप्तमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                     | ..... २८७    |
| ६०-    | सौभाग्यशयन-ब्रत तथा जगद्धात्री<br>सतीकी आराधना  | ..... २४०    | ७७-    | शर्करासप्तमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                 | ..... २८९    |
| ६१-    | अगस्त्य और वसिष्ठकी दिव्य उत्पत्ति,<br>उर्वशी अप्सराका प्राकट्य और<br>अगस्त्यके लिये अर्ध्य-प्रदान करनेकी<br>विधि एवं माहात्म्य | ..... २४४    | ७८-    | कमलसप्तमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                    | ..... २९०    |
| ६२-    | अनन्ततृतीया-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य  | ..... २४९    | ७९-    | मन्दारसप्तमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                 | ..... २९१    |
| ६३-    | रसकल्याणिनी-ब्रतकी विधि और<br>उसका माहात्म्य  | ..... २५२    | ८०-    | शुभसप्तमी-ब्रतकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                    | ..... २९३    |
| ६४-    | आर्द्रानन्दकरी तृतीया-ब्रतकी विधि और  |              | ८१-    | विशोक्द्वादशी-ब्रतकी विधि                                     | ..... २९४    |
|        | महिमा   |              | ८२-    | गुड-धेनुके दानकी विधि और उसकी<br>महिमा                        | ..... २९७    |
|        |   |              | ८३-    | पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके<br>दानकी विधि और उसका माहात्म्य | ..... २९९    |
|        |   |              | ८४-    | लवणाचलके दानकी विधि और उसका<br>माहात्म्य                      | ..... ३०४    |

| अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|---|--------------|
| ८५-    | गुडपर्वतके दानकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३०५    | १०५-   | प्रयागमें मरनेवालोंकी गति और गो-दानका महत्व   | ..... ३५९    |
| ८६-    | सुवर्णचिलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य   | ..... ३०६    | १०६-   | प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें वहाँके विविध तीर्थोंका वर्णन                                  | ..... ३६१    |
| ८७-    | तिलशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३०७    | १०७-   | प्रयाग-स्थित विविध तीर्थोंका वर्णन  | ..... ३६५    |
| ८८-    | कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३०७    | १०८-   | प्रयागमें अनशन-ब्रत तथा एक मासतकके निवास (कल्पवास)-का महत्व                                     | ..... ३६७    |
| ८९-    | घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३०८    | १०९-   | अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा प्रयागकी महत्ताका वर्णन  | ..... ३७०    |
| ९०-    | रत्नाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य   | ..... ३०९    | ११०-   | जगत्के समस्त पवित्र तीर्थोंका प्रयागमें निवास   | ..... ३७२    |
| ९१-    | रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३१०    | १११-   | प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके निवासका वर्णन  | ..... ३७४    |
| ९२-    | शर्कराशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य तथा राजा धर्ममूर्तिके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें लवणाचल-दानका महत्व | ..... ३११    | ११२-   | भगवान् वासुदेवद्वारा प्रयागके माहात्म्यका वर्णन   | ..... ३७५    |
| ९३-    | शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रहशान्तिकी विधिका वर्णन   | ..... ३१५    | ११३-   | भूगोलका विस्तृत वर्णन   | ..... ३७७    |
| ९४-    | नवग्रहोंके स्वरूपका वर्णन  | ..... ३२८    | ११४-   | भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षका वर्णन   | ..... ३८३    |
| ९५-    | माहेश्वर-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य   | ..... ३२९    | ११५-   | राजा पुरुरवाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त  | ..... ३९०    |
| ९६-    | सर्वफलत्याग-ब्रतका विधान और उसका माहात्म्य   | ..... ३३२    | ११६-   | ऐरावती नदीका वर्णन  | ..... ३९१    |
| ९७-    | आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य  | ..... ३३४    | ११७-   | हिमालयकी अद्भुत छटाका वर्णन   | ..... ३९४    |
| ९८-    | संक्रान्ति-ब्रतके उद्यापनकी विधि   | ..... ३३७    | ११८-   | हिमालयकी अनोखी शोभा तथा अत्रिआश्रमका वर्णन  | ..... ३९६    |
| ९९-    | विभूतिद्वादशी-ब्रतकी विधि और उसका माहात्म्य  | ..... ३३८    | ११९-   | आश्रमस्थ विवरमें पुरुरवाका प्रवेश, आश्रमकी शोभाका वर्णन तथा पुरुरवाकी तपस्या                    | ..... ४०१    |
| १००-   | विभूतिद्वादशीके प्रसङ्गमें राजा पुष्पवाहनका वृत्तान्त  | ..... ३४०    | १२०-   | राजा पुरुरवाकी तपस्या, गन्धवाँ और अप्सराओंकी क्रीड़ा, महर्षि अत्रिका आगमन तथा राजाको वरप्राप्ति | ..... ४०५    |
| १०१-   | साठ ब्रतोंका विधान और माहात्म्य  | ..... ३४४    | १२१-   | कैलास पर्वतका वर्णन, गङ्गाकी सात धाराओंका वृत्तान्त तथा जम्बूद्वीपका विवरण                      | ..... ४०९    |
| १०२-   | स्नान और तर्पणकी विधि  | ..... ३५१    | १२२-   | शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और शाल्मलद्वीपका वर्णन   | ..... ४१५    |
| १०३-   | युधिष्ठिरकी चिन्ता, उनकी महर्षि मार्कण्डेयसे भेंट और महर्षिद्वारा प्रयाग-माहात्म्यका उपक्रम            | ..... ३५४    | १२३-   | गोमेदकद्वीप और पुष्करद्वीपका वर्णन  | ..... ४२३    |
| १०४-   | प्रयाग-माहात्म्य-प्रसङ्गमें प्रयाग-क्षेत्रके विविध तीर्थस्थानोंका वर्णन                                | ..... ३५७    | १२४-   | मत्स्यावतार-कथा-प्रसङ्ग   | ..... ४२८    |
|        |  |              | १२४-   | सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन   | ..... ४२९    |

| अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|--|--------------|
| १२५-   | सूर्यकी गति और उनके रथका वर्णन   | ४३६          |        | बुझाकर त्रिपुरकी रक्षामें नियुक्त करना   |              |
| १२६-   | सूर्य-रथपर प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न देवताओंका अधिरोहण तथा चन्द्रमाकी विचित्र गति  | ४४०          |        | तथा त्रिपुरको मूढ़ीका वर्णन  | ४९७          |
| १२७-   | ग्रहोंके रथका वर्णन और धूवकी प्रशंसा   | ४४६          | १४०-   | देवताओं और दानवोंका भीषण संग्राम, नन्दीश्वरद्वारा विद्युन्मालीका वध, मयका पलायन तथा शङ्करजीकी त्रिपुरपर विजय   | ५०१          |
| १२८-   | देव-गृहों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन   | ४४८          | १४१-   | पुरुरवाका सूर्य-चन्द्रके साथ समागम और पितृ-तर्पण, पर्वसंधिका वर्णन तथा श्राद्धभोजी पितरोंका निरूपण   | ५०८          |
| १२९-   | त्रिपुर-निर्माणका वर्णन  | ४५४          | १४२-   | युगोंकी काल-गणना तथा त्रेतायुगका वर्णन   | ५१५          |
| १३०-   | दानवश्रेष्ठ मयद्वारा त्रिपुरकी रचना  | ४५८          | १४३-   | यज्ञकी प्रवृत्ति तथा विधिका वर्णन  | ५२०          |
| १३१-   | त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्र-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार  | ४६०          | १४४-   | द्वापर और कलियुगकी प्रवृत्ति तथा उनके स्वभावका वर्णन, राजा प्रमतिका वृत्तान्त तथा पुनः कृतयुगके प्रारम्भका वर्णन   | ५२४          |
| १३२-   | त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना   | ४६५          | १४५-   | युगानुसार प्राणियोंकी शरीर-स्थिति एवं वर्ण-व्यवस्थाका वर्णन, श्रौत-स्मार्त, धर्म, तप, यज्ञ, क्षमा, शाम, दया आदि गुणोंका लक्षण, चातुर्होत्रकी विधि तथा पाँच प्रकारके ऋषियोंका वर्णन | ५३२          |
| १३३-   | त्रिपुर-विध्वंसार्थ शिवजीके विचित्र रथका निर्माण और देवताओंके साथ उनका युद्धके लिये प्रस्थान   | ४६८          | १४६-   | बज्राङ्गकी उत्पत्ति, उसके द्वारा इन्द्रका बन्धन, ब्रह्मा और कश्यपद्वारा समझाये जानेपर इन्द्रको बन्धनमुक्त करना, बज्राङ्गका विवाह, तप तथा ब्रह्माद्वारा वरदान                       | ५४०          |
| १३४-   | देवताओंसहित शङ्करजीका त्रिपुरपर आक्रमण, त्रिपुरमें देवर्षि नारदका आगमन तथा युद्धार्थ असुरोंकी तैयारी   | ४७३          | १४७-   | ब्रह्माके वरदानसे तारकासुरकी उत्पत्ति और उसका राज्याभिषेक  | ५४७          |
| १३५-   | शङ्करजीकी आज्ञासे इन्द्रका त्रिपुरपर आक्रमण, दोनों सेनाओंमें भीषण संग्राम, विद्युन्मालीका वध, देवताओंकी विजय और दानवोंका युद्धविमुख होकर त्रिपुरमें प्रवेश | ४७६          | १४८-   | तारकासुरकी तपस्या और ब्रह्माद्वारा उसे वरदानप्राप्ति, देवासुरसंग्रामकी तैयारी तथा दोनों दलोंकी सेनाओंका वर्णन  | ५४९          |
| १३६-   | मयका चिन्तित होकर अद्भुत बावलीका निर्माण करना, नन्दिकेश्वर और तारकासुरका भीषण युद्ध तथा प्रमथगणोंकी मारसे विमुख होकर दानवोंका त्रिपुर-प्रवेश               | ४८३          | १४९-   | देवासुर-संग्रामका प्रारम्भ   | ५५८          |
| १३७-   | वापी-शोषणसे मयको चिन्ता, मय आदि दानवोंका त्रिपुरसहित समुद्रमें प्रवेश तथा शङ्करजीका इन्द्रको युद्ध करनेका आदेश   | ४८८          | १५०-   | देवताओं और असुरोंकी सेनाओंमें अपनी-अपनी जोड़ीके साथ घमासान युद्ध, देवताओंके विकल होनेपर भगवान् विष्णुका युद्धभूमिमें आगमन और कालनेमिको परास्त कर उसे जीवित                         |              |
| १३८-   | देवताओं और दानवोंमें घमासान युद्ध तथा तारकासुरका वध  | ४९१          |        |  |              |
| १३९-   | दानवराज मयका दानवोंको समझा-  |              |        |  |              |

| अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--------|--|--------------|
|        | छोड़ देना   | ..... ५६०    |        | वीरकद्वारा रोका जाना   | ..... ६५६    |
| १५१-   | भगवान् विष्णुपर दानवोंका सामूहिक आक्रमण, भगवान् विष्णुका अद्भुत युद्ध-कौशल और उनके द्वारा दानवसेनापति ग्रसनकी मृत्यु  | ..... ५७८    | १५८-   | वीरकद्वारा पार्वतीकी स्तुति, पार्वती और शङ्करका पुनः समागम, अग्निको शाप, कृत्तिकाओंकी प्रतिज्ञा और स्कन्दकी उत्पत्ति   | ..... ६५८    |
| १५२-   | भगवान् विष्णुका मथन आदि दैत्योंके साथ भीषण संग्राम और अन्तमें घायल होकर युद्धसे पलायन   | ..... ५८१    | १५९-   | स्कन्दकी उत्पत्ति, उनका नामकरण, उनसे देवताओंकी प्रार्थना और उनके द्वारा देवताओंको आश्वासन, तारकके पास देवदूतद्वारा संदेश भेजा जाना और सिद्धोंद्वारा कुमारकी स्तुति                 | ..... ६६२    |
| १५३-   | भगवान् विष्णु और इन्द्रका परस्पर उत्साहवर्धक वार्तालाप, देवताओंद्वारा पुनः सैन्य-संगठन, इन्द्रका असुरोंके साथ भीषण युद्ध, गजासुर और जम्भासुरकी मृत्यु, तारकासुरका घोर संग्राम और उसके द्वारा भगवान् विष्णुसहित देवताओंका बंदी बनाया जाना  | ..... ५८४    | १६०-   | तारकासुर और कुमारका भीषण युद्ध तथा कुमारद्वारा तारकका वध   | ..... ६६६    |
| १५४-   | तारकके आदेशसे देवताओंकी बन्धन-मुक्ति, देवताओंका ब्रह्माके पास जाना और अपनी विपत्तिगाथा सुनाना, ब्रह्माद्वारा तारक-वधके उपायका वर्णन, रात्रिदेवीका प्रसङ्ग, उनका पार्वतीरूपमें जन्म, काम-दहन और रतिकी प्रार्थना, पार्वतीकी तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह तथा पार्वतीका वीरकको पुत्ररूपमें स्वीकार करना | ..... ६०१    | १६१-   | हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे वरप्राप्ति, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, विष्णुद्वारा देवताओंको अभयदान, भगवान् विष्णुका नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुकी विचित्र सभामें प्रवेश | ..... ६६८    |
| १५५-   | भगवान् शिवद्वारा पार्वतीके वर्णपर आक्षेप, पार्वतीका वीरकको अन्तःपुरका रक्षक नियुक्त कर पुनः तपश्चर्याके लिये प्रस्थान   | ..... ६५०    | १६२-   | प्रह्लादद्वारा भगवान् नरसिंहका स्वरूप-वर्णन तथा नरसिंह और दानवोंका भीषण युद्ध  | ..... ६७५    |
| १५६-   | कुसुमामोदिनी और पार्वतीकी गुप्त मन्त्रणा, पार्वतीका तपस्यामें निरत होना, आडि दैत्यका पार्वती-रूपमें शङ्करके पास जाना और मृत्युको प्राप्त होना तथा पार्वतीद्वारा वीरकको शाप  | ..... ६५२    | १६३-   | नरसिंह और हिरण्यकशिपुका भीषण युद्ध, दैत्योंको उत्पातदर्शन, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, नरसिंहद्वारा हिरण्यकशिपुका वध तथा ब्रह्माद्वारा नरसिंहकी स्तुति                                 | ..... ६७८    |
| १५७-   | पार्वतीद्वारा वीरकको शाप, ब्रह्माका पार्वती तथा एकानंशाको वरदान, एकानंशाका विष्ण्याचलके लिये प्रस्थान, पार्वतीका भवनद्वारपर पहुँचना और  |              | १६४-   | पद्मोद्धवके प्रसङ्गमें मनुद्वारा भगवान् विष्णुसे सृष्टिसम्बन्धी विविध प्रश्न और भगवान्‌का उत्तर  | ..... ६८५    |
| १५८-   |   |              | १६५-   | चारों युगोंकी व्यवस्थाका वर्णन   | ..... ६८८    |
| १५९-   |   |              | १६६-   | महाप्रलयका वर्णन   | ..... ६९०    |
|        |   |              | १६७-   | भगवान् विष्णुका एकार्णवके जलमें शयन, मार्कण्डेयको आश्र्य तथा भगवान् विष्णु और मार्कण्डेयका संवाद   | .... ६९२     |
|        |   |              | १६८-   | पञ्चमहाभूतोंका प्राकट्य तथा नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति   | ..... ६९७    |
|        |   |              | १६९-   | नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव तथा उस कमलका साङ्गोपाङ्ग वर्णन   | ..... ६९८    |
|        |   |              | १७०-   | मधु-कैटभकी उत्पत्ति, उनका ब्रह्माके  |              |

| अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|--|--------------|
|        | साथ वार्तालाप और भगवानद्वारा वध .....  | ७००          |        | और उसका माहात्म्य तथा हरिकेशको<br>शिवजीद्वारा वरप्राप्ति .....     | ७४४          |
| १७१-   | ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति, दक्षकी<br>बारह कन्याओंका वृत्तान्त, ब्रह्मद्वारा<br>सृष्टिका विकास तथा विविध<br>देवयोनियोंकी उत्पत्ति .....   | ७०२          | १८१-   | अविमुक्तक्षेत्र-(वाराणसी) का माहात्म्य ....                        | ७५३          |
| १७२-   | तारकामय-संग्रामकी भूमिका एवं<br>भगवान् विष्णुका महासमुद्रके रूपमें<br>वर्णन, तारकादि असुरोंके अत्याचारसे<br>दुःखी होकर देवताओंकी भगवान्<br>विष्णुसे प्रार्थना और भगवान्का उन्हें<br>आश्वासन .....            | ७०७          | १८२-   | अविमुक्त-माहात्म्य .....   | ७५५          |
| १७३-   | दैत्यों और दानवोंकी युद्धार्थ तैयारी .....   | ७११          | १८३-   | अविमुक्तमाहात्म्यके प्रसङ्गमें शिव-<br>पार्वतीका प्रश्नोत्तर ..... | ७५७          |
| १७४-   | देवताओंका युद्धार्थ अभियान .....   | ७१३          | १८४-   | काशीकी महिमाका वर्णन .....   | ७६५          |
| १७५-   | देवताओं और दानवोंका घमासान युद्ध,<br>मयकी तामसी माया, और्वाग्निकी उत्पत्ति<br>और महर्षि ऊर्जद्वारा हिरण्यकशिपुको<br>उसकी प्राप्ति .....  | ७१७          | १८५-   | वाराणसी-माहात्म्य .....  | ७७०          |
| १७६-   | चन्द्रमाकी सहायतासे वरुणद्वारा<br>और्वाग्नि-मायाका प्रशमन, मयद्वारा<br>शैली-मायाका प्राकट्य, भगवान्<br>विष्णुके आदेशसे अग्नि और वायुद्वारा<br>उस मायाका निवारण तथा कालनेमिका<br>रणभूमिमें आगमन .....         | ७२३          | १८६-   | नर्मदा-माहात्म्यका उपक्रम .....                                    | ७७६          |
| १७७-   | देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंकी अद्भुत<br>मुठभेड़, कालनेमिका भीषण पराक्रम<br>और उसकी देवसेनापर विजय .....  | ७२७          | १८७-   | नर्मदा-माहात्म्यके प्रसङ्गमें पुनः<br>त्रिपुराख्यान .....          | ७८०          |
| १७८-   | कालनेमि और भगवान् विष्णुका<br>रोषपूर्वक वार्तालाप और भीषण युद्ध,<br>विष्णुके चक्रके द्वारा कालनेमिका वध<br>और देवताओंको पुनः निज पदकी प्राप्ति ..  | ७३२          | १८८-   | त्रिपुर-दाहका वृत्तान्त .....                                      | ७८४          |
| १७९-   | शिवजीके साथ अन्धकासुरका युद्ध,<br>शिवजीद्वारा मातृकाओंकी सृष्टि,<br>शिवजीके हाथों अन्धककी मृत्यु और<br>उसे गणेशत्वकी प्राप्ति, मातृकाओंकी<br>विध्वंसलीला तथा विष्णुनिर्मित<br>देवियोंद्वारा उनका अवरोध ..... | ७३८          | १८९-   | नर्मदा-कावेरी-संगमका माहात्म्य .....                               | ७९१          |
| १८०-   | वाराणसी-माहात्म्यके प्रसङ्गमें हरिकेश<br>यक्षकी तपस्या, अविमुक्तकी शोभा  |              | १९०-   | नर्मदाके तटवर्ती तीर्थ .....                                       | ७९२          |
|        |  |              | १९१-   | नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य .....                         | ७९४          |
|        |  |              | १९२-   | गोत्रप्रवर-निरूपण-प्रसङ्गमें भृगुवंशकी<br>परम्पराका विवरण .....    | ८०३          |
|        |  |              | १९३-   | प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि अङ्गिराके वंशका<br>वर्णन .....            | ८०६          |
|        |  |              | १९४-   | नर्मदातटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य .....                            | ८१२          |
|        |  |              | १९५-   | गोत्रप्रवर-निरूपण-प्रसङ्गमें भृगुवंशकी<br>परम्पराका विवरण .....    | ८१६          |
|        |  |              | १९६-   | प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि अङ्गिराके वंशका<br>वर्णन .....            | ८१९          |
|        |  |              | १९७-   | महर्षि अत्रिके वंशका वर्णन .....                                   | ८२३          |
|        |  |              | १९८-   | प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि विश्वामित्रके<br>वंशका वर्णन .....        | ८२४          |
|        |  |              | १९९-   | गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि कश्यपके<br>वंशका वर्णन .....           | ८२५          |
|        |  |              | २००-   | गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि वसिष्ठकी<br>शाखाका कथन .....           | ८२७          |
|        |  |              | २०१-   | प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि पराशरके वंशका<br>वर्णन .....              | ८२९          |
|        |  |              | २०२-   | गोत्रप्रवरकीर्तनमें महर्षि अगस्त्य,<br>पुलह, पुलस्त्य और क्रतुकी   |              |

| अध्याय | विषय  | पृष्ठ-संख्या | अध्याय   | विषय                          | पृष्ठ-संख्या |
|--------|---|--------------|--|-------------------------------|--------------|
|        | शाखाओंका वर्णन  | ..... ८३२    |  | २२६- सामान्य राजनीतिका निरूपण | ..... ८८७    |
| २०३-   | प्रवरकीर्तनमें धर्मके वंशका वर्णन   | ..... ८३३    | २२७- दण्डनीतिका निरूपण   | ..... ८८९                     |              |
| २०४-   | श्राद्धकल्प—पितृगाथा-कीर्तन   | ..... ८३४    | २२८- अद्भुत शान्तिका वर्णन   | ..... ९०५                     |              |
| २०५-   | धेनु-दान-विधि   | ..... ८३६    | २२९- उत्पातोंके भेद तथा कतिपय<br>ऋतुस्वभावजन्य शुभदायक अद्भुतोंका<br>वर्णन   | ..... ९०८                     |              |
| २०६-   | कृष्णमृगचर्मके दानकी विधि और<br>उसका महात्म्य                                   | ..... ८३७    | २३०- अद्भुत उत्पातके लक्षण तथा उनकी<br>शान्तिके उपाय   | ..... ९१०                     |              |
| २०७-   | उत्सर्ग किये जानेवाले वृषके लक्षण,<br>वृषोत्सर्गका विधान और उसका महत्व          | ..... ८४०    | २३१- अग्निसम्बन्धी उत्पातके लक्षण तथा<br>उनकी शान्तिके उपाय  | ..... ९११                     |              |
| २०८-   | सावित्री और सत्यवान्‌का चरित्र  | ..... ८४३    | २३२- वृषजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी<br>शान्तिके उपाय   | ..... ९१२                     |              |
| २०९-   | सत्यवान्‌का सावित्रीको वनकी शोभा<br>दिखाना                                      | ..... ८४५    | २३३- वृष्टिजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी<br>शान्तिके उपाय  | ..... ९१४                     |              |
| २१०-   | यमराजका सत्यवान्‌के प्राणको बाँधना<br>तथा सावित्री और यमराजका वार्तालाप         | .... ८४८     | २३४- जलाशयजनित विकृतियाँ और उनकी<br>शान्तिके उपाय  | ..... ९१५                     |              |
| २११-   | सावित्रीको यमराजसे द्वितीय<br>वरदानकी प्राप्ति                                  | ..... ८५०    | २३५- प्रसवजनित विकारका वर्णन और<br>उसकी शान्ति   | ..... ९१५                     |              |
| २१२-   | यमराज-सावित्री-संवाद तथा<br>यमराजद्वारा सावित्रीको तृतीय<br>वरदानकी प्राप्ति    | ..... ८५२    | २३६- उपस्कर-विकृतिके लक्षण और<br>उनकी शान्ति   | ..... ९१६                     |              |
| २१३-   | सावित्रीकी विजय और सत्यवान्‌की<br>बन्धन-मुक्ति                                  | ..... ८५४    | २३७- पशु-पक्षीसम्बन्धी उत्पात और<br>उनकी शान्ति  | ..... ९१७                     |              |
| २१४-   | सत्यवान्‌को जीवनलाभ तथा<br>पत्नीसहित राजाको नेत्रज्योति एवं<br>राज्यकी प्राप्ति | ..... ८५६    | २३८- राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाश-<br>सूचक लक्षण और उनकी शान्ति   | ..... ९१८                     |              |
| २१५-   | राजाका कर्तव्य, राजकर्मचारियोंके लक्षण<br>तथा राजधर्मका निरूपण                  | ..... ८५७    | २३९- ग्रहयागका विधान   | ..... ९१९                     |              |
| २१६-   | राजकर्मचारियोंके धर्मका वर्णन   | ..... ८६४    | २४०- राजाओंकी विजयार्थ यात्राका विधान  | ..... ९२२                     |              |
| २१७-   | दुर्ग-निर्माणकी विधि तथा राजाद्वारा<br>दुर्गमें संग्रहणीय उपकरणोंका विवरण       | .... ८६७     | २४१- अङ्गस्फुरणके शुभाशुभ फल   | ..... ९२४                     |              |
| २१८-   | दुर्गमें संग्राह्य ओषधियोंका वर्णन  | ..... ८७३    | २४२- शुभाशुभ स्वप्रोंके लक्षण  | ..... ९२६                     |              |
| २१९-   | विषयुक्त पदार्थोंके लक्षण एवं उससे<br>राजाके बचनेके उपाय                        | ..... ८७६    | २४३- शुभाशुभ शकुनोंका निरूपण   | ..... ९२८                     |              |
| २२०-   | राजधर्म एवं सामान्य नीतिका वर्णन  | ..... ८७८    | २४४- वामन-प्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें श्रीभगवान्-<br>द्वारा अदितिको वरदान   | ..... ९३०                     |              |
| २२१-   | दैव और पुरुषार्थका वर्णन  | ..... ८८२    | २४५- बलिद्वारा विष्णुकी निन्दापर प्रह्लादका<br>उन्हें शाप, बलिका अनुनय, ब्रह्माजी-<br>द्वारा वामनभगवान्‌का स्तवन, भगवान्-<br>वामनका देवताओंको आश्वासन तथा<br>उनका बलिके यज्ञके लिये प्रस्थान | ..... ९३४                     |              |
| २२२-   | साम-नीतिका वर्णन  | ..... ८८३    | २४६- बलि-शुक्र-संवाद, वामनका बलिके<br>यज्ञमें पदार्पण, बलिद्वारा उन्हें तीन  |                               |              |
| २२३-   | नीति चतुष्टयीके अन्तर्गत भेद-नीतिका<br>वर्णन                                    | ..... ८८४    |  |                               |              |
| २२४-   | दान-नीतिकी प्रशंसा  | ..... ८८५    |  |                               |              |
| २२५-   | दण्डनीतिका वर्णन  | ..... ८८६    |  |                               |              |

| अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या | अध्याय | विषय   | पृष्ठ-संख्या |
|--------|--|--------------|--------|--|--------------|
|        | डग पृथ्वीका दान, वामनद्वारा बलिका  |              | २६५-   | प्रतिमाके अधिवासन आदिकी विधि   | ..... १०१३   |
|        | बन्धन और वर प्रदान   | ..... ९४२    | २६६-   | प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी विधि   | ..... १०१७   |
| २४७-   | अर्जुनके वाराहावतारविषयक प्रश्न<br>करनेपर शौनकजीद्वारा भगवत्स्वरूपका<br>वर्णन  | ..... ९४८    | २६७-   | देव (प्रतिमा)-प्रतिष्ठाके अङ्गभूत<br>अभिषेक-स्नानका निरूपण           | ..... १०२२   |
| २४८-   | वराहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्याक्षद्वारा<br>रसातलमें ले जायी गयी पृथ्वीदेवीद्वारा<br>यज्ञवराहका स्तवन और भगवान्‌द्वारा<br>उनका उद्घार | ..... ९५२    | २६८-   | वास्तु-शान्तिकी विधि   | ..... १०२५   |
| २४९-   | अमृतप्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका<br>उपक्रम और वारुणी (मंदिरा)-का<br>प्रादुर्भाव  | ..... ९५७    | २६९-   | प्रासादोंके भेद और उनके निर्माणिकी<br>विधि                           | ..... १०२८   |
| २५०-   | अमृतार्थ समुद्र-मन्थन करते समय<br>चन्द्रमासे लेकर विषतकका प्रादुर्भाव  | ..... ९६३    | २७०-   | प्रासाद-संलग्न मण्डपोंके नाम, स्वरूप,<br>भेद और उनके निर्माणिकी विधि | ..... १०३२   |
| २५१-   | अमृतका प्राकृत्य, मोहिनीरूपधारी<br>भगवान् विष्णुद्वारा देवताओंका अमृत-<br>पान तथा देवासुरसंग्राम   | ..... ९६८    | २७१-   | राजवंशानुकीर्तन  | ..... १०३५   |
| २५२-   | वास्तुके प्रादुर्भाविकी कथा  | ..... ९७१    | २७२-   | कलियुगके प्रद्योतवंशी आदि<br>राजाओंका वर्णन                          | ..... १०३७   |
| २५३-   | वास्तु-चक्रका वर्णन  | ..... ९७३    | २७३-   | आन्ध्रवंशीय, शकवंशीय एवं यवनादि<br>राजाओंका संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण | ..... १०४०   |
| २५४-   | वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत राजप्रासाद<br>आदिकी निर्माण-विधि  | ..... ९७७    | २७४-   | घोडश दानान्तर्गत तुलादानका वर्णन                                     | ..... १०४६   |
| २५५-   | वास्तुविषयक वेदिका विवरण   | ..... ९८१    | २७५-   | हिरण्यगर्भदानकी विधि   | ..... १०५३   |
| २५६-   | वास्तु-प्रकरणमें गृह-निर्माणविधि   | ..... ९८३    | २७६-   | ब्रह्माण्डदानकी विधि   | ..... १०५५   |
| २५७-   | गृहनिर्माण (वास्तुकार्य)-में ग्राह्य काष्ठ   | ..... ९८६    | २७७-   | कल्पपादप-दान-विधि  | ..... १०५७   |
| २५८-   | देवप्रतिमाका प्रमाण-निरूपण   | ..... ९८८    | २७८-   | गोसहस्र-दानकी विधि   | ..... १०५९   |
| २५९-   | प्रतिमाओंके लक्षण, मान, आकार<br>आदिका कथन  | ..... ९९३    | २७९-   | कामधेनु-दानकी विधि   | ..... १०६२   |
| २६०-   | विविध देवताओंकी प्रतिमाओंका वर्णन  | .... ९९६     | २८०-   | हिरण्याश्व-दानकी विधि  | ..... १०६३   |
| २६१-   | सूर्यादि विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाके<br>स्वरूप, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी<br>विधि  | ..... १००१   | २८१-   | हिरण्याश्वरथ-दानकी विधि  | ..... १०६५   |
| २६२-   | पीठिकाओंके भेद, लक्षण और फल  | ..... १००५   | २८२-   | हेमहस्तरथ-दानकी विधि   | ..... १०६६   |
| २६३-   | शिवलिङ्गके निर्माणिकी विधि   | ..... १००७   | २८३-   | पञ्चलाङ्गल (हल) प्रदानकी<br>विधि                                     | ..... १०६८   |
| २६४-   | प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यज्ञाङ्गरूप<br>कुण्डादिके निर्माणिकी विधि   | ..... १०१०   | २८४-   | हेमधरा (सुवर्णमयी पृथ्वी)-दानकी<br>विधि                              | ..... १०७०   |
|        |  |              | २८५-   | विश्वचक्र-दानकी विधि   | ..... १०७१   |
|        |  |              | २८६-   | कनककल्पलता-दानकी विधि  | ..... १०७३   |
|        |  |              | २८७-   | सप्तसागर-दानकी विधि  | ..... १०७५   |
|        |  |              | २८८-   | रत्नधेनु-दानकी विधि  | ..... १०७६   |
|        |  |              | २८९-   | महाभूतघट-दानकी विधि  | ..... १०७८   |
|        |  |              | २९०-   | कल्पानुकीर्तन  | ..... १०७९   |
|        |  |              | २९१-   | मत्स्यपुराणिकी अनुक्रमणिका<br>पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म         | ..... १०८२   |
|        |  |              |        |  | ..... १०८४   |

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

# मत्स्यमहापुराण

## पहला अध्याय

मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ,  
भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्यनन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें  
आगामी प्रलयकालकी सूचना देना

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः ।  
भवन्तु विष्णभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः ॥ १

पातालादुत्पतिष्ठोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छभिघाता-  
दूर्धर्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति ।  
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्ववाना-  
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम् ॥ २

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।  
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ ३

अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः ।  
त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे ॥ ४

सूतमेकाग्रमासीनं नैमित्तिरण्यवासिनः ।  
मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम् ॥ ५

प्रचण्ड वेगसे प्रवृत्त हुए ताण्डव नृत्यके आवेशमें  
जिनके द्वारा दिग्गजगण दूर फेंक दिये जाते हैं, उन  
भगवान् शंकरके चरणकमल (हम सभीके) विष्णोंका  
विनाश करें । मत्स्यावतारके समय पाताललोकसे ऊपरको  
उछलते हुए जिन भगवान् विष्णुकी पूँछके आघातसे  
समुद्र ऊपरको उछल पड़ते हैं तथा ब्रह्माण्ड-खण्डोंके  
सम्पर्कसे उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तताके कारण सम्पूर्ण  
पृथ्वीमण्डलको व्यास करके पुनः नीचे गिरते हैं, उन  
भगवान्के मुखसे उच्चरित हुई श्रुतियोंकी ध्वनि आपलोगोंके  
अमङ्गलका विनाश करे । नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा  
सरस्वतीदेवीको नमस्कार कर तत्पश्चात् जय (महाभारत,  
पुराण आदि)-का पाठ करना चाहिये । जो अजन्मा  
होनेपर भी क्रियाके सम्पर्कसे 'नारायण' नामसे स्मरण  
किये जाते हैं, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) रूप हैं एवं  
त्रिवेद (ऋग्, यजुः, साम) जिनका स्वरूप है, उन  
स्वयम्भू भगवान्को नमस्कार है ॥ १—४ ॥

एक बार दीर्घकालिक यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर  
नैमित्तिरण्यनिवासी शौनक आदि मुनियोंने एकाग्रचित्तसे  
बैठे हुए सूतजीका बारंबार अभिनन्दन करके उनसे

१. ग्रन्थकारके दो मङ्गल-श्लोकोंमें शिव-विष्णुकी वन्दनासे ग्रन्थकी गम्भीरता एवं शिव-विष्णु-उभयपरकता सिद्ध होती है । ४ ।  
२८ आदिमें भी शिवसे ही सृष्टि निर्दिष्ट है ।

२. महाभारतकी नीलकण्ठी व्याख्या एवं भविष्यपुराण १ । ४ । ८६—८८ के 'अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा । विष्णुधर्मादयो  
धर्माः शिवधर्माश्च भारत ॥ कार्ण्ण वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः ।'...जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥'—इस वचनके अनुसार  
रामायण, महाभारत तथा सभी पुराण, विष्णुधर्म, शिवधर्म आदि 'जय' कहे जाते हैं ।

प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च।  
 कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः ॥ ६  
 कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ।  
 तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः ॥ ७  
 कथं ससर्ज भगवाँल्लोकनाथश्चराचरम्।  
 कस्माच्च भगवान् विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः ॥ ८  
 भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वं च केन हि।  
 कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः ॥ ९  
 सर्वमेतत् समाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्।  
 त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृमिरिह जायते ॥ १०

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्मिदानीं शृणुत द्विजाः।  
 मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः ॥ ११  
 पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः।  
 पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः ॥ १२  
 मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मगुणसंयुतः।  
 समदुःखसुखो वीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम् ॥ १३  
 बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते।  
 वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः ॥ १४  
 एवमुक्तोऽब्रवीद् राजा प्रणम्य स पितामहम्।  
 एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥ १५  
 भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।  
 भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते ॥ १६  
 एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत।  
 पुष्पवृष्टिः सुमहती खात् पपात सुरार्पिता ॥ १७

पुराणसम्बन्धिनी धार्मिक एवं सुन्दर कथाओंके प्रसङ्गमें इस दीर्घसंहिता (अर्थात् मत्स्यपुराण)-के विषयमें इस प्रकारकी जिज्ञासा प्रकट की—‘निष्पाप सूतजी! आपने हमलोगोंके प्रति जिन पुराणोंका वर्णन किया है, उन्हीं अमृततुल्य पुराणोंको पुनः श्रवण करनेकी हमलोगोंकी अभिलाषा है। मुने! ऐश्वर्यशाली जगदीश्वरने कैसे इस चराचर विश्वकी सृष्टि की तथा उन भगवान् विष्णुको किस कारण मत्स्यरूप धारण करना पड़ा? साथ ही शंकरजीको भी भैरवत्व एवं पुरारित्वकी पदवी किस निमित्तसे प्राप्त हुई? तथा वे वृषभध्वज कपालमालाधारी कैसे हो गये? सूतजी! इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि इस विषयमें आपके अमृत-सदृश वचनोंको सुननेसे तृप्ति नहीं हो रही है ॥५—१०॥

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! पूर्वकालमें भगवान् गदाधरने जिस मत्स्यपुराणका वर्णन किया था, इस समय उसीका विवरण (आपलोग) सुनें। यह पुण्यप्रद, परम पवित्र और आयुवर्धक है। प्राचीनकालमें सूर्यपुत्र महाराज (वैवस्वत) मनुने\*, जो क्षमाशील, सम्पूर्ण आत्मगुणोंसे सम्पन्न, सुख-दुःखको समान समझनेवाले एवं उत्कृष्ट वीर थे, पुत्रको राज्य-भार सौंपकर मलयाचलके एक भागमें जाकर घोर तपका अनुष्ठान किया था। वहाँ उन्हें उत्तम योगकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष व्यतीत होनेपर कमलासन ब्रह्मा प्रसन्न होकर वरदातारूपमें प्रकट हुए और राजासे बोले—‘वर माँगो!’ इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर वे महाराज मनु पितामह ब्रह्माको प्रणाम करके बोले—‘भगवन्! मैं आपसे केवल एक सर्वश्रेष्ठ वर माँगना चाहता हूँ। (वह यह है कि) प्रलयके उपस्थित होनेपर मैं सम्पूर्ण स्थावर-जड़मरूप जीवसमूहकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।’ तब विश्वात्मा ब्रह्मा ‘एवमस्तु—ऐसा ही हो’ कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय आकाशसे देवताओंद्वारा की गयी महती पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ११—१७॥

\* भागवतादिके अनुसार ये सत्यव्रत राजा हैं, जो आगे वैवस्वत मनु हुए हैं।

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्।  
 पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८  
 दृष्टा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः।  
 रक्षणायाकरोद् यत्रं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९  
 अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः।  
 सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २०  
 स तमादाय मणिके प्राक्षिपञ्जलचारिणम्।  
 तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१  
 पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम्।  
 स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२  
 ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद् रविनन्दनः।  
 यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३  
 क्षिसोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम्।  
 तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४  
 ततः स मनुना क्षिसो गङ्गायामप्यवर्धत ।  
 यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५  
 यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः।  
 तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः ॥ २६  
 अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदूक कथं भवेत्।  
 योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद् वपुः ॥ २७  
 ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव ।  
 हृषीकेश जगन्नाथ जगद्वाम नमोऽस्तु ते ॥ २८  
 एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः।  
 साधु साधिवति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ ॥ २९  
 अचिरेणौव कालेन मेदिनी मेदिनीपते।  
 भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥ ३०  
 नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता।  
 महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ ३१  
 स्वेदाण्डजोद्दिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः।  
 अस्यां निधाय सर्वास्ताननाथान् पाहि सुब्रत ॥ ३२  
 युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौरूप।  
 शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि ॥ ३३

एक समयकी बात है, आश्रममें पितृ-तर्पण करते हुए महाराज मनुकी हथेलीपर जलके साथ ही एक मछली आ गिरी। उस मछलीके रूपको देखकर वे नरेश दयार्द्र हो गये तथा उसे उस कमण्डलमें डालकर उसकी रक्षाका प्रयत्न करने लगे। एक ही दिन-रातमें वह (वहाँ) मत्स्यरूपसे सोलह अङ्गुल बड़ा हो गया और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों कहने लगा। तब राजाने उस जलचारी जीवको मिट्टीके एक बड़े घड़ेमें डाल दिया। वहाँ भी वह एक (ही) रातमें तीन हाथ बढ़ गया। पुनः उस मत्स्यने सूर्यपुत्र मनुसे आर्तवाणीमें कहा—'राजन्! मैं आपकी शरणमें हूँ; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तदनन्तर उन सूर्य-नन्दन (वैवस्वत मनु)-ने उस मत्स्यको कुएँमें रख दिया, परंतु जब वह मत्स्य उस कुएँमें भी न अँट सका, तब राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया। वहाँ वह पुनः एक योजन बड़े आकारका हो गया और दीन होकर कहने लगा—'नृपत्रेष्ठ ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तत्पश्चात् मनुने उसे गङ्गामें छोड़ दिया। जब उसने वहाँ और भी विशाल रूप धारण कर लिया, तब भूपालने उसे समुद्रमें डाल दिया। जब उस मत्स्यने सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लिया, तब मनुने भयभीत होकर उससे पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं? अथवा वासुदेव भगवान् हैं, अन्यथा दूसरा कोई ऐसा कैसे हो सकता है? भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनोंके समान विस्तारवाला शरीर किसका हो सकता है? केशव ! मुझे ज्ञात हो गया कि 'आप मत्स्यका रूप धारण करके मुझे खिन्न कर रहे हैं। हृषीकेश ! आप जगदीश्वर एवं जगत्के निवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है।' तब मत्स्यरूपधारी वे भगवान् जनार्दन यों कहे जानेपर बोले—'निष्पाप ! ठीक है, ठीक है, तुमने मुझे भलीभाँति पहचान लिया है। भूपाल ! थोड़े ही समयमें पर्वत, वन और काननोंके सहित यह पृथ्वी जलमें निमग्न हो जायगी। इस कारण पृथ्वीपते ! सम्पूर्ण जीव-समूहोंकी रक्षा करनेके लिये समस्त देवगणोंद्वारा इस नौकाका निर्माण किया गया है। सुन्रत ! जितने स्वेदज, अण्डज और उद्दिद्ज जीव हैं तथा जितने जरायुज जीव हैं, उन सभी अनाथोंको इस नौकामें चढ़ाकर तुम उन सबकी रक्षा करना। राजन्! जब युगान्तकी वायुसे आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय राजेन्द्र ! तुम उसे मेरे इस सींगमें बाँध देना।

ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।  
प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ॥ ३४

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान् नृपः।  
मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥ ३५

तदनन्तर पृथिवीपते! प्रलयकी समाप्तिमें तुम जगत्के समस्त स्थावर-जड़म प्राणियोंके प्रजापति होओगे। इस प्रकार कृतयुगके प्रारम्भमें सर्वज्ञ एवं धैर्यशाली नरेशके रूपमें तुम मन्वन्तरके भी अधिपति होओगे, उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १८—३५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मनु-विष्णु-संवादमें प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

## दूसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान्‌से युगान्तविषयक प्रश्न, मत्स्यका प्रलयके स्वरूपका वर्णन करके अन्तर्धान हो जाना,  
प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मनुका जीवोंको नौकापर चढ़ाकर उसे महामत्स्यके सींगमें शेषनागकी  
रसीसे बाँधना एवं उनसे सृष्टि आदिके विषयमें विविध प्रश्न करना और मत्स्यभगवान्‌का उत्तर देना

सूत उवाच

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम्।  
भगवन् कियद्विर्वर्षेर्भविष्यत्यन्तरक्षयः ॥ १  
सत्त्वानि च कथं नाथ रक्षिष्ये मधुसूदन।  
त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भविता मम ॥ २

मत्स्य उवाच

अद्यप्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले।  
यावद् वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम् ॥ ३  
ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्यः सप्त दारुणाः।  
सप्तसप्तर्भविष्यन्ति प्रतसाङ्गारवर्षिणः ॥ ४  
और्वानिलोऽपि विकृतिं गमिष्यति युगक्षये।  
विषाग्निश्चापि पातालात् संकर्षणमुखाच्युतः।  
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः ॥ ५  
त्रिजग्निर्दहन् क्षोभं समेष्यति महामुने।  
एवं दग्धा मही सर्वा यदा स्याद् भस्मसंनिभा ॥ ६  
आकाशमूष्मणा तसं भविष्यति परंतप।  
ततः सदेवनक्षत्रं जगद् यास्यति संक्षयम् ॥ ७  
संवर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डो बलाहकः।  
विद्युत्पताकः शोणस्तु समैते लयवारिदाः ॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् मत्स्यद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मनुने उन मधुसूदनसे प्रश्न किया—‘भगवन्! यह युगान्त-प्रलय कितने वर्षों बाद आयेगा? नाथ! मैं सम्पूर्ण जीवोंकी रक्षा किस प्रकार कर सकूँगा? तथा मधुसूदन! आपके साथ मेरा पुनः सम्मिलन कैसे हो सकेगा?’ ॥ १-२ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—‘महामुने! आजसे लेकर सौ वर्षतक इस भूतलपर वृष्टि नहीं होगी, जिसके फलस्वरूप परम अमाङ्गलिक एवं अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष आ पड़ेगा। तदनन्तर युगान्त प्रलयके उपस्थित होनेपर तपे हुए अंगारकी वर्षा करनेवाली सूर्यकी सात भयंकर किरणें छोटे-मोटे जीवोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हो जायेंगी। बड़वानल भी अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेगा। पाताललोकसे ऊपर उठकर संकर्षणके मुखसे निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान् रुद्रके ललाटसे उत्पन्न तीसरे नेत्रकी अग्नि भी तीनों लोकोंको भस्म करती हुई भभक उठेगी। परंतप! इस प्रकार जब सारी पृथिवी जलकर राखकी ढेर बन जायगी और गगन-मण्डल ऊष्मासे संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रोंसहित सारा जगत् नष्ट हो जायगा। उस समय संवर्त, भीमनाद, द्रोण, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण नामक जो ये सात प्रलयकारक मेघ हैं, ये सभी

अग्निप्रस्वेदसम्भूतां प्लावयिष्यन्ति मेदिनीम्।  
 समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः॥ ९  
 एतदेकार्णवं सर्वं करिष्यन्ति जगत्रयम्।  
 वेदनावमिमां गृह्य सत्त्वबीजानि सर्वशः॥ १०  
 आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत।  
 संयम्य नावं मच्छङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः॥ ११  
 एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परंतप।  
 सोमसूर्यविहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः॥ १२  
 नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः।  
 भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम्॥ १३  
 त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये।  
 एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये॥ १४  
 वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते।  
 एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १५  
 मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम्।  
 अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम्॥ १६  
 काले यथोक्ते सञ्जाते वासुदेवमुखोदगते।  
 शृङ्गी प्रादुर्बधूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः॥ १७  
 भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत्।  
 भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित्॥ १८  
 भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्।  
 उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ १९  
 आभूतसम्प्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना।  
 पृष्ठेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा।  
 तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ २०  
 यद् भवद्धिः पुरा पृष्ठः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः।  
 तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम्॥ २१

अग्निके प्रस्वेदसे उत्पन्न हुए जलकी घोर वृष्टि करके सारी पृथ्वीको आप्लावित कर देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जायेंगे और इन तीनों लोकोंको पूर्णरूपसे एकार्णवके आकारमें परिणत कर देंगे। सुन्नत ! उस समय तुम इस वेदरूपी नौकाको ग्रहण करके इसपर समस्त जीवों और बीजोंको लाद देना तथा मेरे द्वारा प्रदान की गयी रस्सीके बन्धनसे इस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। परंतप ! (ऐसे भीषण कालमें जब कि) सारा देव-समूह जलकर भस्म हो जायगा तो भी मेरे प्रभावसे सुरक्षित होनेके कारण एकमात्र तुम्हीं अवशेष रह जाओगे। इस आन्तर-प्रलयमें सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकोंसहित ब्रह्मा, पुण्यतोया नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह (नौका-स्थित) विश्व—ये ही बचेंगे। महीपते ! चाक्षुष-मन्वन्तरके प्रलयकालमें जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णवमें निमग्न हो जायगी और तुम्हारे द्वारा सृष्टिका प्रारम्भ होगा, तब मैं वेदोंका (पुनः) प्रवर्तन करूँगा।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य वहीं अन्तर्धान हो गये तथा मनु भी वहीं स्थित रहकर भगवान् वासुदेवकी कृपासे प्राप्त हुए योगका तबतक अभ्यास करते रहे, जबतक पूर्वसूचित प्रलयका समय उपस्थित न हुआ॥ ३—१६॥

तदनन्तर भगवान् वासुदेवके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त प्रलयकालके उपस्थित होनेपर भगवान् जनार्दन एक सींगवाले मत्स्यके रूपमें प्रादुर्भूत हुए। उसी समय एक सर्प भी रज्जु-रूपसे बहता हुआ मनुके पार्श्वभागमें आ पहुँचा। तब धर्मज्ञ मनुने अपने योगबलसे समस्त जीवोंको खींचकर नौकापर लाद लिया और उसे सर्परूपी रस्सीसे मत्स्यके सींगमें बाँध दिया। तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वे स्वयं भी उस नौकापर बैठ गये। श्रेष्ठ ऋषियो ! इस प्रकार उस अतीत प्रलयके अवसरपर योगाभ्यासी मनुद्वारा पूछे जानेपर मत्स्यरूपी भगवान् ने जिस पुराणका वर्णन किया था, उसीका मैं इस समय आपलोगोंके समक्ष प्रवचन करूँगा, सावधान होकर श्रवण कीजिये। द्विजवरो ! पहले आपलोगोंने मुझसे जिस सृष्टि आदिके विषयमें प्रश्न किया है, उन्हीं विषयोंको उस एकार्णवके समय मनुने भी भगवान् केशवसे पूछा था॥ १७—२१॥

मनुरुवाच

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान् मन्वन्तराणि च।  
 वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम्॥ २२  
 दानधर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम्।  
 वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम्॥ २३  
 देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद् विद्यते भुवि।  
 तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि॥ २४

मत्स्य उवाच

महाप्रलयकालान्त एतदासीत् तमोमयम्।  
 प्रसुमिव चातक्यमप्रज्ञातमलक्षणम्॥ २५  
 अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च।  
 ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम्॥ २६  
 व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत् तमोनुदः।  
 योऽतीन्द्रियः परो व्यक्तादणुज्यायान् सनातनः।  
 नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्भौ॥ २७  
 यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत्।  
 अप एव ससर्जदौ तासु बीजमवासृजत्॥ २८  
 तदेवाण्डं समभवद्वेमरुप्यमयं महत्।  
 संवत्सरसहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभम्॥ २९  
 प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसम्भवः।  
 प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत् पुनः॥ ३०  
 तदन्तर्भगवानेष सूर्यः समभवत् पुरा।  
 आदित्यश्चादिभूतत्वाद् ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत्॥ ३१  
 दिवं भूमिं समकरोत् तदण्डशकलद्वयम्।  
 स चाकरोद्दिशः सर्वा मध्ये व्योम च शाश्वतम्॥ ३२  
 जरायुर्मुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा।  
 यदुल्बं तदभूम्नेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम्॥ ३३  
 नद्योऽण्डनामः सम्भूताः पितरो मनवस्तथा।  
 सप्त येऽमी समुद्राश्च तेऽपि चान्तर्जलोद्धवाः।  
 लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः॥ ३४

मनुने पूछा—भगवन्! सृष्टिकी उत्पत्ति और उसका संहार, मानव-वंश, मन्वन्तर, मानव-वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंके चरित्र, भुवनका विस्तार, दान और धर्मकी विधि, सनातन श्राद्धकल्प, वर्ण और आश्रमका विभाग, इष्टापूर्त (वापी, कूप, तड़ाग आदि)-के निर्माणकी विधि और देवताओंकी प्रतिष्ठा आदि तथा और भी जो कोई धार्मिक विषय भूतलपर विद्यमान हैं, उन सभीका आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ २२—२४॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—महाप्रलयके समयका अवसान होनेपर यह सारा स्थावर-जङ्गमरूप जगत् सोये हुएकी भाँति अन्धकारसे आच्छन्न था। न तो इसके विषयमें कोई कल्पना ही की जा सकती थी, न कोई वस्तु जानी ही जा सकती थी, न किसी वस्तुका कोई चिह्न ही अवशेष था। सभी वस्तुएँ विस्मृत हो चुकी थीं। कोई ज्ञातव्य वस्तु रह ही नहीं गयी थी। तदनन्तर जो पुण्यकर्मोंके उत्पत्ति-स्थान तथा निराकार हैं, वे स्वयम्भूभगवान् इस समस्त जगत्को प्रकट करनेके अभिप्रायसे अन्धकारका भेदन करके प्रादुर्भूत हुए। उस समय जो इन्द्रियोंसे परे, परात्पर, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्-से भी महान्, अविनाशी और नारायण नामसे विख्यात हैं, वे स्वयं अकेले ही आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने शरीरसे अनेक प्रकारके जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छासे (पूर्वसृष्टिका) भलीभाँति ध्यान करके प्रथमतः जलकी ही रचना की और उसमें (अपने वीर्यस्वरूप) बीजका निक्षेप किया। वही बीज एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सुवर्ण एवं रजतमय अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, उसकी कान्ति दस सहस्र सूर्योंके सदृश थी। तत्पश्चात् महातेजस्वी स्वयम्भू स्वयं ही उस अण्डेके भीतर प्रविष्ट हो गये तथा अपने प्रभावसे एवं उस अण्डेमें सर्वत्र व्यास होनेके कारण वे पुनः विष्णुभावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उस अण्डेके भीतर सर्वप्रथम ये भगवान् सूर्य उत्पन्न हुए, जो आदिसे प्रकट होनेके कारण ‘आदित्य’ और वेदोंका पाठ करनेसे ‘ब्रह्मा’ नामसे विख्यात हुए। उन्होंने ही उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त कर स्वर्गलोक और भूतलकी रचना की तथा उन दोनोंके मध्यमें सम्पूर्ण दिशाओं और अविनाशी आकाशका निर्माण किया। उस समय उस अण्डेके जरायु-भागसे मेरु आदि सातों पर्वत प्रकट हुए और जो उल्ब (गर्भाशय) था, वह विद्युत्समूहसहित मैघमण्डलके रूपमें परिणत हुआ तथा उसी अण्डेसे नदियाँ, पितृगण और मनुसमुदाय उत्पन्न हुए। नाना रत्नोंसे परिपूर्ण जो ये लवण, इक्षु, सुरा आदि सातों समुद्र हैं, वे भी उस अण्डेके अन्तःस्थित जलसे प्रकट हुए।

स सिसृक्षुरभूद् देवः प्रजापतिरर्दिम् ।  
तत्त्वेजसश्च तत्रैष मार्तण्डः समजायत ॥ ३५  
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः ।  
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः ।  
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः ॥ ३६  
येन सृष्टं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।  
तमवेहि रजोरूपं महत्सत्त्वमुदाहृतम् ॥ ३७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मनुमत्स्यसंवादवर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

शत्रुदमन ! जब उन प्रजापति देवको सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई, तब वहीं उनके तेजसे ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए। चौंकि ये अण्डेके मृत हो जानेके पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'मार्तण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन महात्माका जो रजोगुणमय रूप था, वह लोकपितामह चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ। जिन्होंने देवता, असुर और मानवसहित समस्त जगत् की रचना की, उन्हें तुम रजोगुणरूप सुप्रसिद्ध महान् सत्त्व समझो ॥ २५—३७ ॥

## तीसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान् से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवानद्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन

मनुरुचाच

चतुर्मुखत्वमगमत् कस्माल्लोकपितामहः ।  
कथं तु लोकानसृजद् ब्रह्म ब्रह्मविदां वरः ॥ १

मत्स्य उचाच

तपश्चार प्रथममराणां पितामहः ।  
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्घोपाङ्घपदक्रमाः ॥ २  
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।  
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ३  
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ।  
मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ॥ ४  
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः ।  
मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत् तेन मानसाः ॥ ५  
मरीचिरभवत् पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः ।  
अङ्गिराश्चाभवत् पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ॥ ६

मनुने पूछा—भगवन् ! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोक-पितामह ब्रह्म चतुर्मुख कैसे हुए तथा उन्होंने (सभी) लोकोंकी रचना किस प्रकार की ? ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे ! देवताओंके पितामह ब्रह्माने पहले बड़ा ही कठोर तप किया था, जिसके प्रभावसे अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द), उपाङ्ग (पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र), पद (वैदिक मन्त्रोंका पद-पाठ निर्धारित करना) और क्रम (वेद-पाठकी एक विशेष प्रणाली) -सहित वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी उत्पत्तिके पूर्व ब्रह्माने उस पुराणका स्मरण किया, जो अविनाशी, शब्दमय, पुण्यशाली एवं सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत है। तदनन्तर ब्रह्माके मुखोंसे वेद, आठ प्रमाणोंसहित\* मीमांसा और न्यायशास्त्रका आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् वेदाभ्यासमें निरत रहनेवाले ब्रह्माने पुत्र उत्पन्न करनेकी कामनासे युक्त होकर पूर्वनिर्धारित दस मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। मानसिक संकल्पसे उत्पन्न होनेके कारण वे सभी मानस पुत्रके नामसे प्रख्यात हुए। उन पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि, तदनन्तर ऐश्वर्यशाली महर्षि अत्रि हुए। पुनः अङ्गिरा और उनके बाद पुलस्त्य हुए।

\* पौराणिकोंके आठ प्रमाण ये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (आसवचन), अनुपलब्धि, अर्थापत्ति, ऐतिह्य और स्वभाव। (सर्वदर्शनसंग्रह)

ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत ।  
 प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत् पुनः ॥ ७  
 पुत्रो भृगुरभूत् तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत् ।  
 दशेमान् मानसान् ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत् ॥ ८  
 शारीरानथं वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापते ।  
 अङ्गष्टाद् दक्षिणाद् दक्षः प्रजापतिरजायत ॥ ९  
 धर्मः स्तनान्तादभवद्वद्यात् कुसुमायुधः ।  
 भूमध्यादभवत् क्रोधो लोभश्चाधरसम्भवः ॥ १०  
 बुद्धेमौहः समभवदहंकारादभूमदः ।  
 प्रमोदश्चाभवत् कण्ठान्मृत्युलोचनतो नृप ॥ ११  
 भरतः करमध्यात् ब्रह्मसूनुरभूततः ।  
 एते नव सुता राजन् कन्या च दशमी पुनः ।  
 अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मणः सुता ॥ १२

मनुरुवाच

बुद्धेमौहः समभवदिति यत् परिकीर्तितम् ।  
 अहंकारः स्मृतः क्रोधो बुद्धिर्नामि किमुच्यते ॥ १३

मत्स्य उवाच

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम् ।  
 साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता ॥ १४  
 केचित् प्रथानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः ।  
 एतदेव प्रजासृष्टि करोति विकरोति च ॥ १५  
 गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजिञ्जिरे ।  
 एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १६  
 सविकारात् प्रथानात् महत्तत्त्वं प्रजायते ।  
 महानिति यतः ख्यातिलोकानां जायते सदा ॥ १७  
 अहंकारश्च महतो जायते मानवर्धनः ।  
 इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु ।  
 प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु ॥ १८

तदनन्तर पुलह और तत्पश्चात् क्रतु उत्पन्न हुए । उसके बाद प्रचेता नामक पुत्र हुए । पुनः वसिष्ठजीका जन्म हुआ । तत्पश्चात् भृगु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए तथा शीघ्र ही नारदका भी आविर्भाव हुआ । इन्हीं दस पुत्रोंको ब्रह्माने अपने मनसे उत्पन्न किया, जो सभी मुनि-रूपसे विख्यात हुए । राजन् ! अब मैं ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुए मातृ-विहीन पुत्रोंका वर्णन करता हूँ । प्रजापति ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापति प्रकट हुए । उनके स्तनान्तभागसे धर्म और हृदयसे कुसुमायुध (कामदेव)-का जन्म हुआ । भूमध्यसे क्रोध और होंठसे लोभकी उत्पत्ति हुई । बुद्धिसे मोहका तथा अहंकारसे मदका जन्म हुआ । कण्ठसे प्रमोद और नेत्रोंसे मृत्युकी उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् हथेलीसे ब्रह्मपुत्र भरतः प्रकट हुए । राजन् ! ये नौ पुत्र ब्रह्माके शरीरसे प्रकट हुए हैं । ब्रह्माकी दसवीं संतान (एक) कन्या है, जो अङ्गजा नामसे विख्यात हुई ॥ २—१२ ॥

मनुने पूछा—भगवन् ! आपने जो यह बतलाया कि बुद्धिसे मोहकी उत्पत्ति हुई और (इसी प्रसङ्गमें) अहंकार, क्रोध एवं बुद्धिका भी नाम लिया, सो ये सब क्या हैं ? (इनपर प्रकाश डालिये) ॥ १३ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे ! सत्त्व, रजस् और तमस्—जो ये तीनों गुण बतलाये गये हैं, इनकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहा जाता है । कुछ लोग इसे प्रधान कहते हैं । दूसरे लोग इसे अव्यक्त नामसे भी निर्देश करते हैं । यही प्रकृति प्रजाकी सृष्टि करती है और (यही सृष्टिको) बिगाढ़ती भी है । इन्हीं तीनों गुणोंके क्षुब्ध होनेपर इनसे तीन देवता उत्पन्न होते हैं । इन (तीनों देवों)-की मूर्ति तो एक ही है, परंतु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओंके रूपमें विभक्त हो जाती है । तदनन्तर प्रधानके विकृत होनेपर उससे महत्तत्वकी उत्पत्ति होती है, जिससे लोकोंके मध्यमें उसकी सदा 'महान्' रूपसे ख्याति होती है । उस महत्तत्वसे मानको बढ़ानेवाला अहंकार प्रकट होता है । उस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं, जिनमें पाँच बुद्धि (ज्ञान)-के वशीभूत रहती हैं और दूसरी पाँच कर्मके अधीन रहती हैं ।

\* भारतमें भरत नामके कई प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं । ये भरतमुनि हैं, जो 'नाथवेद' या 'भरतनाथ्यम्' के प्रवर्तक माने जाते हैं ।

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम्।  
 पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः ॥ १९

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।  
 उत्पर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः ॥ २०

मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम्।  
 इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ २१

श्रयन्ति यस्मात् तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्।  
 शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः ॥ २२

मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।  
 आकाशं शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम् ॥ २३

आकाशविकृतेवायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्।  
 वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः ॥ २४

त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्।  
 तेजोविकारादभवद् वारि राजंश्चतुर्गुणम् ॥ २५

रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम्।  
 भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत् पञ्चगुणान्विता ॥ २६

प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी ।  
 एथिः सम्पादितं भुद्भक्ते पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ २७

ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः ।  
 एवं षड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः ॥ २८

सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते ।  
 एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद् वेधा अजीजनत् ॥ २९

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ।  
 ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३०

स्त्रीरूपर्थमर्थमकरोदर्थं पुरुषरूपवत्।  
 शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१

इस इन्द्रिय-समुदायमें क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पायु (गुदा), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), हस्त, पाद और वाणी—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग (मल एवं अपानवायु आदिका त्याग), आनन्दन (आनन्दप्रदान), आदान (ग्रहण करना), गमन और आलाप—ये दस कार्य हैं। इन दसों इन्द्रियोंके अतिरिक्त मननामक ग्यारहवाँ इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोंके अन्तर्गत मननामक ग्यारहवाँ इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोंके जो सूक्ष्म अवयव उस मनीषीके शरीरका आश्रय लेते हैं, वे तन्मात्र कहलाते हैं और जिसके सम्पर्कसे तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, उसे शरीर कहा जाता है। उस शरीरका सम्बन्ध होनेके कारण विद्वान्‌लोग जीवको भी 'शरीरी' कहते हैं। जब सृष्टि करनेकी इच्छासे मनको प्रेरित किया जाता है, तब वही सृष्टिकी रचना करता है। उस समय शब्दतन्मात्रसे शब्दरूप गुणवाला आकाश प्रकट होता है। इसी आकाशके विकृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है, जो शब्द और स्पर्श—दो गुणोंवाली है। तत्पश्चात् वायु और स्पर्शतन्मात्रसे तेजका आविर्भाव होता है, जो शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन विकारोंसे युक्त होनेके कारण त्रिगुणात्मक हुआ। राजन्! इस त्रिगुणात्मक तेजमें विकार उत्पन्न होनेसे चार गुणोंवाले जलका प्राकट्य होता है, जो रस-तन्मात्रसे उद्भूत होनेके कारण प्रायः रसगुणप्रधान ही होता है। तत्पश्चात् पाँच गुणोंसे सम्पन्न पृथक्का प्रादुर्भाव होता है। वह प्रायः गन्ध-गुणसे ही युक्त रहती है। यही (इन सबका यथार्थ ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्र, एक मन, एक बुद्धि, एक अव्यक्त, अहंकार) तत्त्वोद्घारा सम्पादित सुख-दुःखात्मक कर्मका पचीसवाँ पुरुषनामक तत्त्व भोग करता है। वह भी ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत रहता है, इसीलिये विद्वान्‌लोग उसे जीवात्मा कहते हैं। इस प्रकार इस मानव-योनिमें यह शरीर छब्बीस तत्त्वोंसे संयुक्त बतलाया जाता है। कपिल आदि महर्षियोंने संख्यात्मक होनेके कारण इसे 'सांख्य' (ज्ञान) नामसे अभिहित किया है तथा इन्हीं तत्त्वोंका आश्रय लेकर ब्रह्माने जगत्की रचना की है ॥ १४—२९ ॥

जब ब्रह्माने जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छासे हृदयमें सावित्रीका ध्यान करके तपश्चरण प्रारम्भ किया। उस समय जप करते हुए उनका निष्पाप शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया। उनमें आधा भाग स्त्रीरूप और आधा पुरुषरूप हो गया।

सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परंतप।  
ततः स्वदेहसम्भूतामात्मजामित्यकल्पयत्॥ ३२  
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामबाणार्दितो विभुः।  
अहो रूपमहो रूपमिति चाह प्रजापतिः॥ ३३  
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्षुशुः।  
ब्रह्मा न किंचिद् ददृशे तन्मुखालोकनादृते॥ ३४  
अहो रूपमहो रूपमिति प्राह पुनः पुनः।  
ततः प्रणामनग्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत्॥ ३५  
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वर्वर्णिनी।  
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्वूपालोकनेच्छ्या॥ ३६  
आविर्भूतं ततो वक्रं दक्षिणं पाण्डुगण्डवत्।  
विस्मयस्फुरदोषं च पाश्चात्यमुदगात्ततः॥ ३७  
चतुर्थमभवत् पश्चाद् वामं कामशरातुरम्।  
ततोऽन्यदभवत्स्य कामातुरतया तथा॥ ३८  
उत्पत्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात्।  
सृष्ट्यर्थं यत् कृतं तेन तपः परमदारुणम्॥ ३९  
तत् सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छ्या।  
तेनोर्ध्वं वक्रमभवत् पञ्चमं तस्य धीमतः।  
आविर्भवज्जटाभिश्च तद् वक्रं चावृणोत् प्रभुः॥ ४०  
ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्।  
प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः॥ ४१  
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः।  
गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम्॥ ४२  
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्।  
सम्बभूव तया सार्थमतिकामातुरो विभुः।  
सलज्जां चक्रमे देवः कमलोदरमन्दिरे॥ ४३  
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः।  
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः॥ ४४  
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराङ्गिति नः श्रुतम्।  
तद्वूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते॥ ४५

परंतप! वह स्त्री सरस्वती, 'शतरूपा' नामसे विख्यात हुई। वही सावित्री, गायत्री और ब्रह्माणी भी कही जाती है। इस प्रकार ब्रह्माने अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाली सावित्रीको अपनी पुत्रीके रूपमें स्वीकार किया; परंतु तत्काल ही उस सावित्रीको देखकर वे सर्वश्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा मुग्ध हो उठे और यों कहने लगे—'कैसा मनोहर रूप है! कैसा सौन्दर्यशाली रूप है।' ब्रह्माको सावित्रीके मुखकी ओर अवलोकन करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं दीखता था। वे बारंबार यही कह रहे थे—'कैसा अद्भुत रूप है! कैसी अनोखी सुन्दरता है!' तत्पश्चात् जब सावित्री झुककर उन्हें प्रणाम करने लगी, तब ब्रह्मा पुनः उसे देखने लगे। तदनन्तर सुन्दरी सावित्रीने अपने पिता ब्रह्माकी प्रदक्षिणा की। इसी समय सावित्रीके रूपका अवलोकन करनेकी इच्छा होनेके कारण ब्रह्माके मुखके दाहने पार्श्वमें पीले गण्डस्थलोंवाला (एक दूसरा) नूतन मुख प्रकट हो गया! पुनः विस्मययुक्त एवं फड़कते हुए होंठोंवाला दूसरा (तीसरा) मुख पीछेकी ओर उद्धूत हुआ तथा उनकी बायीं ओर कामदेवके बाणोंसे व्यथित-से दीखनेवाले एक अन्य (चौथे) मुखका आविर्भाव हुआ। सावित्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेके कारण ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचनाके लिये जो अत्यन्त उग्र तप किया गया था, उसका सारा फल नष्ट हो गया तथा उसी पापके परिणामस्वरूप बुद्धिमान् ब्रह्माके मुखके ऊपर एक पाँचवाँ मुख आविर्भूत हुआ, जो जटाओंसे व्यास था। ऐश्वर्यशाली ब्रह्माने उस मुखको भी वरण (स्वीकार) कर लिया॥ ३०—४०॥

तदनन्तर ब्रह्माने अपने उन मरीचि आदि मानस पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुमलोग भूतलपर चारों ओर देवता, असुर और मानवरूप प्रजाओंकी सृष्टि करो। पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन पुत्रोंने अनेकों प्रकारकी प्रजाओंकी रचना की। सृष्टि-कार्यके लिये अपने उन पुत्रोंके चले जानेपर विश्वात्मा ब्रह्माने प्रणाम करनेके लिये चरणोंमें पड़ी हुई उस अनिन्दिता शतरूपा\* का पाणिग्रहण किया। तदनन्तर अधिक समय व्यतीत होनेके उपरान्त शतरूपाके गर्भसे मनु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो स्वायम्भुव नामसे विख्यात हुआ। उसे विराट् भी कहा जाता है तथा अपने पिता ब्रह्माके रूप और गुणकी समानताके कारण उसे

\* इसमें तथा अगले अध्यायमें शतरूपाका वर्णन है। शतरूपाका यहाँ अर्थ शतेन्द्रिया माया (मत्स्यपुराण ४। २४) या मूल प्रकृति है। क्योंकि इसे तथा हरिवंश १। २। १ को छोड़ अन्यत्र सर्वत्र शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी कही गयी है। यहाँ ४। ३३ में उनकी पत्नी 'अनन्ती' कही गयी है।

वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः ।  
स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे ॥ ४६

स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः ।  
औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना ॥ ४७

इति श्रीमात्ये महापुराणे आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके आदिसर्गमें मुखोत्पत्तिनामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

लोग अधिपुरुष भी कहते हैं—ऐसा हमने सुना है। उस ब्रह्म-वंशमें सात-सातके विभागसे जो बहुत-से महाभाग्यशाली एवं नियमोंका पालन करनेवाले स्वारोचिष आदि तथा उसी प्रकार औत्तमि आदि स्वायम्भुव मनु हुए हैं, वे सभी ब्रह्माके समान ही स्वरूपवाले थे। उन्हींमें इस समय तुम सातवें मनु हो ॥ ४१—४७ ॥

## चौथा अध्याय

पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए—एतद्विषयक  
मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्‌का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदिसृष्टिका वर्णन

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो ।  
कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः ॥ १  
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत् कथम् ।  
वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्थि मे संशयं विभो ॥ २

मत्स्य उवाच

|   |                           |
|---|---------------------------|
| दिव्येयमादिसृष्टिस्तु                             | रजोगुणसमुद्भवा ।          |
| अतीन्द्रियेन्द्रिया                               | तद्वदतीन्द्रियशरीरिका ॥ ३ |
| दिव्यतेजोमयी भूप                                  | दिव्यज्ञानसमुद्भवा ।      |
| न मत्यैरभितः शक्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः ॥ ४     |                           |
| यथा भुजङ्गाः सर्पणामाकाशं विश्वपक्षिणाम् ।        |                           |
| विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः ॥ ५   |                           |
| कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे ।           |                           |
| यस्मात्स्मान्न राजेन्द्र तद्विचारो नृणां शुभः ॥ ६ |                           |
| अन्यच्च सर्ववेदानामधिष्ठाता चतुर्मुखः ।           |                           |
| गायत्री ब्रह्मणस्तद्वदङ्गभूता निगद्यते ॥ ७        |                           |
| अमूर्तं मूर्तिमद् वापि मिथुनं तत् प्रचक्षते ।     |                           |
| विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती ।         |                           |
| भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥ ८         |                           |

मनुने पूछा—सर्वव्यापी भगवन्! अहो! पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्टका विषय है, परंतु ऐसा कर्म करनेपर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए? तथा उनके सगोत्र पुत्रोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ? विभो! मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ १-२ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन्! रजोगुणसे उत्पन्न हुई यह शतरूपारूपी\* आदिसृष्टि दिव्य है। जिस प्रकार इस (मूल प्रकृति)की इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे अतीत हैं, उसी प्रकार इस (शतरूपा, सहस्ररूपा नारी)-का शरीर भी इन्द्रियातीत है। यह दिव्य तेजसे सम्पन्न एवं दिव्य ज्ञानसे समुद्भूत है, अतः मांस-पिण्डरूप नेत्रधारी मानवोंद्वारा इसका भलीभांति वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे सर्पोंके मार्गको सर्प तथा सम्पूर्ण पक्षियोंके मार्गको आकाशचारी पक्षी ही जान सकते हैं, वैसे ही (शतरूपा आदि) दिव्य जीवोंके (अचिन्त्य) मार्गको दिव्य जीव ही समझ सकते हैं, मानव कदापि नहीं जान सकते। राजेन्द्र! चूँकि देवताओंके कार्य (करनेयोग्य अर्थात् उचित) तथा अकार्य (न करनेयोग्य अर्थात् अनुचित) शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले नहीं होते, इसलिये उनके विषयमें विचार करना मानवोंके लिये श्रेयस्कर नहीं है।\* दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मा सारे वेदोंके अधिष्ठाता हैं, उसी प्रकार (शतरूपारूपी) गायत्री ब्रह्माके अङ्गसे उत्पन्न हुई बतलायी जाती हैं। इसलिये यह मिथुनरूप (जोड़ा) अमूर्त (अव्यक्त) या मूर्तिमान् (व्यक्त) दोनों ही रूपोंमें कहा जाता है। यहाँतक कि जहाँ-जहाँ भगवान् ब्रह्मा हैं, वहाँ-वहाँ (गायत्रीरूपी) सरस्वती देवी भी हैं और जहाँ-जहाँ सरस्वती देवी हैं, वहाँ-वहाँ ब्रह्मा

\* इसीलिये 'न देवचरितं चरेत्', 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तकेण योजयेत्' की चेतावनी—उपदेश प्रसिद्ध है।

यथाऽऽतपो न रहितश्छायया दृश्यते क्वचित्।  
 गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं तथैव न विमुच्यति ॥ ९  
 वेदराशिः स्मृतो ब्रह्मा सावित्री तदधिष्ठिता।  
 तस्मान्न कश्चिद्दोषः स्यात् सावित्रीगमने विभोः ॥ १०  
 तथापि लज्जावनतः प्रजापतिरभूत् पुरा।  
 स्वसुतोपगमाद् ब्रह्मा शशाप कुसुमायुधम् ॥ ११  
 यस्मान्ममापि भवता मनः संक्षोभितं शैरैः।  
 तस्मात्त्वद्वेहमचिराद् रुद्रो भस्मीकरिष्यति ॥ १२  
 ततः प्रसादयामास कामदेवश्चतुर्मुखम्।  
 न मामकारणे शासुं त्वमिहार्हसि मानद ॥ १३  
 अहमेवंविधः सृष्टस्त्वयैव चतुरानन।  
 इन्द्रियक्षोभजनकः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ १४  
 स्त्रीपुंसोरविचारेण मया सर्वत्र सर्वदा।  
 क्षोभ्यं मनः प्रयत्नेन त्वयैवोक्तं पुरा विभो ॥ १५  
 तस्मादनपराधोऽहं त्वया शमस्तथा विभो।  
 कुरु प्रसादं भगवन् स्वशरीरासये पुनः ॥ १६

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः।  
 रामो नाम यदा मत्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः ॥ १७  
 अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति।  
 तदभ्यातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि ॥ १८  
 एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगानशेषतः।  
 ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः ॥ १९  
 विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसम्प्लवम्।  
 सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि ॥ २०  
 एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः।  
 शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम् ॥ २१

भी हैं। जिस प्रकार धूप (सूर्य) छायासे विलग होकर कहीं भी दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार गायत्री भी ब्रह्माके सामीप्यको नहीं छोड़ती हैं। यद्यपि ब्रह्मा वेदसमूहरूप हैं और सावित्री (या सरस्वती) उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इसलिये ब्रह्माको सावित्रीपर कुदृष्टि डालनेसे कोई दोष नहीं लगा, तथापि उस समय अपने उस कुकर्मसे प्रजापति ब्रह्मा लज्जासे अभिभूत हो गये और कामदेवको शाप देते हुए यों बोले—‘चूँकि तुमने अपने बाणोंद्वारा मेरे भी मनको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया है, इसलिये भगवान् रुद्र शीघ्र ही तुम्हारे शरीरको भस्म कर डालेंगे।’ तदनन्तर कामदेवने बड़ी अनुनय-विनयसे ब्रह्माको प्रसन्न किया। वह बोला—‘मानद! इस विषयमें आपका मुझे निष्कारण ही शाप देना उचित नहीं है। चतुरानन! आपने ही तो मुझे इस प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंकी इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेके लिये पैदा किया है। विभो! आपने ही पहले मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि स्त्री-पुरुषका कोई विचार न करके तुम प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र सर्वदा उनके मनको क्षुब्ध किया करो। इसलिये विभो! मैं निरपराध हूँ, तथापि आपने मुझे वैसा शाप दे डाला है; अतः भगवन्! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मैं पुनः अपने पूर्वशरीरको प्राप्त कर सकूँ’ ॥ ३—१६ ॥

ब्रह्माने कहा—कामदेव! वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर असुरोंके विनाशक श्रीराम जब मेरे बल-पराक्रमसे सम्पन्न होकर मानव-रूपमें यदुवंशमें (बलरामरूपसे) अवतीर्ण होंगे और द्वारकाको अपना निवासस्थान बनायेंगे, उस समय तुम उन्हींके समान बल-पराक्रमशाली उनके भ्राता (श्रीकृष्ण)-के पुत्ररूपमें उत्पन्न होंगे। इस प्रकार शरीरको प्राप्तकर (द्वारकामें) सम्पूर्ण भोगोंका भोग करनेके उपरान्त तुम भरत-वंशमें महाराज वत्सके पुत्र होंगे। तत्पश्चात् विद्याधरोंके अधिपति होकर महाप्रलयपर्यन्त धर्मपूर्वक सुखोंका उपभोग करके मेरे समीप वापस आ जाओगे। इस प्रकार शाप और कृपासे संयुक्त कामदेव शोक और आनन्दसे अभिभूत होकर जैसे आया था, वैसे ही चला गया ॥ १७—२१ ॥

मनुरुवाच

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः ।  
कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः ॥ २२  
भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत् ।  
एतत् सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे ॥ २३

मत्स्य उवाच

या सा देहार्थसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी ।  
जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २४  
रतिर्मनस्तपोबुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा ।  
ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २५  
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः ।  
तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २६  
ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।  
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २७  
वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान् ।  
राजन्यानसृजद् बाहोर्विद् शूद्रानूरुपादयोः ॥ २८  
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूषिं च ।  
छन्दांसि च सप्तर्जदौ पर्जन्यं च ततः परम् ॥ २९  
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः ।  
कोटीश्च चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिता: ॥ ३०  
वामोऽसृजन्मत्यास्तान् ब्रह्मणा विनिवारितः ।  
नैवंविधा भवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता ॥ ३१  
शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते ।  
एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टेः स्थाणुरुतोऽभवत् ॥ ३२  
स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्शरम् ।  
पत्नीमवाप रूपाढ्यामनन्तीं नाम नामतः ॥ ३३  
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत् ।  
धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृता नाम भामिनी ॥ ३४  
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी ।  
अपस्यतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा ॥ ३५

मनुने पूछा—भगवन्! आपने जिनके वंशमें कामदेवकी उत्पत्ति बतलायी है, वे यदु कौन हैं? भगवान् रुद्रने कामदेवको किसलिये और कैसे जलाया तथा भरतवंशमें पहले किसकी और कौन-सी सृष्टि हुई थी? (इन बातोंको सुनकर) मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है; अतः आप प्रारम्भसे ही इन सबका वर्णन कीजिये ॥ २२-२३ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन्! ब्रह्माके शरीरके आधे भागसे जो ब्रह्मवादिनी गायत्री उत्पन्न हुई थी और जो मनुकी माता थी तथा जिसे शतरूपा और शतेन्द्रिया नामसे भी जाना जाता था, उसी शतरूपाके गर्भसे ब्रह्माजीने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिक् तथा सम्प्रम—इन सात संतानोंको जन्म दिया। तथा उन बुद्धिमान् ब्रह्माके पहले जो मरीचि आदि दस मानस-पुत्र हुए थे, उन्होंके द्वारा इस सम्पूर्ण ज्ञानात्मक संसारकी रचना हुई। तदनन्तर ब्रह्माने श्रेष्ठ त्रिशूलधारी वामदेवकी और पुनः पूर्वजोंके भी पूर्वज शक्तिशाली सनत्कुमारकी रचना की। भगवान् वामदेव (शिव)-ने अपने मुखसे ब्राह्मणोंकी, बाहुओंसे क्षत्रियोंकी, ऊरुओंसे वैश्योंकी और पैरोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति की। तदुपरान्त उन्होंने क्रमशः बिजली, वज्र, मेघ, रंग-बिरंगा इन्द्रधनुष और छन्दकी रचना की। उसके बाद मेघकी सृष्टि की। तत्पश्चात् उन शक्तिशाली वामदेवने जरा-मरणरहित एवं त्रिनेत्रधारी चौरासी करोड़ साध्यगणोंको उत्पन्न किया। चौंकि वामदेवने उन्हें जरा-मरणरहित रचा था, इसलिये ब्रह्माने उन्हें सृष्टि रचनेसे मना कर दिया (और कहा कि) इस प्रकार जरा-मरणसे विवर्जित सृष्टि नहीं होती, अपितु जो सृष्टि शुभ और अशुभसे युक्त होती है, वही प्रशंसनीय है। ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वामदेव सृष्टिकार्यसे निवृत्त होकर स्थाणुकी भाँति स्थित हो गये ॥ २४-३२ ॥

(अब मैथुनी सृष्टिका वर्णन करते हैं—)परम बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने कठोर तपस्या करके अनन्ती नामवाली एक सुन्दरी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। मनुने उसके गर्भसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र उत्पन्न किये। पुनः धर्मकी कन्या सूनृताने, जो परम सुन्दरी, मन्थरगतिसे चलनेवाली और चतुर थी, उत्तानपादके सम्पर्कसे पुत्रोंको प्राप्त किया। उस समय प्रजापति उत्तानपादने सूनृताके गर्भसे अपस्यति, अपस्यन्त, कीर्तिमान् तथा ध्रुव (इन चार पुत्रों)\*-को उत्पन्न किया।

\* यही कल्पभेद-व्यवस्था है। अन्यत्र उत्तानपादके ध्रुव और उत्तम ये दो ही पुत्र कहे गये हैं और सूनृताका नाम भी सुनीति आया है।

उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः ।  
 ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तपः पुरा ॥ ३६  
 दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणो वरात् ।  
 तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ ३७  
 धन्या नाम मनोः कन्या ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत् ।  
 अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्मा सुषुवे सुतान् ॥ ३८  
 कृपं रिपुञ्जयं वृत्तं वृकं च वृक्तेजसम् ।  
 चक्षुषं ब्रह्मदौहित्रां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः ॥ ३९  
 वीरणस्यात्मजायां तु चक्षुर्मनुमजीजनत् ।  
 मनुर्वै राजकन्यायां नद्वलायां स चाक्षुषः ॥ ४०  
 जनयामास तनयान् दश शूरानकल्मषान् ।  
 ऊरुः पूरुः शतद्युम्प्रस्तपस्वी सत्यवाग्धविः ॥ ४१  
 अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्पश्चापराजितः ।  
 अभिमन्युस्तु दशमो नद्वलायामजायत ॥ ४२  
 ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान् ।  
 अग्निं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ ४३  
 पितृकन्या सुनीथा तु वेनमङ्गादजीजनत् ।  
 वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्करादभूत् ।  
 पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत् ॥ ४४  
 अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डन्यामजीजनत् ।  
 हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।  
 प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम् ॥ ४५  
 प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।  
 हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः ॥ ४६  
 सवर्णायां तु सामुक्त्रयां दशाधत्त सुतान् प्रभुः ।  
 सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥ ४७  
 तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुलोंके समन्ततः ।  
 देवादेशाच्च तानग्निरदहद् रविनन्दन ॥ ४८  
 सोमकन्याभवत् पली मारिषा नाम विश्रुता ।  
 तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्रथमजीजनत् ॥ ४९

उनमें ध्रुवने पूर्वकालमें तीन सहस्र वर्षोंतक तप करके ब्रह्माके वरदानसे दिव्य एवं अटल स्थानको प्राप्त किया । आज भी उन्हीं ध्रुवको आगे करके सप्तर्षिमण्डल स्थित है । उन्हीं ध्रुवके संयोगसे मनुकी कन्या धन्याने शिष्टको जन्म दिया । शिष्टके सम्पर्कसे अग्नि-कन्या सुच्छायाने कृप, रिपुञ्जय, वृत्त, वृक, वृक्तेजस् और चक्षुष् नामक पुत्रोंको पैदा किया । उनमें रिपुञ्जयने ब्रह्माकी दौहित्री एवं वीरणकी कन्या वीरणीके गर्भसे चाक्षुष मनुको उत्पन्न किया । चाक्षुष मनुने राजपुत्री नद्वलाके गर्भसे ऊरु, पूरु, तपस्वी शतद्युम्प, सत्यवाक्, हवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्प, अपराजित और दसवाँ अभिमन्यु—इन दस निष्ठाप एवं शूरवीर पुत्रोंको पैदा किया । आग्नेयीने ऊरुके संयोगसे अग्नि, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरस् और गय—इन छः परम कान्तिमान् पुत्रोंको जन्म दिया । पितरोंकी कन्या सुनीथाने अङ्गके सम्पर्कसे वेनको उत्पन्न किया । (वेन अत्यन्त अन्यायी था । जब वह विप्रशापसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब) ब्राह्मणोंने उस अन्यायी वेनके हाथका मन्थन किया । उससे महातेजस्वी पृथु नामका पुत्र प्रकट हुआ । उनके (अन्तर्धान और हविर्धान नामक) दो पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें अन्तर्धानने शिखण्डनीके गर्भसे मारीच नामक पुत्र पैदा किया ॥ ३३—४४ १/२ ॥

अग्नि-कन्या धिषणाने हविर्धानके संयोगसे प्राचीन-बर्हिष्, साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ—इन छः पुत्रोंको जन्म दिया । इनमें महान् ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हिष प्रजापति थे । उन्होंने हविर्धान नामसे विख्यात बहुत-सी प्रजाओंका विस्तार किया तथा समुद्र-कन्या सवणाके गर्भसे दस पुत्रोंको जन्म दिया । वे सभी धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् थे तथा प्रचेता नामसे विख्यात हुए । रविनन्दन ! इन्हीं प्रचेताओंके तपसे सुरक्षित रहकर वृक्षजगतमें चारों ओर शोभा पा रहे थे, परंतु इन्द्रदेवके आदेशसे अग्निने उन्हें जलाकर भस्म कर दिया । तत्पश्चात् चन्द्रमाकी कन्या, जो मारिषा नामसे विख्यात थी, उन प्रचेताओंकी पली हुई । उसने उनके संयोगसे एक दक्ष नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया ।

दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः ।  
 अजीजनत् सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा ॥ ५०  
 सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः ।  
 तासां तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः ॥ ५१  
 द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः ।  
 वलीमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा ॥ ५२  
 अश्वत्रक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा ।  
 श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्टमुखास्तथा ॥ ५३  
 जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः ।  
 स सृष्टा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत् ॥ ५४  
 ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।  
 सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः ।  
 देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूजगत् ॥ ५५

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

## पाँचवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओंकी उत्पत्ति, कुमार कार्त्तिकेयका जन्म तथा दक्ष-कन्याओंद्वारा देवयोनियोंका प्रादुर्भाव

ऋष्य ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ब्रूहि यथातथम् ॥ १

सूत उवाच

संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ।  
 दक्षात् प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिमेथुनसम्भवा ॥ २  
 प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा ।  
 यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः ॥ ३  
 यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान् ।  
 न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः ।  
 दक्षः पुत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत् ॥ ४

दक्षकी उत्पत्तिके पश्चात् उस सोमकन्याने समस्त वृक्षों और ओषधियोंको तथा चन्द्रवती नामकी नदीको उत्पन्न किया । चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए उस दक्ष प्रजापतिकी अस्सी करोड़ संतानें हुईं, जो इस समय लोकमें सर्वत्र फैली हुई हैं और जिनका विस्तार में आगे वर्णन करूँगा । उनमेंसे किन्हींके दो पैर थे तो किन्हींके अनेकों पैर थे । किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे तो किन्हींके कान खूंटे-जैसे थे तथा किन्हींके कान (बालोंसे) आच्छादित थे । किन्हींके मुख घोड़े और रीछके सदृश थे तथा कोई सिंहके समान मुखवाले थे । कुछ लोग कुत्ते और सूअरके सदृश मुखवाले थे तो किन्हींका मुख ऊँटके समान था । इस प्रकार धर्मात्मा दक्षने अपने मनसे अनेकों प्रकारके सभी म्लेच्छोंकी सृष्टि की, तत्पश्चात् स्त्रियोंको उत्पन्न किया । उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको तथा नक्षत्र नामवाली सत्ताईस स्त्रियोंको चन्द्रमाको प्रदान किया । उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर और मानव आदिसे परिपूर्ण यह सारा जगत् प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ४५—५५ ॥

( शौनक आदि ) ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इन सबकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इसका यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो ! प्रचेता-पुत्र दक्षसे पूर्व उत्पन्न हुए लोगोंकी सृष्टि संकल्प, दर्शन और स्पर्शमात्रसे हुई है, ऐसा कहा जाता है; किंतु दक्षके पश्चात् स्त्री-पुरुषके संयोगद्वारा सृष्टि प्रचलित हुई है । पूर्वकालमें जब ब्रह्माने दक्षको आज्ञा दी कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो, तब दक्षने पहले-पहल जैसी सृष्टि-रचना की, उसे (मैं) उसी प्रकार (वर्णन करता हूँ, आपलोग) श्रवण करें । जब (संकल्प, दर्शन और स्पर्शद्वारा) देव, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करनेपर जीव-लोकका विस्तार नहीं हुआ, तब दक्षने पाञ्चजनीके गर्भसे एक हजार

तांस्तु दृष्टा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।  
 नारदः प्राह ह्यर्यश्चान् दक्षपुत्रान् समागतान् ॥ ५  
 भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च ।  
 ततः सृष्टि विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः ॥ ६  
 ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम् ।  
 अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः ॥ ७  
 हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः ।  
 वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥ ८  
 शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः ।  
 नारदोऽनुगतान् प्राह पुनस्तान् पूर्ववत् स तान् ॥ ९  
 भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातृनथो पुनः ।  
 आगत्य चाथ सृष्टि च करिष्यथ विशेषतः ॥ १०  
 तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृपथा तदा ।  
 ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान् मार्गमिच्छति ।  
 अन्विष्यन् दुःखमाप्नोति तेन तत् परिवर्जयेत् ॥ ११  
 ततस्तेषु विनष्टेषु षष्ठिं कन्याः प्रजापतिः ।  
 वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥ १२  
 प्रादात् स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।  
 सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ १३  
 द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते ।  
 द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात् ॥ १४  
 शृणुध्वं देवमातृणां प्रजाविस्तरमादितः ।  
 मरुत्वतो वसुर्यामी लम्बा भानुरुरुन्धती ॥ १५  
 संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।  
 धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् निबोधत ॥ १६  
 विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत् ।  
 मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७  
 भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः ।  
 लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा ॥ १८

पुत्रोंको पैदा किया, जो 'हर्यश्व' नामसे विख्यात हुए। उन हर्यश्वनामक दक्ष-पुत्रोंको नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि करनेके लिये उत्सुक देखकर महाभाग नारदने निकट आये हुए उन लोगोंसे कहा—'श्रेष्ठ ऋषियो! पहले आपलोग सर्वत्र धूमकर पृथ्वीके विस्तार तथा उसके ऊपर और नीचेके भागको जान लें, तब विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' नारदजीकी बात सुनकर वे लोग विभिन्न दिशाओंकी ओर चले गये और आजतक भी वे उसी प्रकार नहीं लौटे, जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर पुनः वापस नहीं आतीं। इस प्रकार हर्यश्व नामक पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रभावशाली प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे पुनः एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो शबल नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये द्विजवर सृष्टि-रचनाके लिये एकत्र होकर नारदजीके निकट पहुँचे, तब उन्होंने उन अनुगतोंसे भी पुनः वही पूर्ववत् बात कही—'ऋषियो! आपलोग पहले सब ओर धूमकर पृथ्वीके विस्तारको समझिये और अपने भाइयोंका पता लगाकर लौटिये, तत्पश्चात् विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' तब जिस मार्गसे भाई लोग गये थे, उसी मार्गसे वे लोग भी चले, उसी मार्गसे चले गये (और पुनः वापस नहीं आये)। तभीसे छोटा भाई बड़े भाईको ढूँढ़ने नहीं जाता। यदि जाता है तो वह दुःखभागी होता है। इसलिये ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २—११ ॥\*

तदनन्तर उन पुत्रोंके भी विनष्ट हो जानेपर प्रचेतानन्दन प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दक्षने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुनन्दन शुक्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो कन्याएँ अङ्गिराको प्रदान कर दीं। अब आपलोग इन देवमाताओंके नाम तथा जिस प्रकार इनकी संतानोंका विस्तार हुआ, वह सब आदिसे ही विस्तारपूर्वक सुनिये। इनमेंसे मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और सुन्दरी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतलायी गयी हैं। अब इनके पुत्रोंके भी नाम सुनिये—विश्वाने (दस) विश्वेदेवोंको, साध्याने (बारह) साध्योंको, मरुत्वतीने (उनचास) मरुतोंको, वसुने आठ वसुओंको, भानुने (बारह) सुयोंको, मुहूर्तने मुहूर्तको, लम्बाने घोषको, यामीने नागवीथीको

\* विष्णुपुराण १। १५। १०१, ब्रह्म २। ८०, वायु ६५ आदिमें ऐसा ही है, पर भागवत ६। ५ में इसके विपरीत सम्मति है।

पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत ।  
 संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥ १९  
 ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् ।  
 वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गे निबोधत ॥ २०  
 आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।  
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २१  
 आपस्य पुत्राश्रुत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च ।  
 शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ॥ २२  
 ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत ।  
 द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३  
 कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च ।  
 मनोहरा धरात् पुत्रानवापाथ हरेः सुता ॥ २४  
 शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा ।  
 अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५  
 अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।  
 तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २६  
 अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेयस्ततः स्मृतः ।  
 प्रत्यूषस्य ऋषेः पुत्रो विभुर्नामाथ देवलः ।  
 विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७  
 प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ।  
 तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ॥ २८  
 अजैकपादहिर्बुद्ध्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।  
 हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥ २९  
 सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।  
 एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ॥ ३०  
 एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरथारिणाम् ।  
 कोटयश्चतुराशीतिस्तप्युत्राशक्षया मताः ॥ ३१  
 दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः ।  
 पुत्रपौत्रसुताशैते सुरभीगर्भसम्भवाः ॥ ३२

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे वसुरुद्रान्ववायो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें वसुओं और रुद्रोंके वंशका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

और संकल्पाने संकल्पको जन्म दिया । अरुन्धतीके गर्भसे भूतलपर होनेवाले समस्त जीव-जन्मुओंकी उत्पत्ति हुई । अब वसुओंकी सृष्टिके विषयमें सुनिये—ये जो प्रभाशाली देवता सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप हैं, वे सभी ‘वसु’ नामसे विख्यात हैं । अब इनके सृष्टि-विस्तारका वर्णन सुनिये । आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं । इनमें आप नामक वसुके शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक चार पुत्र हुए, जो सब-के-सब यज्ञ-रक्षाके अधिकारी हैं । (शेष वसुओंमें) ध्रुवका पुत्र काल हुआ । सोमसे वर्चाकी उत्पत्ति हुई । धरके कल्याणिनीके गर्भसे द्रविण और हव्यवाह नामके दो पुत्र बतलाये जाते हैं तथा हरिकी कन्या मनोहराने उन्हीं धरके संयोगसे प्राण, रमण और शिशिर नामक तीन पुत्र प्राप्त किये । शिवाने अनलसे मनोजव तथा अविज्ञातगति नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया, जो प्रायः अग्निके सदृश ही गुणवाले थे । अग्निपुत्र कुमार (कार्त्तिकेय) सरकंडेके झुरमुटमें पैदा हुए थे । इनके अनुज शाख, विशाख और नैगमेय नामसे प्रसिद्ध हैं । कृत्तिकाकी संतति होनेके कारण ये कार्त्तिकेय नामसे भी विख्यात हैं । प्रत्यूष वसुके विभु तथा देवल\* नामके दो पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् ऋषि हुए । प्रभासका पुत्र विश्वकर्मा हुआ, जो शिल्पविद्यामें निपुण और प्रजापति हुआ । वह प्रासाद (अद्वालिका) भवन, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, वापी, सरोवर, बगीचा और कुएँ आदिके निर्माणकार्यमें देवताओंके बढ़ीरूपसे विख्यात हुआ ॥ १२—२८ ॥

अजैकपाद, अहिर्बुद्ध्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, सुरराजत्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये एकादश रुद्र गणेश्वर नामसे प्रख्यात हैं । श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले इन ब्रह्माके मानस पुत्ररूप गणेश्वरोंके चौरासी करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब अक्षय माने गये हैं । सुरभीके गर्भसे उद्भूत ये एकादश रुद्रोंके पुत्र-पौत्र आदि, जो गणेश्वर कहे जाते हैं, सभी दिशाओंमें (चराचर जगत्की) रक्षा करते हैं ॥ २९—३२ ॥

\* असित और एकपणिके पुत्र महर्षि देवल, जो ‘देवलस्मृति’के रचयिता हैं, इनसे भिन्न हैं।

## छठा अध्याय

कश्यप-वंशका विस्तृत वर्णन

सूत उवाच

**कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान्।**  
**अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा॥ १**  
**सुरभिर्विनता तद्वत्ताग्रा क्रोधवशा इरा।**  
**कद्भूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान् निबोधत॥ २**  
**तुषिता नाम ये देवाश्वाक्षुषस्यान्तरे मनोः।**  
**वैवस्वतेऽन्तरे चैते ह्यादित्या द्वादश स्मृताः॥ ३**  
**इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणो यमः।**  
**विवस्वान् सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च॥ ४**  
**एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः।**  
**मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान्॥ ५**  
**कृशाश्वस्य ऋषे: पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः।**  
**एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च॥ ६**  
**उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च।**  
**दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम्॥ ७**  
**हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च।**  
**हिरण्यकशिपोस्तद्वजातं पुत्रचतुष्टयम्॥ ८**  
**प्रहादश्चानुहादश्च संहादो हाद एव च।**  
**प्रहादपुत्र आयुष्माञ्जिष्विर्बाष्कल एव च॥ ९**  
**विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमासवान्।**  
**बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं ततो द्विजाः॥ १०**  
**धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः।**  
**निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः॥ ११**  
**एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः।**  
**बाणः सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः॥ १२**  
**तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत्।**  
**महाकालत्वमगमत् साम्यं यश्च पिनाकिनः॥ १३**  
**हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा।**  
**भूतसंतापनश्चैव महानाभस्तथैव च॥ १४**  
**एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः।**  
**महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः॥ १५**

सूतजी कहते हैं—(शौनकादि ऋषियो!) अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करता हूँ। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्भू, विश्वा और मुनि—ये तेरह कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब इनके पुत्रोंका वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनुके कार्यकालमें जो तुषित नामके देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें द्वादश आदित्यके नामसे प्रख्यात हुए। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सभी सहस्र किरणोंसे सम्पन्न हैं और द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। अदितिने मरीचि-नन्दन कश्यपके संयोगसे इन श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया था। महर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण नामसे विख्यात हुए। द्विजवरो! ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर तथा प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। हमने सुना है कि दितिने महर्षि कश्यपके सम्पर्कसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपुके उसीके समान पराक्रमी प्रहाद, अनुहाद, संहाद और हाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे प्रहादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कल और चौथा विरोचन। उस विरोचनने बलिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। विप्रवरो! बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें बाण ज्येष्ठ था। इसके अतिरिक्त, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकारके और भी बहुत-से पुत्र थे, जो बाणसे छोटे, परंतु सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें बाणके सहस्र भुजाएँ थीं और वह समस्त अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसके नगरमें निवास करते थे। उसने (अपनी तपस्याके प्रभावसे) पिनाकधारी शंकरजीकी समतावाले महाकालपदको प्राप्त कर लिया था। (दितिके द्वितीय पुत्र) हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभनामक पुत्र हुए। इनसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सतहत्तर करोड़ थी। वे सभी महान् बलशाली, विशाल शरीरवाले, नाना प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ और महान् ओजस्वी थे॥१—१५॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्।  
विप्रचित्तिः प्रथानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः ॥ १६  
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः ।  
अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा ॥ १७  
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा ।  
विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतहृदः ॥ १८  
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च ।  
एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ॥ १९  
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः ।  
स्वर्भानुवृष्टपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः ॥ २०  
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा ।  
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ॥ २१  
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः ।  
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते ॥ २२  
बहूपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे ।  
तयोः षष्ठिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा ॥ २३  
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत् पुरा ।  
अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ॥ २४  
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु ।  
विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ॥ २५  
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश ।  
व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ॥ २६  
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा ।  
नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ॥ २७  
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः ।  
संहादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः ॥ २८  
अवध्या: सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ॥ २९  
षट् कन्या जनयामास तामा मारीचबीजतः ।  
शुक्री श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिका शुचिः ॥ ३०

इसी प्रकार दनुने भी कश्यपके संयोगसे सौ बलशाली पुत्रोंको प्राप्त किया, जिनमें महाबली विप्रचित्ति प्रधान था । इसके अतिरिक्त द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरोधर, अयोमुख, शम्बर, कपिश, वामन, मारीचि, मेघवान्, इरागर्भशिरा, विद्रावण, केतु, केतुवीर्य, शतहृद, इन्द्रजित्, सप्तजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, बिन्दु, महासुर बाण, स्वर्भानु और वृषपर्वा—ये तथा इसी प्रकारके और भी दनुके पुत्र थे । इनमें स्वर्भानुकी प्रभा, पुलोमाकी शची, मयकी उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू, वृषपर्वकी शर्मिष्ठा, सुन्दरी और चन्द्रा तथा वैश्वानरकी पुलोमा और कालका नामकी कन्याएँ थीं । इनमें महान् बलशालिनी एवं बहुत-सी संतानोंवाली पुलोमा और कालका मरीचि-पुत्र कश्यपकी पत्नियाँ थीं । इन दोनोंसे पूर्वकालमें साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई थी । पूर्वकालमें मरीचिनन्दन कश्यपने\* (इन्हीं पुलोमा और कालकाके गर्भसे) पौलोम और कालकेय संज्ञक दानवोंको पैदा किया था, जो हिरण्यपुरमें निवास करते थे तथा ब्रह्मासे वरदान प्राप्त होनेके कारण वे देवताओंके लिये भी अवध्य थे; परंतु विजय (अर्जुन)–ने उनका संहार कर डाला । विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे सैंहिकेय-संज्ञक पुत्रोंको जन्म दिया, जिनकी संख्या तेरह थी । ये हिरण्यकशिपुके भानजे थे । उनके नाम ये हैं—व्यंस, कल्प, राजेन्द्र, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण तथा प्रसिद्ध कालवीर्य । ये सभी दनु-वंशको बढ़ानेवाले थे । दैत्य संहादके पुत्र निवातकवचके नामसे विख्यात हुए । वे सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंद्वारा अवध्य थे; किंतु अर्जुनने शिवजीका आश्रय ग्रहण करके रणभूमिमें उन्हें यमलोकका पथिक बना दिया । ताप्राने कश्यपसे शुक्री, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका और शुचि नामक छः कन्याओंको जन्म दिया ।

\* वाल्मी० रामा० १।१।२० आदि, भागवत० १।६।३१, ३।१२।३२, ४।१।१३, ९।१।१०, विष्णुपुराण १।१५।१३१, २१।८, मत्स्य० ३।६, ४।२६, ११५।९, वायु० ५०।१६८, ५२।२५, १०१।३५, ४९, ब्रह्माण्ड० २।३२।९६, २।२१।४३-४४ आदिके अनुसार मरीचि ऋषिके एकमात्र पुत्र कश्यप ही हैं । किसी-किसी पुराणमें उनका एक दूसरा पुत्र 'पौर्णमास' भी निर्दिष्ट है ।

शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः ।  
 श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ॥ ३१  
 गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् ।  
 हंससारसक्रौञ्चांश्च प्लवान्छुचिरजीजनत् ॥ ३२  
 अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् ।  
 एष ताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायां निबोधत ॥ ३३  
 गरुडः पततां नाथो अरुणश्च पतत्रिणाम् ।  
 सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता ॥ ३४  
 सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ ।  
 सम्पातिपुत्रो बभूश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः ॥ ३५  
 जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ ।  
 सारसो रज्जुबालश्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः ॥ ३६  
 तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ।  
 सुरसायाः सहस्रं तु सर्पणामभवत् पुरा ॥ ३७  
 सहस्रशिरसां कद्मः सहस्रं चापि सुव्रत ।  
 प्रथानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिदं ॥ ३८  
 शेषवासुकिकर्कोटशङ्कैरावतकम्बलाः ।  
 धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥ ३९  
 एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।  
 शङ्कैपालमहाशङ्कैपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥ ४०  
 शङ्कुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा ।  
 कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः ॥ ४१  
 एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् ।  
 प्रायशो यत् पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे ॥ ४२  
 रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् ।  
 दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात् क्षयम् ॥ ४३  
 रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यो वराङ्गनाः ।  
 सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ॥ ४४  
 मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा ।  
 तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून् ॥ ४५  
 तृणवृक्षलतागुल्मभिरा सर्वमजीजनत् ।  
 विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥ ४६  
 तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद् दितिः ।  
 जनयामास धर्मज्ञान् सर्वान्मरवल्लभान् ॥ ४७

इनमें शुकीने धर्मके संयोगसे शुक और उलूकोंको उत्पन्न किया । श्येनीसे श्येन (बाज) तथा भासीसे कुरर(चकवा)-की उत्पत्ति हुई । गृध्रीने गीधों, पँडुकियों और कबूतरोंको पैदा किया । शुचिके गर्भसे हंस, सारस, क्रौंच और प्लव (कारण्डव या विशेष जलपक्षी) प्रादुर्भूत हुए । सुग्रीवीने बकरा, घोड़ा, भेड़ा, ऊँट और गधोंको जन्म दिया । इस प्रकार यह ताम्राके वंशका वर्णन किया, अब विनताकी वंश-परम्पराके विषयमें सुनिये ॥ १६—३३ ॥

(विनताके दो पुत्र) गरुड़ और अरुण आकाशचारी छोटे-बड़े समस्त पक्षियोंके स्वामी हैं । (उसकी तीसरी संतान) सौदामिनी नामकी कन्या है, जो गगन-मण्डलमें विख्यात है । अरुणके सम्पाति और जटायु नामके दो पुत्र हुए । उनमें सम्पातिके पुत्र बभू और शीघ्रग नामसे विख्यात हुए । जटायुके दो पुत्र कर्णिकार और शतगामी नामसे प्रसिद्ध हुए । इनके अतिरिक्त जटायुके सारस, रज्जुबाल और भेरुण्डनामक पुत्र भी थे । इन पक्षियोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है । सुव्रत ! सुरसा तथा कद्मोंके गर्भसे सहस्र फणोंवाले एक-एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई । परन्तु ! उनमें छब्बीस प्रधान हैं । उनके नाम ये हैं— शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्कै, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि । इन सभी सर्पोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अगणित थी, परंतु प्राचीनकालमें जनमेजयके सर्पयज्ञमें (इनमेंसे) प्रायः अधिकांश जला दिये गये । क्रोधवशाने अपने ही नामवाले (क्रोधवश नामक) दंष्ट्रधारी एक लाख राक्षसोंको जन्म दिया, जो भीमसेनद्वारा नष्ट कर दिये गये । संयत ब्रतवाली सुरभिने महर्षि कश्यपके संयोगसे रुद्रगणों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली गायों और भैंसोंको उत्पन्न किया । मुनिने मुनि-समुदाय तथा अप्सरा-समूहको पैदा किया, उसी प्रकार अरिष्टाने बहुत-से किन्नर और गन्धर्वोंको जन्म दिया । इरासे समस्त तृण, वृक्ष, लता और झाड़ी आदिकी उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार विश्वाने करोड़ों यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया तथा दितिने कश्यपके सम्पर्कसे उनचास मरुतोंको उत्पन्न किया, जो सभी धर्मज्ञ और देवप्रिय थे ॥ ३४—४७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

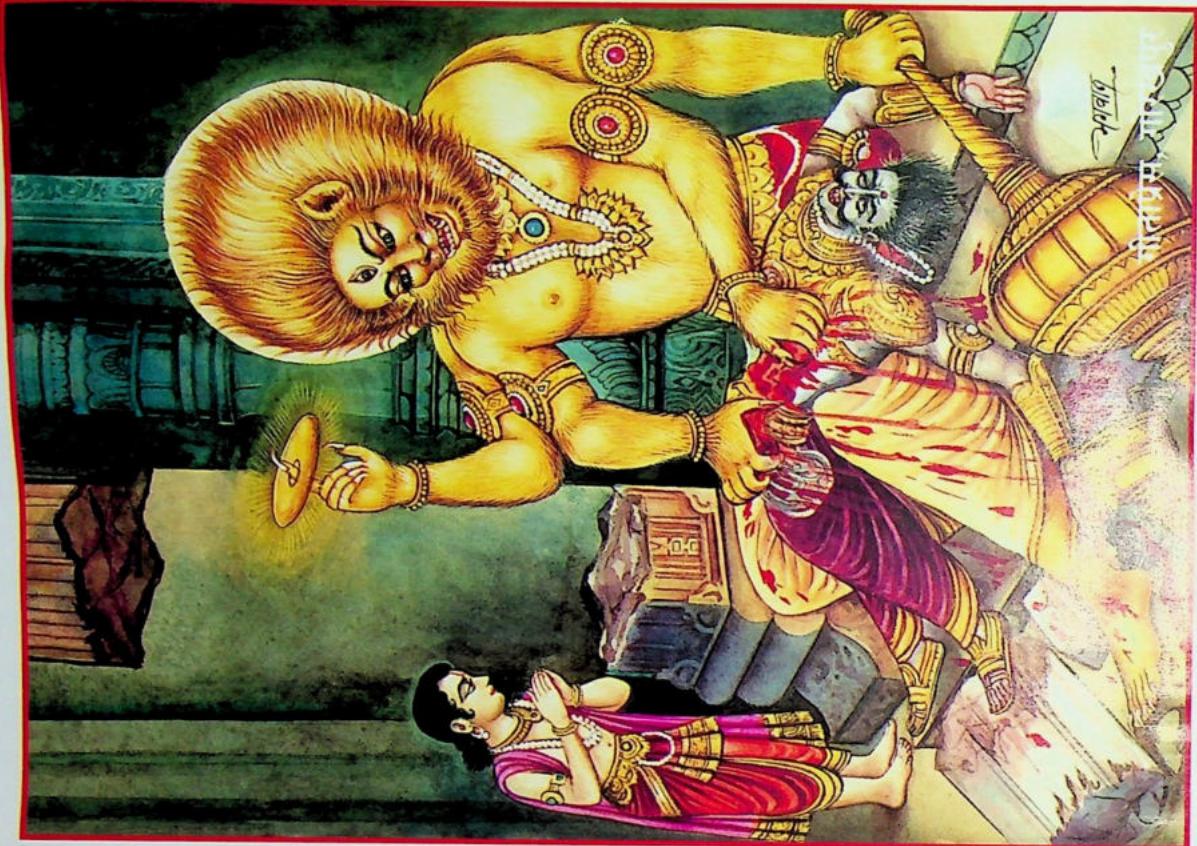
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥



गीताप्रेस, गोरखपुर

J.N. Prasad  
1984

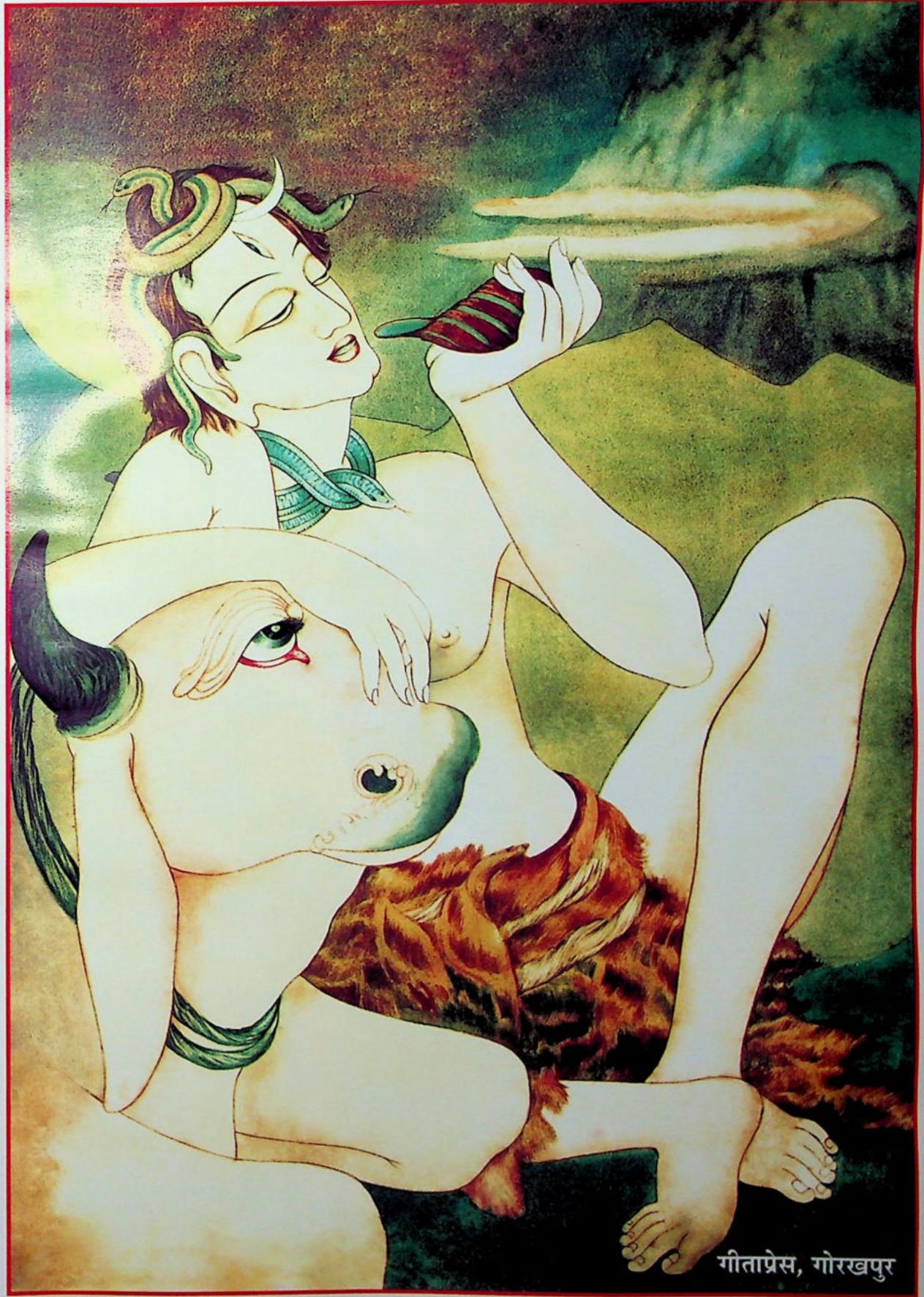
भगवान् मत्स्यरूपमें



भगवान् वृभिंह



भगवान् वराह

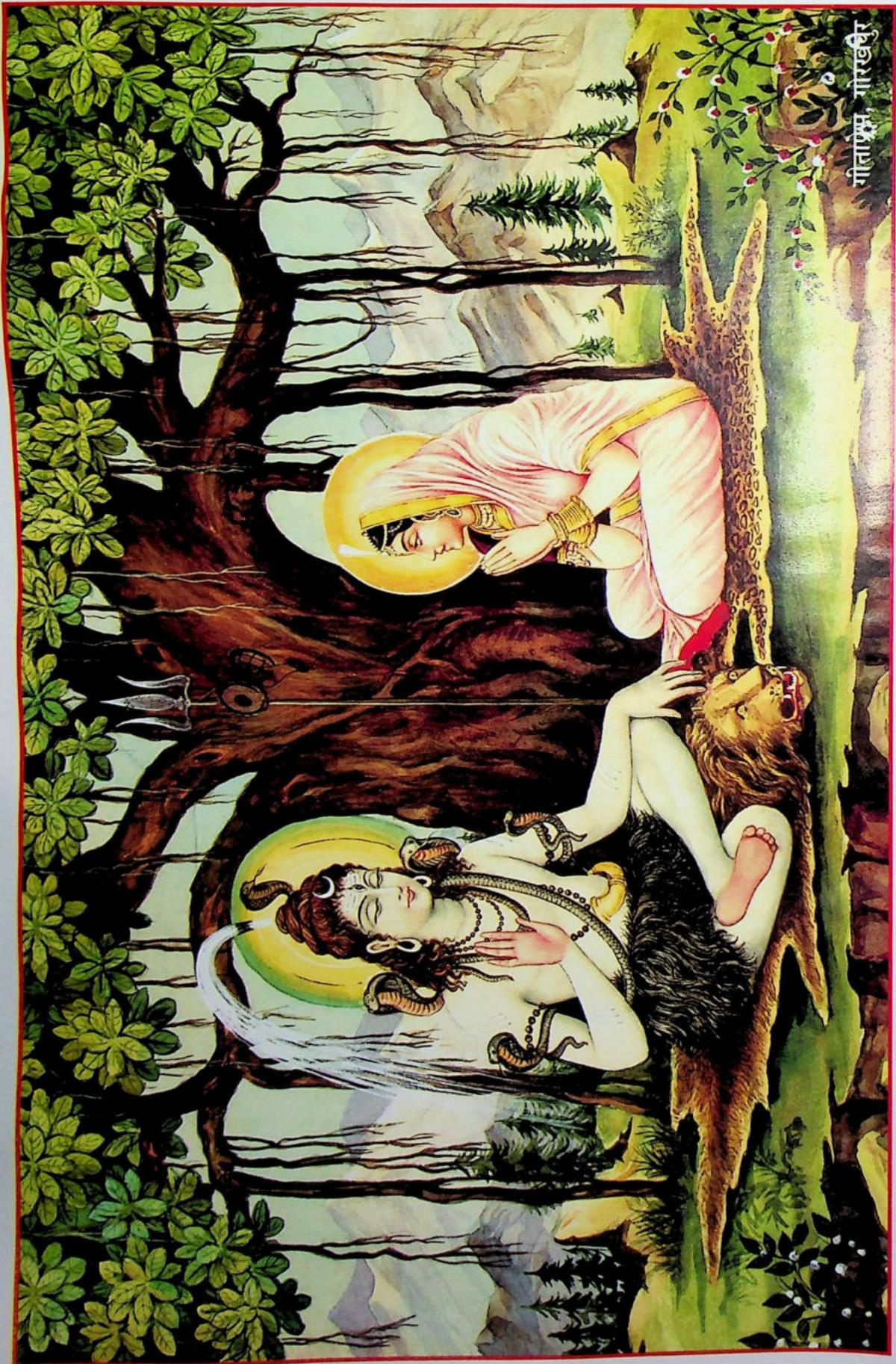


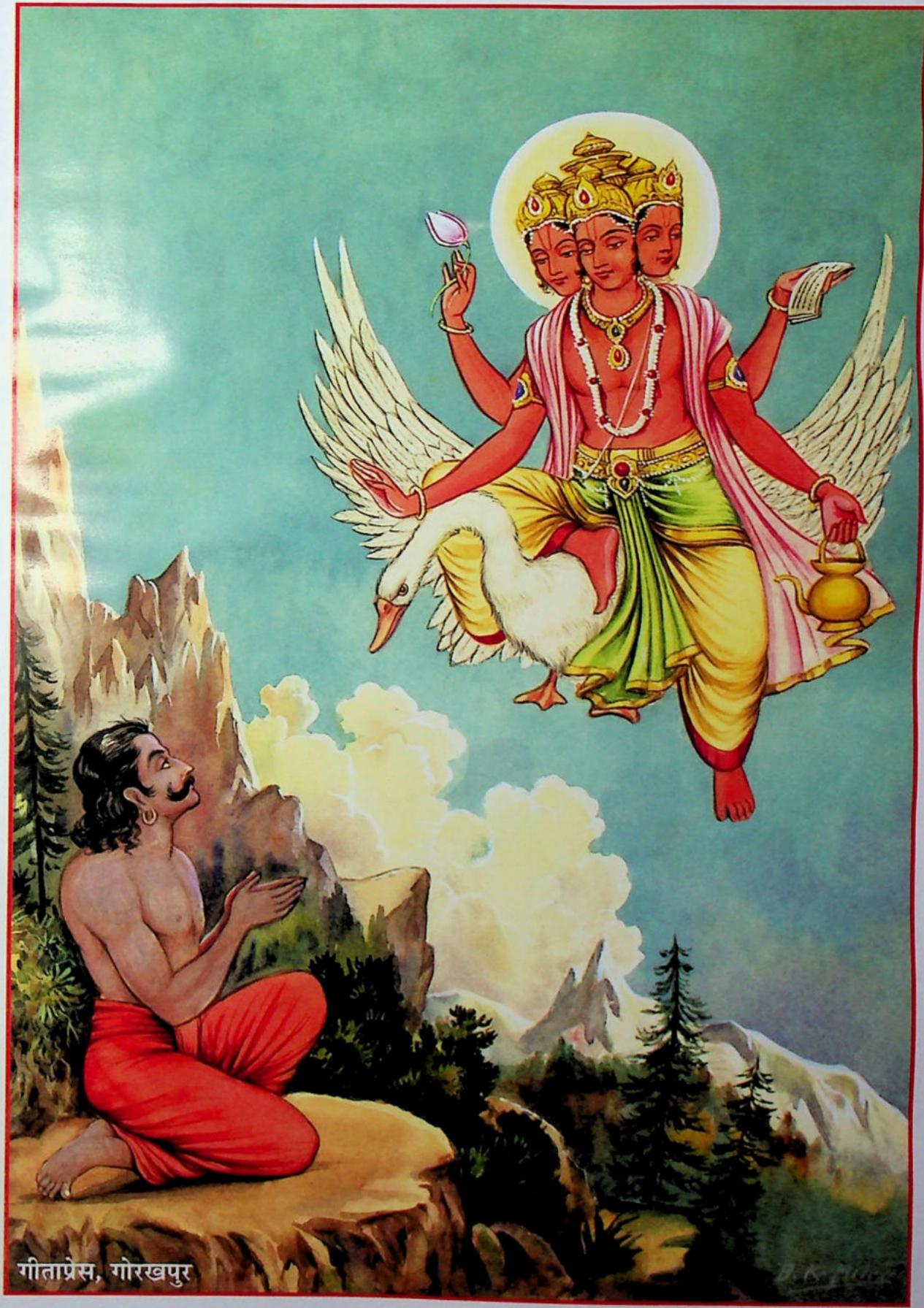
गीताप्रेस, गोरखपुर

हलाहल विषका पान

भगवान् शंकरद्वारा पार्वतीको उपदेश

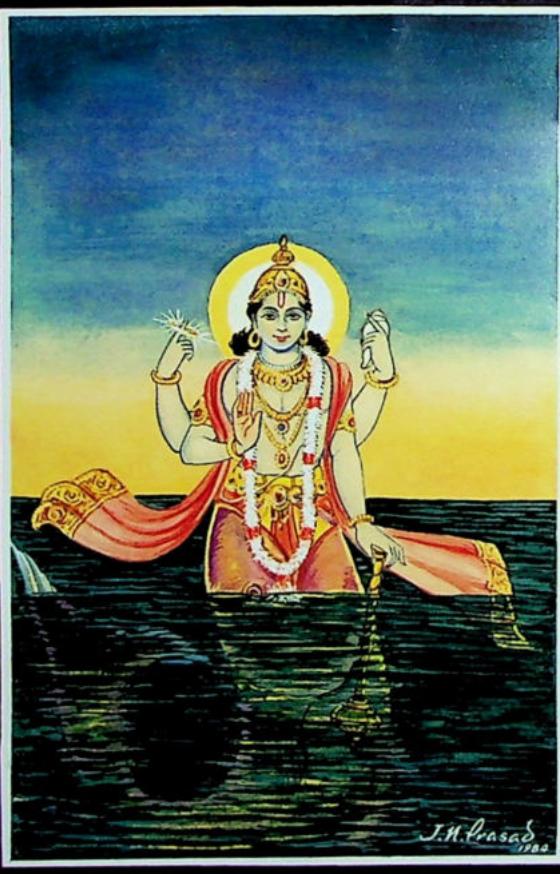
गीताप्रसाद, गोरखगु





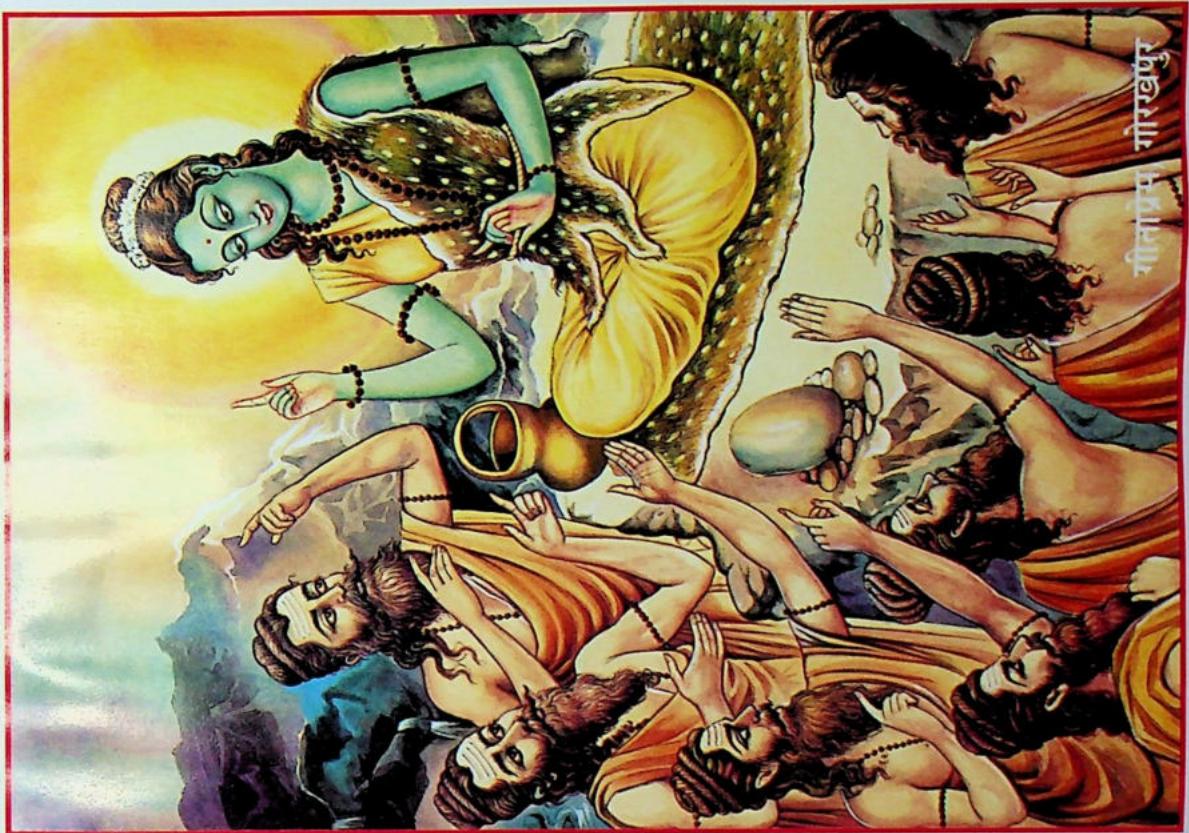
गीताप्रेस, गोरखपुर

वज्राङ्गको ब्रह्माजीद्वारा वरप्रदान



दशावतार

गीताप्रेस, गोरखपुर



समर्धिंगण और पार्वतीजी



पार्वतीजीकी कठोर तपस्या

भगवान् मत्स्य

गीताप्रेस, गोरखपुर



## सातवाँ अध्याय

मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-ब्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भिणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी उत्पत्ति

ऋष्य ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः।  
देवैर्जग्मुश्च सापत्रैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम्॥ १

सूत उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणा सुरैः।  
पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गत्वा भूलोकमुत्तमम्॥ २  
स्यमन्तपञ्चके क्षेत्रे सरस्वत्यास्तटे शुभे।  
भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह॥ ३  
तदा दितिर्देत्यमाता ऋषिरूपेण सुव्रत।  
फलाहारा तपस्तेषे कृच्छ्रं चान्द्रायणादिकम्॥ ४  
यावद् वर्षशतं साग्रं जराशोकसमाकुला।  
ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृच्छत॥ ५  
कथयन्तु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम्।  
व्रतं सौभाग्यफलदमिह लोके परत्र च॥ ६  
ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखा मदनद्वादशीब्रतम्।  
यस्याः प्रभावादभवत् सुतशोकविवर्जिता॥ ७

ऋष्य ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत मदनद्वादशीब्रतम्।  
सुतानेकोनपञ्चाशद् येन लेभे दितिः पुनः॥ ८

सूत उवाच

यद् वसिष्ठादिभिः पूर्वं दितेः कथितमुत्तमम्।  
विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत॥ ९  
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां नियतब्रतः।  
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततण्डुलपूरितम्॥ १०  
नानाफलयुतं तद्विद्विष्टुदण्डसमन्वितम्।  
सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम्॥ ११  
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तिः।  
ताप्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत्॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सूतजी!(दैत्योंकी जननी) दितिके पुत्र उनचास मरुत देवताओंके प्रिय कैसे बन गये? तथा अपने सौतेले भाई देवताओंके साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गयी?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—सुव्रत मुनियो! प्राचीनकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णु तथा देवगणोंद्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दिति शोकसे विहळ हो गयी। वह उत्तम भूलोकमें जाकर स्यमन्तपञ्चकक्षेत्रमें सरस्वतीके मङ्गलमय तटपर अपने पतिदेव महर्षि कश्यपकी आराधनामें तत्पर रहती हुई घोर तपमें निरत हो गयी। उस समय उसने ऋषियोंके समान फलाहारपर निर्भर रहकर कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि ब्रतोंका पालन किया। इस प्रकार बुढ़ापा और शोकसे अत्यन्त आकुल हुई दिति सौ वर्षोंतक उस कठोर तपका अनुष्ठान करती रही। तदनन्तर उस तपस्यासे सन्तास हुई दितिने वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—‘ऋषियो! आप लोग मुझे ऐसा ब्रत बतलाइये, जो पुत्र-शोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।’ तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने उसे मदनद्वादशी-ब्रतका विधान बतलाया, जिसके प्रभावसे वह पुत्रशोकसे उन्मुक्त हो गयी॥ २—७॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जिसका अनुष्ठान करनेसे दितिको पुनः उनचास पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, उस मदन-द्वादशीब्रतके विषयमें हमलोग भी सुनना चाहते हैं॥ ८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिके प्रति जिस उत्तम मदनद्वादशी-ब्रतका वर्णन किया था, उसीको आपलोग मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। ब्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्रमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायें। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुर्वण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करना चाहिये।

तस्मादुपरि कामं तु कदलीदलसंस्थितम्।  
 कुर्याच्छक्तरयोपेतां रतिं तस्य च वामतः ॥ १३  
 गन्धं धूं पं ततो दद्याद् गीतं वाद्यं च कारयेत्।  
 तदभावे कथां कुर्यात् कामकेशवयोर्नरः ॥ १४  
 कामनाम्नो हरेरच्च स्नापयेद् गन्धवारिणा।  
 शुक्लपुष्पाक्षततिलैर्चयेन्मधुसूदनम् ॥ १५  
 कामाय पादौ सम्पूज्य जडे सौभाग्यदाय च।  
 ऊरु स्मरायेति पुनर्मन्मथायेति वै कटिम् ॥ १६  
 स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः।  
 मुखं पद्ममुखायेति बाहू पञ्चशराय वै ॥ १७  
 नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम्।  
 ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १८  
 ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या स्वयं च लवणादृते।  
 भुक्त्वा तु दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १९  
 प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः।  
 हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते ॥ २०  
 अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्।  
 उपवासी त्रयोदश्यामर्चयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ २१  
 फलमेकं च सम्प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्।  
 ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥ २२  
 शश्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्।  
 काञ्छनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् ॥ २३  
 वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः।  
 शश्यागन्धादिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥ २४  
 होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्।  
 गव्येन हविषा तद्वत् पायसेन च धर्मवित् ॥ २५  
 विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।  
 इक्षुदण्डानथो दद्यात् पुष्पमालाश्च शक्तिः ॥ २६

उसके ऊपर केलेके पतेपर काम तथा उसके वाम भागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य आदिका भी प्रबन्ध करे। (अर्थाभावके कारण) गीत-वाद्य आदिका प्रबन्ध न हो सकनेपर मनुष्यको कामदेव और भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करना चाहिये। पुनः कामदेव नामक भगवान् विष्णुकी अर्चना करते समय उन्हें सुगन्धित जलसे स्नान करना चाहिये। श्वेत पुष्प, अक्षत और तिलोंद्वारा उन मधुसूदनकी विधिवत् पूजा करे। उस समय उन ‘विष्णुके पैरोंमें कामदेव, जड़ाओंमें सौभाग्यदाता, ऊरुओंमें स्मर, कटिभागमें मन्मथ, उदरमें स्वच्छोदर, वक्षःस्थलमें अनङ्ग, मुखमें पद्ममुख, बाहुओंमें पञ्चशर और मस्तकमें सर्वात्माको नमस्कार हैं’—यों कहकर भगवान् केशवका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। तदनन्तर प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—‘जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।’ ॥ ९—२० ॥

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन एक फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनुसहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पत्र शश्या, कामदेवकी स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ अनङ्ग (कामदेव)-को समर्पित करे (अर्थात् अनङ्गके उद्देश्यसे ब्राह्मणको दान दे)। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शश्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि ‘आप प्रसन्न हों।’ तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ ब्रतीको गोदुग्धसे बनी हुई हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गत्रा और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये।

यः कुर्याद् विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम् ।  
 स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम् ॥ २७  
 इह लोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते ।  
 यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः ॥ २८  
 सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम् ।  
 एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥ २९  
 कश्यपो ब्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा ।  
 चकार कर्कशां भूयो रूपयौवनशालिनीम् ॥ ३०  
 वरेणच्छन्दयामास सा तु वदे ततो वरम् ।  
 पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥ ३१  
 वरयामि महात्मानं सर्वामरनिष्ठूदनम् ।  
 उवाच कश्यपो वाक्यमिन्द्रहन्तारमूर्जितम् ॥ ३२  
 प्रदास्याम्यहमेवेह किंत्वेतत् क्रियतां शुभे ।  
 आपस्तम्बः करोत्विष्ट पुत्रीयामद्य सुब्रते ॥ ३३  
 विधास्यामि ततो गर्भमिन्द्रशत्रुनिष्ठूदनम् ।  
 आपस्तम्बस्ततश्चक्रे पुत्रेष्टि द्रविणाधिकाम् ॥ ३४  
 इन्द्रशत्रुर्भवस्वेति जुहाव च सविस्तरम् ।  
 देवा मुमुदिरे दैत्या विमुखाः स्युश्च दानवाः ॥ ३५  
 दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह तां पुनः ।  
 त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन् गर्भं वरानने ॥ ३६  
 संवत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने ।  
 संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि ॥ ३७  
 न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ।  
 नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥ ३८  
 जले च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत् ।  
 वल्मीकायां न तिष्ठेत न चोद्दिग्नमना भवेत् ॥ ३९  
 विलिखेन्न नखैर्भूमिं नाङ्गारेण न भस्मना ।  
 न शयालुः सदा तिष्ठेद् व्यायामं च विवर्जयेत् ॥ ४०  
 न तुषाङ्गारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत् ।  
 वर्जयेत् कलहं लोकैर्गात्रभङ्गं तथैव च ॥ ४१

जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है। जो स्मर, आनन्दात्मा, विष्णु और महेश्वरनामसे कहे गये हैं, उन्हीं अङ्गज भगवान् विष्णुका सुखार्थीको स्मरण करना चाहिये। यह सुनकर दितिने सारा कार्य यथावत्-रूपसे सम्पन्न किया (अर्थात् मदनद्वादशीब्रतका अनुष्ठान किया) ॥ २१—२९ ॥

दितिके उस ब्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नता-पूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न नवयुवती बना दिया तथा वर माँगनेको कहा। तब वर माँगनेके लिये उद्यत हुई दितिने कहा—‘पतिदेव ! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न और समस्त देवताओंका विनाशक हो।’ यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे ऐसी बात कही—‘शुभे ! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी एवं इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, किंतु इस विषयमें तुम यह काम करो कि आपस्तम्ब ऋषिसे प्रार्थना करके उनके द्वारा आज ही पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ। सुब्रते ! यज्ञकी समाप्ति होनेपर मैं (तुम्हारे उदरमें) इन्द्ररूपी शत्रुके विनाशक पुत्रका गर्भाधान करूँगा।’ तत्पश्चात् महर्षि आपस्तम्बने उस अत्यन्त खर्चीले पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस समय उन्होंने ‘इन्द्रशत्रुर्भवस्व—इन्द्रका शत्रु उत्पन्न हो’—इस मन्त्रसे विस्तारपूर्वक अग्निमें आहृति दी। (इस यज्ञसे देवताओंको रुष्ट होना चाहता था, परंतु) वे यह जानकर प्रसन्न हुए कि दैत्यों और दानवोंको इस यज्ञफलसे विमुख होना पड़ेगा ॥ ३०—३५ ॥

(यज्ञकी समाप्तिके बाद) कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और पुनः उससे कहा—‘वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और इस गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संध्याकालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, बिमबटपर न बैठे, मनको उद्धिग्र न करे, नखसे, लुआठीसे अथवा राखसे पृथ्वीपर रेखा न खींचे, सदा नींदमें अलसायी हुई न रहे, कठिन परिश्रमका काम न करे, भूसी, लुआठी, भस्म, हड्डी और खोपड़ीपर न बैठे, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे

न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिः स्यात् कदाचन ।  
 न शयीतोत्तरशिरा न चापरेशिरा: क्लचित् ॥ ४२  
 न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चार्द्धचरणा सती ।  
 नामङ्गल्ल्यां वदेद् वाचं न च हास्याधिका भवेत् ॥ ४३  
 कुर्यात् गुरुशुश्रूषां नित्यं माङ्गल्यतत्परा ।  
 सर्वोषधीभिः कोष्णोन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥ ४४  
 कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा ।  
 तिष्ठेत् प्रसन्नवदना भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ४५  
 दानशीला तृतीयायां पार्वण्यं नक्तमाचरेत् ।  
 इतिवृत्ता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी ॥ ४६  
 यस्तु तस्या भवेत् पुत्रः शीलायुर्वृद्धिसंयुतः ।  
 अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ॥ ४७  
 तस्मात्त्वमनया वृत्त्या गर्भेऽस्मिन् यत्नमाचर ।  
 स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया पुनः ॥ ४८  
 पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत ।  
 ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत ॥ ४९  
 अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागतः ।  
 विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः ॥ ५०  
 दितिछिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः ।  
 विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः ॥ ५१  
 अजानन् किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन् ।  
 ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२  
 मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा ।  
 अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुसा मुक्तमूर्धजा ॥ ५३  
 निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिरा: क्लचित् ।  
 ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः ॥ ५४  
 वज्रेण सप्तथा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः ।  
 ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ ५५  
 रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा ।  
 भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तथा हरिः ॥ ५६

और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं । वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर, न उद्विग्नचित्त होकर एवं न भीगे चरणोंसे ही कभी शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे । वह अपनी रक्षाका ध्यान रखे, स्वच्छ वेष-भूषासे युक्त रहे, वास्तु-पूजनमें तत्पर रहे, प्रसन्नमुखी होकर सदा पतिके हितमें संलग्न रहे, तृतीया तिथिको दान करे, पर्व-सम्बन्धी व्रत एवं नक्तव्रतका पालन करे । जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है । इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है । प्रिये ! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके इस गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो । तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं सभी जीवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । तब दिति महर्षि कश्यपद्वारा बताये गये नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी ॥ ३६—४९ ॥

(इस कार्यकलापकी सूचना पानेपर) इन्द्र भयभीत हो उठे और तुरन्त देवलोकको छोड़कर दितिके निकट आ पहुँचे । वे दितिकी सेवा करनेकी इच्छासे उसके समीप ही रहने लगे । इन्द्र सदा दितिके छिद्रान्वेषणमें ही लगे रहे । ऊपरसे तो वे विनम्र, प्रशान्त और प्रसन्न मुखवाले दीखते थे, परंतु भीतरसे वे दितिके कार्योंकी कुछ परवाह न करके सदा अपने ही हित-साधनमें दत्तचित्त रहते थे । इस प्रकार सौ वर्षोंकी समाप्तिमें जब तीन दिन शेष रह गये, तब दिति प्रसन्नतापूर्वक अपनेको सफलमनोरथ मानने लगी । उस समय आश्वर्यसे युक्त मनवाली दिति नींदके आलस्यसे आक्रान्त होकर पैरोंको बिना धोये बाल खोलकर सिरको नीचे किये कहीं दिनमें ही सो गयी । तब दितिकी उस त्रुटिको पाकर शचीके प्राणपति देवराज इन्द्र उसके उदरमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये । उन टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये । वे रोने लगे । रोते हुए उन सातों शिशुओंको

चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः।  
एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम्॥५७  
इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्टः पुनः पुनः।  
ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा॥५८  
धर्मस्य कस्य माहात्म्यात् पुनः सञ्जीवितास्त्वमी।  
विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम्॥५९  
नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात्।  
वत्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयः॥६०  
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम्।  
अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति॥६१  
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः।  
मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः॥६२  
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः।  
अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद् दुष्कृतं कृतम्॥६३  
कृत्वा मरुदण्णं देवैः समानममराधिपः।  
दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद् दिवम्॥६४  
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः।  
न जग्मुरैक्यमसुरैतस्ते सुरवल्लभाः॥६५

इति श्रीमात्म्ये महापुराणे आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीब्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके आदिसर्गमें मरुदण्णकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें मदनद्वादशीब्रत-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥७॥

## आठवाँ अध्याय

प्रत्येक सर्गके अधिपतियोंका अभिषेचन तथा पृथुका राज्याभिषेक

ऋष्य ऊचुः

आदिसर्गश्च यः सूत कथितो विस्तरेण तु।  
प्रतिसर्गं च ये येषामधिपास्तान् वदस्व नः॥१

इन्द्रने मना किया, (परंतु जब वे चुप नहीं हुए, तब) इन्द्रने पुनः उन रोते हुए शिशुओंमें प्रत्येकके सात-सात टुकड़े कर दिये। उस समय भी इन्द्र दितिके उदरमें ही स्थित थे। इस प्रकार वे टुकड़े उनचास शिशुओंके रूपमें परिवर्तित होकर जोर-जोरसे रुदन करने लगे। इन्द्र उन्हें बारम्बार मना करते हुए कह रहे थे कि 'मत रोओ।' (परंतु वे जब चुप नहीं हुए, तब) इन्द्रने मनमें विचार किया कि इसका क्या रहस्य है? किस धर्मके माहात्म्यसे ये सभी (मेरे वज्रद्वारा काटे जानेपर भी) पुनः जीवित हैं? तत्पश्चात् ध्यानयोगके द्वारा इन्द्रको ज्ञात हो गया कि यह मदनद्वादशीब्रतका फल है। अवश्य ही श्रीकृष्णके पूजनके प्रभावसे इस समय यह घटना घटी है, जो वज्रद्वारा मारे जानेपर भी ये शिशु विनाशको नहीं प्राप्त हुए। इसी कारण उदरमें स्थित रहते हुए एकसे अनेक (उनचास) हो गये। इसलिये अवश्य ही ये अवध्य हैं और (मेरी इच्छा है कि ये) देवता हो जायें। चूँकि गर्भमें स्थित रहकर रोते हुए इनको मैंने 'मा रुदत्'-मत रोओ—ऐसा कहा है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होंगे और इन्हें भी यज्ञोंमें भाग मिलेगा। ऐसा कहकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये और दितिको प्रसन्न करके उससे क्षमा-याचना करने लगे—'देवि! अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मैंने यह दुष्कर्म कर डाला है, मुझे क्षमा करो।' इस प्रकार देवराजने मरुदण्णको देवताओंके समान बनाया और पुत्रोंसमेत दितिको विमानमें बैठाकर वे अपने साथ स्वर्गलोकको ले गये। विप्रवरो! इसी कारण मरुदण्ण यज्ञोंमें भाग पानेके अधिकारी हुए। उन्होंने असुरोंके साथ एकता नहीं की; इसीलिये वे देवताओंके प्रेमपात्र हो गये॥५०—६५॥

सूत उवाच  
**यदाभिषिक्तः सकलह्याधिराज्ये**  
 पृथुर्धर्शित्र्यामधिपो बभूव।  
**तदौषधीनामधिपं चकार**  
 यज्ञब्रतानां तपसां च चन्द्रम्॥ २  
**नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्म-**  
 लतावितानस्य च रुक्मगर्भः।  
**अपामधीशं वरुणं धनानां**  
 राजां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत्॥ ३  
**विष्णुं रवीणामधिपं वसूना-**  
 मग्निं च लोकाधिपतिश्वकार।  
**प्रजापतीनामधिपं च दक्षं**  
 चकार शक्रं मरुतामधीशम्॥ ४  
**दैत्याधिपानामथ दानवानां**  
 प्रह्लादमीशं च यमं पितृणाम्।  
**पिशाचरक्षःपशुभूतयक्ष-**  
 वेतालराजं त्वथ शूलपाणिम्॥ ५  
**प्रालेयशैलं च पतिं गिरिणा-**  
 मीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम्।  
**गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणा-**  
 मीशं पुनश्चित्ररथं चकार॥ ६  
**नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं**  
 सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश।  
**दिशां गजानामधिपं चकार**  
 गजेन्द्रमैरावतं नामधेयम्॥ ७  
**सुपर्णमीशं पततामथाश्व-**  
 राजानमुच्चैःश्रवसं चकार।  
**सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च**  
 प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम्॥ ८  
**पितामहः पूर्वमथाभ्यषिङ्ग-**  
 च्छैतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान्।  
**पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिङ्ग-**  
 न्नाम्नासुधर्माणमरातिकेतुम्॥ ९  
**ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार**  
 सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम्।  
**सुकेतुमन्तं दिशि पश्चिमायां**  
 चकार पश्चाद् भुवनाण्डगर्भः॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जब महाराज पृथु समस्त भूमण्डलके अधिनायक-पदपर अभिषिक्त होकर सबके अधिपति हुए, उस समय उन हिरण्यगर्भ ब्रह्माने चन्द्रमाको ओषधि, यज्ञ, ब्रत, तप, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लतासमूहका अध्यक्ष बनाया। उन्होंने वरुणको जलका, कुबेरको धन और राजाओंका,<sup>२</sup> विष्णुको आदित्योंका, अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि शिवको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको छोटी-बड़ी नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, प्रबल पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको, सर्पोंका, ऐरावत नामक गजेन्द्रको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको बन्य जीवोंका, वृषभको गौओंका और पाकड़को समस्त वनस्पतियोंका अधिनायक नियुक्त किया। फिर ब्रह्माने सर्गारम्भके समय सम्पूर्ण दिशाओंके अधिनायकोंको भी अभिषिक्त किया। उन्होंने शत्रुओंके संहारक सुधर्माको पूर्व दिशाके दिक्पाल-पदपर स्थापित किया। इसके बाद सर्वेश्वर शङ्खपदको दक्षिण दिशाका स्वामी बनाया। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें अन्तर्भूत करनेवाले ब्रह्माने सुकेतुमानको पश्चिम दिशाका अध्यक्ष बनाया॥ २—१०॥

१. पाठान्तर — ऐरावण । २. इसीलिये वेदादिमें कुबेरको 'राजाधिराज वैश्रवण' कहा गया है।

हिरण्यरोमाणमुदगिदगीशं

प्रजापतिर्देवसुतं चकार।

अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः

शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम्॥ ११ ॥

चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो

नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम्।

गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये

वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते।

प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य

बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः॥ १२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें आधिपत्याभिषेचन नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८ ॥

प्रजापति ब्रह्माने देवपुत्र हिरण्यरोमाको उत्तर दिशाका स्वामित्व प्रदान किया। ये दिक्पालगण आज भी शत्रुओंको सन्तास करते हुए पृथ्वीकी सब ओरसे रक्षा करते हैं। इन्हीं चारों दिक्पालोंद्वारा पहले-पहल भूतलपर पृथु नामके नरेश अभिषिक्त हुए थे। चाक्षुष-मन्वन्तरकी समाप्तिके बाद पुनः वैवस्वतमन्वन्तरके प्रारम्भ होनेपर सूर्यवंशके चिह्नस्वरूप ये राजा पृथु इस चराचर जगत्के प्रजापति हुए थे॥ ११-१२ ॥

## नवाँ अध्याय

### मन्वन्तरोंके चौदह देवताओं और समर्पियोंका विवरण

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम्।  
पूर्वेषां चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन॥ १

मत्स्य उवाच

मन्वन्तराणि राजेन्द्र मनूनां चरितं च यत्।  
प्रमाणं चैव कालस्य तां सृष्टिं च समाप्तः॥ २

एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन।  
यामा नाम पुरा देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे॥ ३

समैव ऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः।  
आग्नीधश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च॥ ४

ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यो मेधा मेधातिथिर्वसुः।  
स्वायम्भुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्धनाः॥ ५

प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जगमुर्यत् परमं पदम्।  
एतत् स्वायम्भुवं प्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम्॥ ६

स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारे देववर्चसः।  
नभोनभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्धनाः॥ ७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार सृष्टि-सम्बन्धी वर्णन सुनकर मनुने भगवान् जनार्दनसे पुनः निवेदन किया—मधुसूदन! अब पूर्वमें उत्पन्न हुए मनुओंके चरित्रिका वर्णन कीजिये॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजेन्द्र! अब मैं मन्वन्तरोंको, मनुओंके सम्पूर्ण चरित्रिको, उनमें प्रत्येकके शासनकालको और उनके समयकी सृष्टिके वृत्तान्तको संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; तुम उसे एकाग्रचित्त एवं प्रशान्त मनसे श्रवण करो। मार्तण्डनन्दन! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें याम नामक देवगण थे। मरीचि (अत्रि) आदि मुनि ही समर्पि थे। इन स्वायम्भुव मनुके आग्नीध, अग्निबाहु, सह, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु नामके दस पुत्र थे, जिनसे वंशका विस्तार हुआ। ये सभी प्रतिसर्गकी रचना करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव-मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब इसके पश्चात् स्वारोचिष मनुका वृत्तान्त सुनो। स्वारोचिष मनुके नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु—ये चार पुत्र थे, जो सभी देवताओंके सदृश वर्चस्वी और कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे।

दत्तो निश्च्यवनः स्तम्बः प्राणः कश्यप एव च ।  
 और्वो बृहस्पतिश्वेव ससैते ऋषयः स्मृताः ॥ ८  
 देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे ।  
 हस्तीन्द्रः सुकृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मयः ॥ ९  
 वसिष्ठस्य सुताः सस ये प्रजापतयः स्मृताः ।  
 द्वितीयमेतत् कथितं मन्वन्तरमतः परम् ॥ १०  
 औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम् ।  
 मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दश पुत्रानजीजनत् ॥ ११  
 ईष ऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च ।  
 मधुश्च माधवश्वेव नभस्योऽथ नभास्तथा ॥ १२  
 सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्तिवर्धनः ।  
 भावनास्तत्र देवाः स्युरुर्जाः समर्षयः स्मृताः ॥ १३  
 कौकुरुणिडश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणः शिवः ।  
 सितश्च सम्मितश्वेव ससैते योगवर्धनाः ॥ १४  
 मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम् ।  
 कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च ॥ १५  
 तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सस तामसे ।  
 साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥ १६  
 अकल्पस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः ।  
 तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरंतपौ ॥ १७  
 तपोभोगी तपोयोगी धर्मचाररताः सदा ।  
 तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः ॥ १८  
 पञ्चमस्य मनोस्तद्वद् रैवतस्यान्तरं शृणु ।  
 देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥ १९  
 हिरण्यरोमा सप्तश्चः ससैते ऋषयः स्मृताः ।  
 देवाश्चामूर्तरजस्तथा प्रकृतयः शुभाः ॥ २०  
 अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान् हव्यपः कपिः ।  
 युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः ॥ २१  
 धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः ।  
 भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ॥ २२  
 विवस्वानतिनामा च षष्ठे समर्षयोऽपरे ।  
 चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः ॥ २३

इस मन्वन्तरमें दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति—ये सर्वांगी बतलाये गये हैं। इस स्वारोचिष-मन्वन्तरमें होनेवाले देवगण तुषित नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महर्षि वसिष्ठके हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात पुत्र प्रजापति कहे गये हैं। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके अनन्तर औत्तमि नामक (तीसरे) शुभकारक मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें औत्तमि नामक मनु हुए थे, जिन्होंने दस पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभस तथा सह। इनमें सबसे कनिष्ठ सह परम उदार एवं कीर्तिका विस्तारक था। इस मन्वन्तरमें भावना नामक देवगण हुए तथा कौकुरुणिड, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित और सम्मित—ये सर्वांगी कहलाये। ये सातों अत्यन्त ऊर्जस्वी और योगके प्रवर्धक थे ॥ २—१४ ॥

चौथा मन्वन्तर तामस नामसे विख्यात है। इस तामस-मन्वन्तरमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान्—ये सात मुनि हुए तथा देवगण साध्य नामसे कहे गये। तामस मनुके अकल्पष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परंतप, तपोभोगी और तपोयोगी नामक दस पुत्र थे। ये सभी सदा सदाचारमें निरत रहनेवाले एवं वंशविस्तारक थे। अब पाँचवें रैवत-मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। इस मन्वन्तरमें देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्तश्च—ये सर्वांगी बतलाये गये हैं। देवगण अमूर्तरजा नामसे विख्यात थे और (सभी छः) प्रकृतियाँ (प्रजाएँ) सत्कर्ममें निरत रहती थीं। अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र थे, जो सभी धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके पश्चात् छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें भृगु सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद, विवस्वान् और अतिनामा—ये सर्वांगी थे तथा देवगण लेखानामसे प्रख्यात थे ॥ १५—२३ ॥

ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः ।  
 चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः ॥ २४  
 रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ।  
 प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु ॥ २५  
 अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम् ।  
 सप्तमं तत् प्रवक्ष्यामि यद् वैवस्वतमुच्यते ॥ २६  
 अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा ।  
 भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ २७  
 जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः ।  
 कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् ॥ २८  
 साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ ।  
 आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्त देवगणाः स्मृताः ॥ २९  
 इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि ।  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः ॥ ३०  
 कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम् ।  
 सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भावि तथान्तरम् ॥ ३१  
 अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा ।  
 शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः ॥ ३२  
 धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च ।  
 चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान् ॥ ३३  
 भविष्या दश सावर्ण्यर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः ।  
 रौच्यादयस्तथान्येऽपि मनवः सम्प्रकीर्तिताः ॥ ३४  
 रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति ।  
 मनुर्भूतिसुतस्तद्वद् भौत्यो नाम भविष्यति ॥ ३५  
 ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः ।  
 ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥ ३६  
 अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः ।  
 षड्गुणं युगसहस्रमेभिर्व्यासं नराधिप ॥ ३७  
 स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सच्चराचरम् ।  
 कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥ ३८  
 एते युगसहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः ।  
 ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यं याता यास्यन्ति वै द्विजाः ॥ ३९

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरानुकीर्तन नामक नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

इसी प्रकार उस मन्वन्तरमें लेखा, ऋभव, ऋभाद्य, वारिमूल और दिवौकस नामसे देवताओंकी पाँच योनियाँ बतलायी गयी हैं। पहले स्वायम्भुव मनुके वंश-वर्णनमें मैंने जैसा तुमसे कहा है, (कि स्वायम्भुव मनुके दस पुत्र थे) वैसे ही चाक्षुष मनुके भी रु आदि दस पुत्र थे। इस प्रकार मैंने तुम्हें चाक्षुष-मन्वन्तरका परिचय दे दिया। अब उस सातवें मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, जो (वर्तमानमें) वैवस्वत नामसे विख्यात है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी, भरद्वाज, प्रतापी, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात महर्षि इस समय भी वर्तमान हैं। ये सप्तर्षि धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परमपदको प्राप्त करते हैं। वैवस्वत-मन्वन्तरमें साध्य, विश्वेदेव, रुद्र, मरुत, वसु, अश्विनीकुमार और आदित्य—ये सात देवगण कहे जाते हैं। वैवस्वत मनुके भी इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए, जो भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार सभी मन्वन्तरोंमें सात-सात महर्षि होते हैं, जो धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परमपदको छले जाते हैं॥ २४—३० १ ॥

राजर्षे ! अब मैं भावी सावर्णि-मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप और राम (परशुराम)—ये सात ऋषि बतलाये गये हैं। सावर्णि मनुके धृति, वरीयान्, यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईह्य, सुमति, वसु और पराक्रमी शुक्र—ये दस पुत्र होंगे, ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार भविष्यमें होनेवाले रौच्य आदि अन्यान्य मन्वन्तरोंका भी वर्णन किया गया है। उस समय प्रजापति रुचिका पुत्र रौच्य मनुके नामसे विख्यात होगा तथा उसी तरह भूतिका पुत्र भौत्य मनुके नामसे पुकारा जायगा। उसके बाद ब्रह्माके पुत्र मेरुसावर्णि मनु नामसे प्रसिद्ध होंगे। इनके अतिरिक्त ऋतु, ऋतधामा\* और विष्वक्सेन नामक तीन मनु और उत्पन्न होंगे। नरेश्वर ! इस प्रकार मैंने तुम्हें अतीत तथा भविष्यमें होनेवाले मनुओंका वृत्तान्त बतला दिया। यह भूमण्डल नौ सौ चौरानबे (९९४) (प्रायः एक सहस्र युगोंतक इन मनुओंसे व्याप्त रहता है (अर्थात् इन १४ मनुओंमें प्रत्येक मनुका कार्यकाल ७१ दिव्य (चतुर) युगोंतक रहता है)। इस प्रकार वे सभी अपने-अपने कार्यकालमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पान्तके समय ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाते हैं। द्विजवरो ! इस तरह ये सभी मनु एक सहस्र युगके अन्तमें बारम्बार उत्पन्न होकर विनष्ट होते रहते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण विष्णु-सायुज्यको प्राप्त हो जाते हैं तथा भविष्यमें भी इसी प्रकार प्राप्त करते रहेंगे॥ ३१—३९ ॥

\* पद्मादिपुराणोंमें ये ऋभु और वीतधामा नामसे निर्दिष्ट हैं।

## दसवाँ अध्याय

महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

**बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा ।  
पार्थिवाः पृथिवीयोगात् पृथिवी कस्य योगतः ॥ १  
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी ।  
गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद् ब्रवीहि नः ॥ २**

सूत उवाच

**वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः ।  
मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा ॥ ३  
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा ।  
अथर्वनिरतश्चासीद् बलवान् वसुधाधिषः ॥ ४  
लोकेऽप्यर्थमकृजातः परभार्यापहारकः ।  
धर्मचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः ॥ ५  
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः ।  
शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥ ६  
ममन्थुब्राह्मणास्तस्य बलाद् देहमकल्मषाः ।  
तत्कायान्मर्यमानात्तु निपेतुम्लेच्छजातयः ॥ ७  
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः ।  
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः ॥ ८  
उत्पन्नो दक्षिणाद्घस्तात् सधनुः सशरो गदी ।  
दिव्यतेजोमयवपुः सरलकवचाङ्गदः ॥ ९  
पृथोरेवाभवद् यत्नात् ततः पृथुरजायत ।  
स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम् ॥ १०  
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत् पुनः ।  
निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ॥ ११**

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सुना जाता है कि पूर्वकालमें बहुत-से भूपाल इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही वे 'पार्थिव' या पृथ्वीपति कहे गये हैं, परंतु भूमिका 'पृथ्वी' यह पारिभाषिक नाम किस सम्बन्धसे तथा किस कारण पड़ा एवं यह 'गौ' नामसे क्यों विख्यात हुई? इनका रहस्य हमें बतलाइये ॥ १-२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति हुए थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया। सुनीथाका मुख बड़ा कुरुप था। उसके गर्भसे वेन नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ; किंतु वह सदा अधर्ममें ही निरत रहता था। परायी स्त्रियोंका अपहरण उसका नित्यका काम था। इस प्रकार वह लोकमें भी अधर्मका ही प्रचार करने लगा। तब महर्षियोंने जागतिक धर्माचरणकी सिद्धिके लिये उससे (बड़ी) अनुनय-विनय की; परंतु अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण जब उसने उनकी बात न मानी (प्रजाको अभय नहीं किया), तब महर्षियोंने उसे शाप देकर मार डाला। तत्पश्चात् (शासकहीन राज्यमें) अराजकताके भयसे भीत होकर उन निष्पाप ब्राह्मणोंने बलपूर्वक वेनके शरीरका मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे शरीरस्थित माताके अंशसे म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुईं, जिनका रंग काले अङ्गनका-सा था। (फिर) उसके शरीरस्थित धर्मपरायण पिता (अङ्ग)-के अंशभूत दाहिने हाथसे एक धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर दिव्य तेजसे सम्पन्न था। वह रत्नजटित कवच और बाजूबंदसे विभूषित था, उसके हाथोंमें धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे। महान् प्रयत्नसे मथे जानेपर वह वेनकी पृथु (मोटी) भुजासे प्रकट हुआ था, अतः पृथु नामसे प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि ब्राह्मणोंने उसे (पिताके राज्यपर) अभिषिक्त कर दिया था, तथापि उसने परम दारुण तपस्या करके विष्णुभगवान्को प्रसन्न किया और उनके वरदानके प्रभावसे (चराचर लोकको जीतकर) पुनः स्वयं भी समस्त भूमण्डलकी अध्यक्षता प्राप्त की। तदनन्तर अमित पराक्रमी पृथु भूतलको स्वाध्याय, वषट्कार और धर्मसे विहीन देखकर

दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छ्रेणामितविक्रमः ।  
ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥ १२

पृष्ठोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीपशरासनः ।  
ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १३

पृथुरप्यवदद् वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते ।  
सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥ १४

तथैव साब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः ।  
स्वके पाणौ पृथुर्वर्त्सं कृत्वा स्वायभुवं मनुम् ॥ १५  
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै ।  
ततस्तु ऋषिभिर्दुर्गथा वत्सः सोमस्तदाभवत् ॥ १६  
दोग्धा बृहस्पतिरभूत् पात्रं वेदस्तपो रसः ।  
देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धा मित्रस्तदाभवत् ॥ १७  
इन्द्रो वत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम् ।  
देवानां काञ्जनं पात्रं पितृणां राजतं तथा ॥ १८  
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः ।  
अलाबुपात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत् ॥ १९  
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत् पुनः ।  
असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ॥ २०  
पात्रे मायामभूद् वत्सः प्राह्णादिस्तु विरोचनः ।  
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीन्माया येन प्रवर्तिता ॥ २१  
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्धानीप्सुभिः ।  
कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ॥ २२  
प्रेतरक्षोगणैर्दुर्गथा धारारुधिरमुल्बणम् ।  
रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्स एव तु ॥ २३  
गन्धवैश्च पुरा दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः ।  
वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान् पदमदले तथा ॥ २४

कुद्ध हो उठे और धनुषपर बाण चढ़ाकर उसे भस्म कर देनेके लिये उद्यत हो गये । यह देखकर भूमि (भयभीत होकर) गौका रूप धारणकर भाग चली । इधर प्रचण्ड धनुर्धर पृथु भी उसके पीछे दौड़ पड़े । (इस प्रकार पृथुको पीछा करते देख वह गौरूपा भूमि हताश होकर) एक स्थानपर खड़ी हो गयी और बोली ' (नाथ ! आपकी प्रसन्नताके लिये) मैं क्या करूँ ?' तब पृथुने ऐसी बात कही— 'सुव्रते ! तुम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करो ।' यह सुनकर पृथ्वी बोली— 'अच्छा, ऐसा ही होगा ।' (इस प्रकार पृथ्वीकी अनुमति जानकर) उन नरेश्वर पृथुने स्वायभ्वुव मनुको बछड़ा बनाकर अपनी हथेलीमें गौरूपी पृथ्वीका दोहन किया । वह दुहा हुआ पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे प्रजाका जीवन-निर्वाह होता है ॥ ३—१५१ ॥

(फिर क्या था ? अब तो दोहनकी शृङ्खला ही चल पड़ी) पुनः ऋषियोंने भी उस पृथ्वीको दुहा । उस समय चन्द्रमा बछड़ा, दुहनेवाले महर्षि बृहस्पति, पात्रवेद और दुहा गया पदार्थ तप हुआ । देवताओंने भी पृथ्वीका दोहन किया । उस समय दुहनेवाले मित्र (देवता), इन्द्र बछड़ा तथा क्षीर (दुहा गया रस) ऊर्जस्वी बल हुआ । उस दोहनमें देवताओंका पात्र स्वर्णमय था । अन्तकने भी पृथ्वीका दोहन किया, उसमें यमराज बछड़ा बने और स्वधा रस था । पितरोंका पात्र रजतमय था । नागोंके दोहनमें नागराज धृतराष्ट्र दुहनेवाले, नागराज तक्षक बछड़ा, पात्र तुम्बी और क्षीर—दुहा हुआ पदार्थ—विष था । असुरोंद्वारा भी इस पृथ्वीका दोहन किया गया था । उन्होंने लौहमय पात्रमें इन्द्रको पीड़ित करनेवाली मायाको दुहा । उस कार्यमें प्रह्लाद-पुत्र विरोचन बछड़ा और मायाका प्रवर्तक द्विमूर्धा दुहनेवाला था । महीपते ! यक्षोंको अन्तर्धान-विद्याकी अभिलाषा थी, अतः उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें पृथ्वीका दोहन किया था । प्रेतों और राक्षसोंने पृथ्वीसे भयंकर रुधिरकी धाराका दोहन किया । उसमें रौप्यनाभ नामक प्रेत दुहनेवाला और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था । अप्सराओंके साथ गन्धवैश्च पूर्वकालमें चैत्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया था;

दोग्धा वरसुचिनीम नाट्यवेदह्यस्य पारगः ।  
 गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ॥ २५  
 औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः ।  
 वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः ॥ २६  
 वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।  
 पालाशपात्रे दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः ॥ २७  
 प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षधनाधिपः ।  
 एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम् ॥ २८  
 आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति ।  
 न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत् ॥ २९  
 नोपसर्गभयं किञ्चित् पृथौ राजनि शासति ।  
 नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥ ३०  
 धनुष्कोट्या च शैलेन्नानुत्सार्य स महाबलः ।  
 भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ ३१  
 न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नराः ।  
 क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः ॥ ३२  
 धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति ।  
 कथितानि च पात्राणि यत् क्षीरं च मया तव ॥ ३३  
 येषां यत्र रुचिस्तत्तद् देयं तेभ्यो विजानता ।  
 यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ३४  
 दुहितृत्वं गता यस्मात् पृथोर्धर्मवतो मही ।  
 तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ॥ ३५

उस कार्यमें नाट्य-वेदका पारगामी विद्वान् वरसुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था । पर्वतोंने पृथ्वीसे अनेक प्रकारके रत्नों और दिव्य ओषधियोंका दोहन किया । उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था । वृक्षोंने पृथ्वीसे पलाशपत्रके पात्रमें (ठहनी आदिके) कटनेके बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा । उस समय पुष्प और लताओंसे लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था । इसी प्रकार अन्यान्य वर्गके प्राणियोंने भी उस समय अपने-अपने इच्छानुसार पृथ्वीका दोहन किया था ॥ १६—२८ ॥

महाराज पृथुके राज्यमें प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे सम्पन्न थी । उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था । महाराज पृथुके शासनकालमें किसी उपसर्ग (आधिदैविक एवं आधिभौतिक उपद्रव)-का भय नहीं था । लोग दुःख-शोकसे रहित होकर सदा सुखमय जीवनयापन करते थे । उन महाबली पृथुने प्रजाओंकी हितकामनासे प्रेरित होकर अपने धनुषकी कोटिसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर पृथ्वीके धरातलको समतल कर दिया था । पृथुके राज्यकालमें न तो पुर, ग्राम और दुर्ग थे, न मनुष्य अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे । (उस समय आत्मरक्षाके लिये इनकी कोई आवश्यकता न थी ।) रोगोंका सर्वथा अभाव था । क्षय-विनाश एवं सातिशयता—परस्परकी विषमताका दुःख \* उन्हें नहीं देखना पड़ता था । प्रजाओंमें अर्थशास्त्रके प्रति आदर नहीं था, अर्थात् लोभका चिह्नमात्र भी नहीं था । उनमें एकमात्र धर्मकी ही वासना थी । ऋषियो ! इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वीके दोहनपात्रोंका तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, उसका भी वर्णन किया । उनमें जिस वर्णके प्राणियोंकी जिस पदार्थकी प्राप्तिकी रुचि हो, उसे वही पदार्थ यज्ञों और श्राद्धोंमें अर्पित करना चाहिये । इस प्रकार यह पृथ्वी-दोहनका प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया । यतः पृथ्वी धर्मात्मा पृथुकी कन्या बन चुकी थी, अतः पृथुके अतिशय अनुरागके कारण विद्वानोंद्वारा ‘पृथ्वी’ नामसे कही जाने लगी ॥ २९—३५ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें वैन्याभिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

\* इसे विस्तारसे समझनेके लिये योगवासिष्ठ १। १। ३०—४० देखना चाहिये ।

## ग्र्याहवाँ अध्याय

सूर्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन तथा इलाका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशमखिलं वद सूत यथाक्रमम्।  
सोमवंशं च तत्त्वज्ञ यथावद् वक्तुमर्हसि॥ १  
  
सूत उवाच

विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत् सुतः।  
तस्य पत्नीत्रयं तद्वत् संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा॥ २  
रेवतस्य सुता राज्ञी रैवतं सुषुवे सुतम्।  
प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्री संज्ञा तथा मनुम्॥ ३  
यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः।  
ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः॥ ४  
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम्।  
त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नामा छायेति भामिनी॥ ५  
पुरतः संस्थितां दृष्ट्वा संज्ञा तां प्रत्यभाषत।  
छाये त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने॥ ६  
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय।  
तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात् कामाय सुब्रता॥ ७  
कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात्।  
जनयामास तस्यां तु पुत्रं च मनुरूपिणम्॥ ८  
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्मनोर्वैवस्वतस्य च।  
ततः शनिं च तपतीं विष्ट्रिं चैव क्रमेण तु॥ ९  
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः।  
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा॥ १०  
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्छितः।  
संतर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम्॥ ११  
शशाप च यमं छाया भक्षितः कृमिसंयुतः।  
पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्त्रवः॥ १२

ऋषियोंने पूछा—तत्त्वज्ञ सूतजी! अब आप हम लोगोंसे सम्पूर्ण सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका क्रमशः यथार्थ-रूपसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें महर्षि कश्यपसे अदितिको विवस्वान् (सूर्य) पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे। उनकी संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा नामकी तीन पत्नियाँ थीं। इनमें रेवतकी कन्या राज्ञीने रैवत नामक पुत्रको तथा प्रभाने प्रभात नामक पुत्रको उत्पन्न किया। संज्ञा त्वाष्ट्र (विश्वकर्मा)-की पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनु और यम नामक दो पुत्र एवं यमुना नामकी एक कन्याको उत्पन्न किया। इनमें यम और यमुना जुड़वे पैदा हुए थे।\* कुछ समयके पश्चात् जब सुन्दरी त्वाष्ट्री (संज्ञा) विवस्वान्-के तेजोमय रूपको सहन न कर सकी, तब उसने अपने शरीरसे अपने ही रूपके समान एक अनिन्द्यसुन्दरी नारीको उत्पन्न किया। वह 'छाया' नामसे प्रसिद्ध हुई। उस छायाको अपने सामने खड़ी देखकर संज्ञाने उससे कहा—'वरानने छाये! तुम हमारे पतिदेवकी सेवा करना, साथ ही मेरी संतानोंका माताके समान स्नेहसे पालन-पोषण करना।' तब 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—कहकर वह सुब्रता पतिकी सेवाभावनासे विवस्वान्-देवके निकट गयी। इधर विवस्वान्-देव भी 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा समझकर छायाके साथ आदरपूर्वक पूर्ववत् व्यवहार करते रहे। यथासमय उन्होंने उसके गर्भसे मनुके समान रूपवाले एक पुत्रको उत्पन्न किया। ये वैवस्वत मनुके सर्वण (रूप-रंगवाला) होनेके कारण 'सावर्णि' नामसे प्रसिद्ध हुए। तदुपरान्त सूर्यने 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा मानकर छायाके गर्भसे क्रमशः एक शनि नामका पुत्र और तपती एवं विष्ट्रि नामकी दो कन्याओंको भी उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र मनुके प्रति अन्य संतानोंसे अधिक स्नेह रखती थी। उसके इस व्यवहारको संज्ञा-नन्दन मनु तो सहन कर लेते थे, परंतु यम (एक दिन सहन न होनेके कारण) क्रुद्ध हो उठे और अपने दाहिने पैरको उठाकर छायाको मारनेकी धमकी देने लगे। तब छायाने यमको शाप देते हुए कहा—'तुम्हारे इस एक पैरको कीड़े काट खायेंगे और इससे पीब एवं

\* इसका मूल ऋक् ० १०। १७। १-२ में 'त्वष्टा दुहित्रे'.....'यमस्य माता'.....'कृत्वी सर्वणी' आदिमें है।

निवेदयामास पितुर्यमः शापादमर्षितः ।  
 निष्कारणमहं शसो मात्रा देव सकोपया ॥ १३  
 बालभावान्मया किंचिदुद्यतश्वरणः सकृत् ।  
 मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद् विभो ॥ १४  
 प्रायो न माता सास्माकं शापेनाहं यतो हतः ।  
 देवोऽप्याह यमं भूयः किं करोमि महामते ॥ १५  
 मौख्यात् कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसंततिः ।  
 अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जन्तुषु ॥ १६  
 कृकवाकुर्मया दत्तो यः कृमीन् भक्षयिष्यति ।  
 क्लेदं च रुधिरं चैव वत्सायमपनेष्यति ॥ १७  
 एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः ।  
 गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपत्रानिलाशनः ॥ १८  
 आराधयन् महादेवं यावद् वर्षायुतायुतम् ।  
 वरं प्रादान्महादेवः संतुष्टः शूलभृत् तदा ॥ १९  
 वव्रे स लोकपालत्वं पितॄलोके नृपालयम् ।  
 धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तु परीक्षणम् ॥ २०  
 एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः ।  
 पितॄणां चाधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ ॥ २१  
 विवस्वानथं तज्जात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम् ।  
 त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे च रोषवान् ॥ २२  
 तमुवाच ततस्त्वष्टा सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमाः ।  
 तवासहन्ती भगवन् महस्तीव्रं तमोनुदम् ॥ २३  
 वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता ।  
 निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर ॥ २४  
 यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता ।  
 तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वर्महसि ॥ २५  
 एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता ।  
 वडवारूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ॥ २६

रुधिर टपकता रहेगा ।' इस शापको सुनकर अर्षसे भेरे हुए यम पिताके पास जाकर निवेदन करते हुए बोले—'देव! क्रुद्ध हुई माताने मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। विभो! बालचापल्यके कारण मैंने एक बार अपना दाहिना पैर कुछ ऊपर उठा दिया था, (इस तुच्छ अपराधपर) भाई मनुके मना करनेपर भी उसने मुझे ऐसा शाप दे दिया है। चूँकि इसने हमपर शापद्वारा प्रहर किया है, इसलिये यह हम लोगोंकी माता नहीं प्रतीत होती (अपितु बनावटी माता है) ।' यह सुनकर विवस्वानदेवने पुनः यमसे कहा—'महाबुद्ध! मैं क्या करूँ? अपनी मूर्खताके कारण किसको दुःख नहीं भोगना पड़ता। अथवा (जन्मान्तरीय शुभाशुभ) कर्मपरम्पराका फलभोग अनिवार्य है। यह नियम तो शिवजीपर भी लागू है, पिर अन्य प्राणियोंके लिये तो कहना ही क्या है। इसलिये बेटा! मैं तुम्हें यह एक मुर्गा (या मोर) दे रहा हूँ, जो पैरमें पड़े हुए कीड़ोंको खा जायगा और उससे निकलते हुए मज्जा (पीब) एवं खूनको भी दूर कर देगा' ॥ २—१७ ॥

पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर महायशस्वी यमके मनमें विराग उत्पन्न हो गया। वे गोकर्णतीर्थमें जाकर फल, पत्ता और वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्यामें संलग्न हो गये। इस प्रकार वे बीस हजार वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना करते रहे। कुछ समयके पश्चात् त्रिशूलधारी महादेव उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर प्रकट हुए। तब यमने उनसे वररूपमें लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और जगत्के धर्म-अधर्मका निर्णायिक पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। महादेवजीने उन्हें सभी वरदान दे दिये। निष्पाप शौनक! इस प्रकार यमको शूलपाणि भगवान् शंकरसे लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और धर्माधर्मके निर्णायिक पदकी प्राप्ति हुई है। इधर विवस्वान् संज्ञाकी उस कर्मचेष्टाको जानकर त्वष्टा (विश्वकर्मा)-के निकट गये और क्रुद्ध होकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाये। द्विजवरो! तब त्वष्टाने सान्त्वनापूर्वक विवस्वान्-से कहा—'भगवन्! अन्धकारका विनाश करनेवाले आपके प्रचण्ड तेजको न सहन करनेके कारण संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके यहाँ मेरे समीप अवश्य आयी थी, परंतु दिवाकर! मैंने उसे यह कहते हुए (धरमें छुसनेसे) मना कर दिया—'चूँकि तू अपने पतिदेवकी जानकारीके बिना छिपकर यहाँ मेरे पास आयी है, इसलिये मेरे भवनमें प्रवेश नहीं कर सकती।' इस प्रकार मेरे निषेध करनेपर आपके और मेरे—दोनों स्थानोंसे निराश होकर वह अनिन्दिता संज्ञा मरुदेशको चली गयी और वहाँ उसी घोड़ी-रूपसे ही भूतलपर स्थित है।

तस्मात् प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम्।  
अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर॥ २७  
रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो।  
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम्॥ २८  
पृथक् चकार तत्त्वेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत्।  
त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम्॥ २९  
दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम्।  
रूपं चाप्रतिमं चक्रे त्वष्टा पद्म्यामृते महत्॥ ३०  
न शशाकाथ तद् द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः।  
अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित् कारयेत् क्वचित्॥ ३१  
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम्।  
कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः॥ ३२  
तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च।  
न क्वचित् कारयेत् पादौ देवदेवस्य धीमतः॥ ३३  
ततः स भगवान् गत्वा भूलोकममराधिपः।  
कामयामास कामार्थो मुख एव दिवाकरः॥ ३४  
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः।  
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद् भयविह्वला॥ ३५  
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्ख्या।  
तद्रेतसस्ततो जातावश्चिनाविति निश्चितम्॥ ३६  
दस्तौ सुतत्वात् संजातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः।  
ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं संतोषमगमत् परम्।  
विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता॥ ३७  
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः।  
शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः॥ ३८  
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः।  
विष्णिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता॥ ३९  
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दश पुत्रा महाबलाः।  
इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्यां समजायत॥ ४०

इसलिये 'दिवाकर! यदि मैं आपका अनुग्रह-भाजन हूँ तो आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये (और मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये)। प्रभो! मैं आपके इस असहा तेजको (खरादनेवाले) यन्त्रपर चढ़ाकर कुछ कम कर दूँगा। इस प्रकार आपके रूपको लोगोंके लिये आनन्दायक बना दूँगा।' सूर्यद्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लिये जानेपर त्वष्टाने सूर्यको अपने (खराद) यन्त्रपर बैठाकर उनके कुछ तेजको छाँटकर अलग कर दिया। उस छाँटे हुए तेजसे उन्होंने विष्णुके सुदर्शनचक्रका, भगवान् रुद्रके त्रिशूलका और दैत्यों एवं दानवोंका संहार करनेवाले इन्द्रके वज्रका निर्माण किया। इस प्रकार त्वष्टाने पैरोंके अतिरिक्त सूर्यके सहस्र किरणोंवाले रूपको अनुपम सौन्दर्यशाली बना दिया। उस समय वे सूर्यके पैरोंके तेजको देखनेमें समर्थ न हो सके (इसलिये वह तेज ज्यों-कात्यों बना ही रह गया)। अतः अर्चा-विग्रहोंमें भी कोई सूर्यके चरणोंका निर्माण नहीं (करता-) कराता। यदि कोई वैसा करता है तो उसे (मरनेपर) अत्यन्त निन्दित पापिष्ठ गति प्राप्त होती है तथा इस लोकमें वह दुःख भोगता हुआ कुष्ठरोगी हो जाता है। इसलिये धर्मात्मा मनुष्यको चित्रों एवं मन्दिरोंमें कहीं भी बुद्धिमान् देवदेवेश्वर सूर्यके पैरोंको नहीं (बनाना-) बनवाना चाहिये॥ १८—३३॥

त्वष्टाद्वारा संज्ञाका पता बतला दिये जानेपर वे देवेश्वर भगवान् सूर्य भूलोकमें जा पहुँचे। वहाँ उनके द्वारा संज्ञासे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई—यह एकदम तथ्य बात है। संज्ञाकी नासिकाके अग्रभागसे उत्पन्न होनेके कारण वे दोनों नासत्य और दस नामसे भी विष्यात हुए। कुछ दिनोंके पश्चात् अश्वरूपधारी सूर्यदेवको पहचानकर त्वाष्टी (संज्ञा) परम सन्तुष्ट हुई और हर्षपूर्ण चित्तसे पतिके साथ विमानपर बैठकर स्वर्गलोक (आकाश)-को चली गयी। (छायाकी संतानोंमें) तपोधन सावर्णि मनु आज भी सुमेरुगिरिपर विराजमान हैं। शनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे ग्रहोंकी समता प्राप्त की। बहुत दिनोंके बाद यमुना और तपती—ये दोनों कन्याएँ नदीरूपमें परिणत हो गयीं। उसी प्रकार भयंकर रूपवाली तीसरी कन्या विष्णि (भद्रा) काल (करण)-रूपमें अवस्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें इल ज्येष्ठ थे, जो पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप पैदा हुए थे।

इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ट एव च ।  
 नरिष्वन्तः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलः ।  
 पृष्ठधश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥ ४१  
 अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः ।  
 जगाम तपसे भूयः स महेन्द्रवनालयम् ॥ ४२  
 अथ दिग्जयसिद्ध्यर्थमिलः प्रायान्महीमिमाम् ।  
 भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्षमाभृतः सम्प्रधर्षयन् ॥ ४३  
 जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान् ।  
 कल्पद्रुमलताकीर्ण नामा शरवणं महत् ॥ ४४  
 रमते यत्र देवेशः शाम्भुः सोमार्धशेखरः ।  
 उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः ॥ ४५  
 पुन्नाम सत्त्वं यत्किञ्चिदागमिष्यति ते वने ।  
 स्त्रीत्वमेष्यति तत् सर्वं दशयोजनमण्डले ॥ ४६  
 अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा ।  
 स्त्रीत्वमाप विशन्नेव बडवात्वं हयस्तदा ॥ ४७  
 पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृपः ।  
 इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी ॥ ४८  
 उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा ।  
 पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासोल्लासितेक्षणा ॥ ४९  
 मूलोन्नतायतभुजा नीलकुञ्जितमूर्धजा ।  
 तनुलोमा सुदशना मृदुगम्भीरभाषिणी ॥ ५०  
 श्यामगौरेण वर्णेन हंसवारणगामिनी ।  
 कार्मुकभूयुगोपेता तनुताम्रनखाङ्कुरा ॥ ५१  
 भ्रमन्ती च वने तस्मिंश्चिन्तयामास भामिनी ।  
 को मे पिताथवा भ्राता का मे माता भवेदिह ॥ ५२  
 कस्य भर्तुरहं दत्ता कियद् वत्स्यामि भूतले ।  
 चिन्तयन्तीति ददूशे सोमपत्रेण साङ्गना ॥ ५३  
 इलारूपसमाक्षिसमनसा वरवर्णिनीम् ।  
 बुधस्तदासये यत्नमकरोत् कामपीडितः ॥ ५४

शेष नौ पुत्रोंके नाम हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट नरिष्वन्त, करूष, शर्याति, पृष्ठध और नाभाग । ये सब-के-सब महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं दिव्य पुरुष थे । वृद्धावस्था आनेपर परम धर्मात्मा महाराज मनु अपने ज्येष्ठ पुत्र इलको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं तपस्या करनेके लिये महेन्द्रपर्वतके वनमें चले गये । तदनन्तर नये भूपाल इल दिविजय करनेकी इच्छासे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगे । वे भूपालोंको पराजित करते हुए सभी द्वीपोंमें घूम रहे थे । इसी बीच प्रतापी इल घोड़ा दौड़ाते हुए शिवजीके उपवनके निकट जा पहुँचे । यह महान् उपवन कल्पद्रुम और लताओंसे भरा हुआ ‘शरवण’ नामसे प्रसिद्ध था । उस उपवनमें चन्द्रधर्धको ललाटमें धारण करनेवाले देवेश्वर शम्भु उमाके साथ कीड़ा करते हैं । उन्होंने इस शरवणके विषयमें पहले ही उमाके साथ यह समय (शर्त) निर्धारित कर दिया था कि ‘तुम्हरे इस दस योजन विस्तारवाले वनमें जो कोई भी पुरुषवाचक जीव प्रवेश करेगा, वह स्त्रीत्वको प्राप्त हो जायगा ।’ राजा इलको पहलेसे इस ‘समय’ (शर्त)के विषयमें जानकारी नहीं थी, अतः वे स्वच्छन्दगतिसे शरवणमें प्रविष्ट हुए । प्रवेश करते ही वे स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये । उसी समय वह घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें परिवर्तित हो गया । इलके शरीरसे सारा पुरुषत्व नष्ट हो गया । इस प्रकार स्त्री-रूप हो जानेपर राजाको परम विस्मय हुआ ॥ ३४—४७ ॥

वह नारी इला नामसे प्रख्यात हुई । उसका रूप बड़ा सुन्दर था । उसके नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे । उसके मुखकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश थी । उसका शरीर हलका था । उसके नेत्र चकित-से दीख रहे थे । उसके बाहुमूल उत्रत और भुजाएँ लम्बी थीं तथा बाल नीले एवं धुँधराले थे । उसके शरीरके रोएँ सूक्ष्म और दाँत अत्यन्त मनोहर थे । वह मृदु और गम्भीर स्वरसे बोलनेवाली थी । उसके शरीरका रंग श्याम-गौरमिश्रित था । वह हंस और हस्तीकी-सी चालसे चल रही थी । उसकी दोनों भाँहें धनुषके आकारके सदृश थीं । वह छोटे एवं ताँबेके समान लाल नखाङ्कुरोंसे विभूषित थी । इस प्रकार वह सुन्दरी ‘नारी’ उस वनमें भ्रमण करती हुई सोचने लगी कि ‘इस घोर वनमें कौन मेरा पिता अथवा भाई है तथा कौन मेरी माता है । मैं किस पतिके हाथमें समर्पित की गयी हूँ अर्थात् कौन मेरा पति है ! इस भूतलपर मुझे कितने दिनोंतक रहना पड़ेगा !’ इस प्रकार वह चिन्तन कर ही रही थी कि इसी बीच सोम-पुत्र बुधने उसे देख लिया और वे उसे प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करने लगे ।

विशिष्टाकारवान् दण्डी सकमण्डलुपुस्तकः ।  
 वेणुदण्डकृतावेशः पवित्रकर्खनित्रकः ॥ ५५  
 द्विजरूपः शिखी ब्रह्म निगदन् कर्णकुण्डलः ।  
 वटुभिश्चान्वितो युक्तैः समित्पुष्टकुशोदकैः ॥ ५६  
 किलान्विषन् वने तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम् ।  
 बहिर्वनस्यान्तरितः किल पादपमण्डले ॥ ५७  
 ससम्भ्रमकस्मात् तां सोपालम्भमिवावदत् ।  
 त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रूषां वव गता मन्दिरान्मम ॥ ५८  
 इयं विहारवेला ते ह्यतिक्रामति साम्प्रतम् ।  
 एह्येहि पृथुसुश्रूणि सम्भ्रान्ता केन हेतुना ॥ ५९  
 इयं सायंतनी वेला विहारस्येह वर्तते ।  
 कृत्वोपलेपनं पुष्टैरलङ्घुरु गृहं मम ॥ ६०  
 सा त्वब्रवीद् विस्मृताहं सर्वमेतत् तपोधन ।  
 आत्मानं त्वां च भर्तरं कुलं च वद मेऽनघ ॥ ६१  
 बुधः प्रोवाच तां तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनि ।  
 अहं च कामुको नाम बहुविद्यो बुधः स्मृतः ॥ ६२  
 तेजस्विनः कुले जातः पिता मे ब्राह्मणाधिपः ।  
 इति सा तस्य वचनात् प्रविष्टा बुधमन्दिरम् ॥ ६३  
 रत्नस्तम्भसमायुक्तं दिव्यमायाविनिर्मितम् ।  
 इला कृतार्थमात्मानं मेने तद्वनस्थिता ॥ ६४  
 अहो वृत्तमहो रूपमहो धनमहो कुलम् ।  
 मम चास्य च मे भर्तुरहो लावण्यमुत्तमम् ॥ ६५  
 रेमे च सा तेन सममतिकालमिला ततः ।  
 सर्वभोगमये गेहे यथेन्द्रभवने तथा ॥ ६६

उस समय बुधने एक विशिष्ट वेष-भूषावाले दण्डीका रूप धारण कर लिया । उनके हाथोंमें कमण्डलु और पुस्तक शोभा पा रहे थे । उन्होंने बाँसके ढंडेमें अनेकों पवित्र वस्तुओंको बाँध रखा था । वे ब्रह्मचारी-वेषमें लम्बी-मोटी शिखा धारण किये हुए थे । समिधा, पुष्ट, कुश और जल लिये हुए वटुकोंके साथ वे वेदका पाठ कर रहे थे । वे अपनेको ऐसा प्रकट कर रहे थे मानो उस वनमें किसी वस्तुकी खोज कर रहे हों । इस प्रकार उस वनके बहिर्भागमें वृक्षसमूहोंके झुरमुटमें बैठकर वे उस इलाको बुलाने लगे । इलाके निकट आनेपर वे अकस्मात् चकपकाये हुएकी भाँति उलाहना देते हुए उससे बोले—‘सुन्दरि ! अग्निहोत्र आदि सेवा-शुश्रूषाका परित्याग करके तुम मेरे घरसे कहाँ चली आयी हो ?’ यह सुनकर इलाने कहा—‘तपोधन ! मैं अपनेको, आपको, पतिको और कुलको—इन सभीको भूल गयी हूँ, अतः निष्पाप ! आप अपने और मेरे कुलका परिचय दीजिये ।’ इलाके इस प्रकार पूछनेपर बुधने उस सुन्दरीसे कहा—‘वरवर्णिनि ! तुम इला हो और मैं बहुत-सी विद्याओंका ज्ञाता बुध नामसे प्रसिद्ध हूँ । मैं तेजस्वी कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और मेरे पिता ब्राह्मणोंके अधिपति हैं ।’ बुधके इस कथनपर विश्वास करके इला बुधके उस भवनमें प्रविष्ट हुई, जिसमें रत्नोंके खम्भे लगे थे तथा जिसका निर्माण दिव्य मायाके द्वारा हुआ था । उस भवनमें पहुँचकर इला अपनेको कृतार्थ मानने लगी । (वह कहने लगी—) ‘कैसा सुन्दर चरित्र है । कैसा अद्भुत रूप है ! कितना प्रचुर धन है ! कैसा ऊँचा कुल है तथा मेरा और मेरे पतिदेवका कैसा अनुपम सौन्दर्य है !’ तदनन्तर वह इला बुधके साथ बहुत समयतक उस सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न घरमें उसी प्रकार सुखसे रहने लगी, जैसे इन्द्रभवनमें हो ॥ ४८—६६ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे इलाबुधसङ्गमो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें इला-बुध-सम्बन्ध नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

## बारहवाँ अध्याय

इलाका वृत्तान्त तथा इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन

सूत उवाच

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवाः ।  
 इक्ष्वाकुप्रमुखा जगमुस्तदा शरवणान्तिकम् ॥ १  
 ततस्ते ददृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम् ।  
 रत्नपर्याणकिरणदीपकायामनुत्तमाम् ॥ २  
 पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः ।  
 अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजी तस्य महात्मनः ॥ ३  
 अगमद् वडवारूपमुत्तमं केन हेतुना ।  
 ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ॥ ४  
 किमित्येतदभूच्चित्रं वद योगविदां वर ।  
 वसिष्ठश्वाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद् ध्यानचक्षुषा ॥ ५  
 समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा ।  
 यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्यति ॥ ६  
 अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद् राजा सहैव तु ।  
 पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ॥ ७  
 तथैव यत्रः कर्त्तव्यश्वाराध्यैव पिनाकिनम् ।  
 ततस्ते मानवा जगमुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥ ८  
 तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ ।  
 तावूच्चतुरलङ्घोऽयं समयः किंतु साम्प्रतम् ॥ ९  
 इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत् फलं स्यात् तदावयोः ।  
 दत्त्वा किम्पुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम् ॥ १०  
 तथेत्युक्तास्ततस्ते तु जगमुर्वैवस्वतात्मजाः ।  
 इक्ष्वाकोश्वाश्वमेधेन चेलः किम्पुरुषोऽभवत् ॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! (बहुत दिनोंतक राजा इलके राजधानी न लौटनेपर सशङ्कित होकर) उनके छोटे भाई मनु-पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजा इल (सुद्धुम्र) -का अन्वेषण करते हुए उसी शरवणके निकट जा पहुँचे । वहाँ उन सभीने मार्गकि अग्रभागमें खड़ी हुई एक अनुपम घोड़ीको देखा, जिसका शरीर रत्ननिर्मित जीनकी किरणोंसे उद्दीप हो रहा था । तत्पश्चात् जीनको पहचानकर वे सभी बन्धु आश्चर्यचकित हो गये (और परस्पर कहने लगे—) ‘अरे ! यह तो हमारे भाई महात्मा राजा इलका चन्द्रप्रभ नामक घोड़ा है ! किस कारण वह सुन्दर घोड़ीके रूपमें परिणत हो गया !’ तब वे सभी लौटकर अपने कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके पास जाकर पूछने लगे—‘योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे ! ऐसी आश्चर्यजनक घटना क्यों घटित हुई ? इसका रहस्य हमें बतलाइये ।’ तब महर्षि वसिष्ठ ध्यानदृष्टिद्वारा सारा वृत्तान्त जानकर इक्ष्वाकु आदिसे बोले—‘राजपुत्रो ! पूर्वकालमें शम्भु-पत्नी उमाने इस शरवणके विषयमें ऐसा समय (शर्त) निर्धारित कर रखा है कि ‘जो पुरुष इस शरवणमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री-रूपमें परिवर्तित हो जायगा ।’ इसी कारण राजा इलके साथ-ही-साथ यह घोड़ा भी स्त्रीत्वको प्राप्त हो गया है । अब जिस प्रकार राजा इल कुबेरकी भाँति पुनः पुरुषत्वको प्राप्त कर सकें, तुमलोगोंको पिनाकधारी शंकरकी आराधना करके वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये ।’ महर्षि वसिष्ठकी आज्ञा पाकर वे सभी मनु-पुत्र वहाँ गये, जहाँ देवाधिदेव महेश्वर विराजमान थे । वहाँ उन्होंने विभिन्न स्तोत्रोंद्वारा पार्वती और परमेश्वरका स्तवन किया । (उस स्तवनसे प्रसन्न होकर) पार्वती और परमेश्वरने कहा—‘राजकुमारो ! यद्यपि मेरे इस नियम (शर्त) का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता, तथापि इस समय उसके निवारणके लिये मैं एक उपाय बतला रहा हूँ । यदि इक्ष्वाकुद्वारा किये गये अश्वमेध-यज्ञका जो कुछ फल हो, वह सारा-का-सारा हम दोनोंको समर्पित कर दिया जाय तो राजा इल निःसंदेह किम्पुरुष (किन्नर) हो जायेंगे ।’ यह सुनकर ‘बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा’—यों कहकर वैवस्वत मनुके वे सभी पुत्र राजधानीको लौट आये । घर आकर इक्ष्वाकुने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और उसका पुण्य-फल पार्वती-परमेश्वरको अर्पित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप इल किम्पुरुष हो गये ।

मासमेकं पुमान् वीरः स्त्री च मासमभूत् पुनः ।  
बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत् ॥ १२  
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् ।  
बुधश्शोत्पाद्य तं पुत्रं स्वलोकमगमत् ततः ॥ १३  
इलस्य नाम्ना तद् वर्षमिलावृतमभूत्तदा ।  
सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभूमनुनन्दनः ॥ १४  
एवं पुरुषाः पुंसोरभवद् वंशवर्धनः ।  
इक्ष्वाकुर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः ॥ १५  
इलः किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते ।  
पुनः पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम् ॥ १६  
उत्कलो वै गयस्तद्वद्वरिताश्वश्र वीर्यवान् ।  
उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया मता ॥ १७  
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा विश्रुता कुरुभिः सह ।  
प्रतिष्ठानेऽभिषिद्व्याथ स पुरुषवसं सुतम् ॥ १८  
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्ष दिव्यफलाशनम् ।  
इक्ष्वाकुर्ज्येष्टदायादो मध्यदेशमवासवान् ॥ १९  
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूच्छुचो नाम महाबलः ।  
नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम् ॥ २०  
धृष्टकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्र वीर्यवान् ।  
आनर्तो नाम शर्यातेः सुकन्या चैव दारिका ॥ २१  
आनर्तस्याभवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान् ।  
आनर्तो नाम देशोऽभूत्रगरी च कुशस्थली ॥ २२  
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद् रेवो रैवत एव च ।  
ककुद्वी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च ॥ २३  
रैवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता ।  
करूषस्य तु कारूषा बहवः प्रथिता भुवि ॥ २४  
पृष्ठो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत ।

वहाँ वे वीरवर एक मास पुरुषरूपमें रहकर पुनः एक मास स्त्री हो जाते थे। बुधके भवनमें स्त्रीरूपसे रहते समय इलने गर्भ धारण कर लिया था। उस गर्भसे अनेक गुणोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको उत्पन्नकर बुध भूलोकसे पुनः स्वर्गलोकको चले गये ॥ १—१३ ॥

तभीसे इलके नामपर उस वर्षका नाम इलावृत पड़ गया। इस प्रकार चन्द्रवंश और सूर्यवंशके आदिमें सर्वप्रथम मनु-नन्दन इल ही राजा हुए थे। तपोधन ऋषियो! जैसे इलकी पुरुषावस्थामें उत्पन्न हुए राजा पुरुषवा चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले थे, वैसे ही महाराज इक्ष्वाकु सूर्य-वंशके विस्तारक कहे गये हैं। किम्पुरुषयोनिमें रहते समय इल सुद्युम्न नामसे कहे जाते थे। उन सुद्युम्नके पुनः उत्कल, गय और पराक्रमी हरिताश्व नामक तीन अपराजेय पुत्र उत्पन्न हुए थे। इलने (अपने इन चारों पुत्रोंमेंसे) उत्कलको उत्कल (उड़िसा), गयको गयाप्रदेश और हरिताश्वको कुरुप्रदेशकी सीमावर्तिनी पूर्व दिशाका प्रदेश (राज्य) समर्पित किया। तत्पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र पुरुषवाका प्रतिष्ठानपुरमें अभिषेक करके वे स्वयं दिव्य फलाहारका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये। (सुद्युम्नके बाद) मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु मध्यदेशके अधिकारी हुए। (मनुके अन्य पुत्रोंमें) नरिष्यन्तके शुच नामक महाबली पुत्र हुआ। नाभागके अम्बरीष और धृष्टके धृष्टकेतु, चित्रनाथ और रणधृष्ट नामक तीन पराक्रमी पुत्र हुए। शर्यातिके आनर्त नामक एक पुत्र तथा सुकन्या नामी एक पुत्री हुई। आनर्तके रोचमान नामका एक प्रतापी पुत्र हुआ। आनर्तद्वारा शासित देशका नाम आनर्त (गुजरात) पड़ा और कुशस्थली (द्वारका) नगरी उसकी राजधानी हुई। रोचमानका पुत्र रेव हुआ, जो रैवत और ककुद्वी नामसे भी पुकारा जाता था। वह रोचमानके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ था। उसके रैवती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई, जो बलरामजीकी भार्यारूपसे विख्यात है। करूषके बहुत-से पुत्र थे, जो भूतलपर कारूष नामसे विख्यात हुए। पृष्ठध्रूवकी हत्या कर देनेके कारण गुरुके शापसे शूद्र हो गया ॥ १४—२४ ॥

इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ २५  
 इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट् ।  
 ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् दश पञ्च च तत्सुताः ॥ २६  
 मेरोरुत्तरतस्ते तु जाताः पार्थिवसत्तमाः ।  
 चतुर्दशोत्तरं चान्यच्छतमस्य तथाभवत् ॥ २७  
 मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्तिताः ।  
 ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाभूतत्सुतस्तु सुयोधनः ॥ २८  
 तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः ।  
 इन्दुस्तस्य च पुत्रोऽभूद् युवनाश्वस्ततोऽभवत् ॥ २९  
 श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तस्तुतोऽभवत् ।  
 निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः ॥ ३०  
 श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत् ।  
 धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुनाम्ना हतः पुरा ॥ ३१  
 तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च ।  
 कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान् ॥ ३२  
 दृढाश्वस्य प्रमोदश्च हर्यश्वस्तस्य चात्मजः ।  
 हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् संहताश्वस्ततोऽभवत् ॥ ३३  
 अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वस्तुतावुभौ ।  
 युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता च ततोऽभवत् ॥ ३४  
 मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूद् धर्मसेनश्च पार्थिवः ।  
 मुचुकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्च प्रतापवान् ॥ ३५  
 पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद् वसुदो नर्मदापतिः ।  
 सम्भूतिस्तस्य पुत्रोऽभूत् त्रिधन्वा च ततोऽभवत् ॥ ३६  
 त्रिधन्वनः सुतो जातस्त्रव्यारुण इति स्मृतः ।  
 तस्मात् सत्यव्रतो नाम तस्मात् सत्यरथःस्मृतः ॥ ३७  
 तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्च रोहितः ।  
 रोहिताच्च वृको जातो वृकाद् बाहुरजायत ॥ ३८  
 सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः ।  
 द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा ॥ ३९  
 ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया ।  
 और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद् यथेष्ट वरमुत्तमम् ॥ ४०  
 एका षष्ठिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा ।  
 गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभागृह्णाद् बहूस्तदा ॥ ४१  
 एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।  
 ततः षष्ठिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा ॥ ४२  
 खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे ।

श्रेष्ठ ऋषियो ! अब मैं इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन करने जा रहा हूँ आपलोग ध्यानपूर्वक सुनिये । देवराज विकुक्षिः इक्ष्वाकुके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए । वे इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे । उन (विकुक्षिः)-के पंद्रह पुत्र थे, जो सुमेरुगिरिकी उत्तर दिशामें श्रेष्ठ राजा हुए । विकुक्षिके एक सौ चौदह पुत्र और हुए थे, जो सुमेरुगिरिकी दक्षिण दिशाके शासक कहे गये हैं । विकुक्षिका ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ नामसे विख्यात था । उसका पुत्र सुयोधन हुआ । सुयोधनका पुत्र पृथु, पृथुका पुत्र विश्वग, विश्वगका पुत्र इन्दु और इन्दुका पुत्र युवनाश्व हुआ । युवनाश्वका पुत्र श्रावस्त हुआ, जिसे वत्सक भी कहा जाता था । द्विजवरो ! उसीने गौडदेशमें श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी । श्रावस्तसे बृहदश्व और उससे कुबलाश्वका जन्म हुआ, जो पूर्वकालमें धुन्धुद्वारा मारे जानेके कारण धुन्धुमार नामसे विख्यात था । धुन्धुमारके दृढाश्व, दण्ड और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र हुए थे, जिनमें प्रतापी कपिलाश्व धौन्धुमारि� नामसे भी प्रसिद्ध था । दृढाश्वका पुत्र प्रमोद और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ । हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ तथा उससे संहताश्वका जन्म हुआ । संहताश्वके अकृताश्व और रणाश्व नामक दो पुत्र हुए । उनमें रणाश्वका पुत्र युवनाश्व हुआ तथा उससे मान्धाताकी उत्पत्ति हुई । मान्धाताके पुरुकुत्स, राजा धर्मसेन और शत्रुओंको पराजित करनेवाले सुप्रसिद्ध प्रतापी मुचुकुन्द—ये तीन पुत्र हुए । इनमें पुरुकुत्सका पुत्र नर्मदापति वसुद हुआ । उसका पुत्र सम्भूति हुआ और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ । त्रिधन्वासे उत्पन्न हुआ पुत्र त्रय्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ । उससे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे सत्यरथका जन्म हुआ । सत्यरथसे हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई । बाहुके पुत्र राजा सगर हुए, जो परम धर्मतिमा थे । उन सगरके प्रभा और भानुमती नामवाली दो पत्नियाँ थीं । उन दोनोंने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे और्वाग्निकी आराधना की थी । उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर उन्हें यथेष्ट उत्तम वर प्रदान करते हुए और्वने कहा—‘तुम दोनोंमेंसे एकको साठ हजार पुत्र होंगे और दूसरीको केवल एक वंशप्रवर्तक पुत्र होगा । (तुम दोनोंमें जिसकी जैसी इच्छा हो, वह वैसा वरदान ग्रहण करे ।)’ तब प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको स्वीकार किया और भानुमतीने एक ही पुत्र माँगा । कुछ दिनोंके पश्चात् भानुमतीने असमञ्जसको पैदा किया तथा यदुवंशकी कन्या प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया, जो अश्वमेध-यज्ञके अश्वकी खोजमें जिस समय पृथ्वीको खोद रहे थे, उसी समय उन्हें विष्णु (भगवदवतार कपिल)-ने जलाकर भस्म कर दिया ॥ २५—४२ १ ॥

असमञ्जसस्तु तनयो योऽशुमान् नाम विश्रुतः ॥ ४३  
 तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः ।  
 येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ॥ ४४  
 भगीरथस्य तनयो नाभाग इति विश्रुतः ।  
 नाभागस्याम्बरीषोऽभूत् सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥ ४५  
 तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूद् ऋतुपर्णस्ततोऽभवत् ।  
 तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः ॥ ४६  
 तस्यानरण्यः पुत्रोऽभूत्रिष्ठनस्तस्य सुतोऽभवत् ।  
 निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघू नृपौ ॥ ४७  
 अनमित्रो वनमगाद् भविता स कृते नृपः ।  
 रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥ ४८  
 दीर्घबाहुरजाजातश्चाजपालस्ततो नृपः ।  
 तस्माद् दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥ ४९  
 नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् ।  
 रावणान्तकरस्तद्वद् रघूणां वंशवर्धनः ॥ ५०  
 वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ।  
 तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्षवाकुकुलवर्धनौ ॥ ५१  
 अतिथिस्तु कुशाज्ज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।  
 नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ॥ ५२  
 नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ।  
 तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥ ५३  
 अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः ।  
 ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ॥ ५४  
 तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ।  
 श्रुतायुरभवत्तस्माद् भारते यो निपातितः ॥ ५५  
 नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे ।  
 वीरसेनसुतस्तद्वैष्ठधश्च नराधिपः ॥ ५६  
 एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः ।  
 इक्षवाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ ५७

असमञ्जसका पुत्र अंशुमान् नामसे विख्यात हुआ । उसके पुत्र दिलीप और दिलीपसे भगीरथ हुए, जो तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको स्वर्गसे भूतलपर ले आये । भगीरथके पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध हुए । नाभागके पुत्र अम्बरीष और उनसे सिन्धुद्वीपका जन्म हुआ । सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु हुआ तथा उससे ऋतुपर्णकी उत्पत्ति हुई । ऋतुपर्णका पुत्र कल्माषपाद और उससे सर्वकर्मा पैदा हुआ । उसका पुत्र अनरण्य और अनरण्यका पुत्र निघ्न हुआ । निघ्नके अनमित्र और राजा रघु नामके दो पुत्र हुए, जिनमें अनमित्र वनमें चला गया, जो कृतयुगमें राजा होगा । रघुसे दिलीप तथा दिलीपसे अज हुए । अजसे दीर्घबाहु और उससे राजा अजपाल हुए । अजपालसे दशरथ पैदा हुए, जिनके चार पुत्र थे । वे सब-के-सब नारायणके अंशसे प्रादुर्भूत हुए थे । उनमें श्रीराम सबसे ज्येष्ठ थे, जो रावणका अन्त करनेवाले तथा रघुवंशके प्रवर्धक थे । भृगुवंशप्रवर महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामके चरित्रिका (रामायणरूपमें विस्तारपूर्वक) वर्णन किया है । श्रीरामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए, जो इक्षवाकु-कुलके विस्तारक थे । कुशसे अतिथि और उससे निषधका जन्म हुआ । निषधका पुत्र नल हुआ और उससे नभकी उत्पत्ति हुई । नभसे पुण्डरीकका तथा उससे क्षेमधन्वाका जन्म हुआ । क्षेमधन्वाका पुत्र प्रतापी वीरवर देवानीक हुआ । उसका पुत्र अहीनगु तथा उससे सहस्राश्वका जन्म हुआ । सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक और उससे तारापीडकी उत्पत्ति हुई । तारापीडसे चन्द्रागिरि और उससे भानुचन्द्र पैदा हुआ । भानुचन्द्रका पुत्र श्रुतायु हुआ, जो महाभारत-युद्धमें मारा गया था । महर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुए इस वंशमें नल नामसे दो राजा विख्यात हुए हैं, उनमें एक वीरसेनका पुत्र तथा दूसरा राजा निषधका पुत्र था । इस प्रकार वैवस्वतवंशीय महाराज इक्षवाकुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले ये सभी राजा अतिशय दानशील थे । मैंने इनका मुख्यरूपसे वर्णन कर दिया ॥ ४३—५७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सूर्यवंशानुकीर्तिं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सूर्यवंशानुकीर्तिं नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

## तेरहवाँ अध्याय

**पितृ-वंश-वर्णन तथा सतीके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें देवीके एक सौ आठ नामोंका विवरण**

मनुरुचाच

भगवञ्छोतुमिच्छामि पितृणां वंशमुत्तमम्।  
रवेश्व श्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः ॥ १

मत्स्य उचाच

हन्त ते कथयिष्यामि पितृणां वंशमुत्तमम्।  
स्वर्गे पितृगणा सप्त त्रयस्तेषाममूर्तयः ॥ २  
मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः।  
अमूर्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ३  
यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः।  
ये चैते योगविभृष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान् ॥ ४  
पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः।  
सम्प्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम् ॥ ५  
सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।  
योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः ॥ ६  
एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता।  
मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत्।  
क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो धृतसंवृतः ॥ ७  
मैना च सुषुवे तिस्रः कन्या योगवतीस्ततः।  
उमैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः ॥ ८  
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यव्यस्य चापरा।  
दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः ॥ ९

ऋषय ऊचुः

कस्माद् दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना।  
हिमवहुहिता तद्वत् कथं जाता महीतले ॥ १०

संहरन्ती किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना।  
दक्षेण लोकजननी सूत विस्तरतो वद ॥ ११

मनुने पूछा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उसमें भी विशेषरूपसे यह जाननेकी अभिलाषा है कि सूर्य और चन्द्रमा श्राद्धके देवता कैसे हो गये? ॥ १ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षें! बड़े आनन्दकी बात है, अब मैं तुमसे पितरोंके श्रेष्ठ वंशका वर्णन कर रहा हूँ; सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन मूर्तिरहित और चार मूर्तिमान् हैं। वे सब-के-सब अमित तेजस्वी हैं। अमूर्त पितृगण वैराजनामक प्रजापतिकी संतान हैं, इसीलिये वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनकी पूजा करते हैं। ये सभी सनातन लोकोंको प्राप्त करनेके पश्चात् योगमार्गसे च्युत हो जाते हैं तथा ब्रह्माके दिनके अन्तमें पुनः ब्रह्मवादीरूपमें उत्पन्न होते हैं। उस समय ये पूर्वजन्मकी स्मृति हो जानेसे पुनः सर्वोत्तम सांख्ययोगका आश्रय लेकर योगाभ्यासद्वारा आवागमनके चक्रसे मुक्त करनेवाली सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण दाताओंद्वारा योगियोंको ही श्राद्धीय वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिये। इन उपर्युक्त पितरोंकी मानसी कन्या मैना हिमवान्‌की पत्नी मानी गयी है। मैनाक उसका पुत्र है। क्रौञ्च उससे भी पहले पैदा हुआ था। इसी क्रौञ्चके नामपर धृतसे परिवेष्टित चतुर्थ द्वीप क्रौञ्चद्वीप नामसे विख्यात है। तत्पश्चात् मैनाने उमा, एकपर्णा और अपर्णा नामकी तीन कन्याओंको जन्म दिया, जो सब-की-सब योगाभ्यासमें निरत, कठोर व्रतमें तत्पर तथा लोकमें सर्वश्रेष्ठ तपस्विनी थीं। हिमवान्‌ने इनमेंसे एक कन्या रुद्रको, एक सितको तथा एक जैगीषव्यको प्रदान कर दी ॥ २—९ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पूर्वकालमें दक्ष-पुत्री सतीने अपने शरीरको अपने-आप ही क्यों जला डाला? तथा पुनः उसी प्रकारका शरीर धारणकर वे भूतलपर हिमवान्‌की कन्याके रूपमें कैसे प्रकट हुई? उस समय ब्रह्माके पुत्र दक्षने लोकजननी सतीको, जो उन्हींकी पुत्री थीं, कौन-सी ऐसी बात कह दी थी, जिससे वे स्वयं ही जल मरीं? ये सभी बातें हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ १०-११ ॥

सूत उवाच

दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे ।  
 समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती ॥ १२  
 किमर्थं तात भर्ता मे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः ।  
 अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत् ॥ १३  
 उपसंहारकृद् रुद्रस्तेनामङ्गलभागयम् ।  
 चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्घवम् ॥ १४  
 दशानां त्वं च भविता पितृणामेकपुत्रकः ।  
 क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात् त्वं नाशमेष्यसि ॥ १५  
 इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्घवतेजसा ।  
 निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः ॥ १६  
 किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः ।  
 उपगम्याब्रवीद् दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः ॥ १७  
 त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्यदेवता ।  
 दुहितृत्वं गता देवि ममानुग्रहकाम्यया ॥ १८  
 न त्वया रहितं किंचिद् ब्रह्माण्डे सचराचरम् ।  
 प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मां त्यक्तुमिहार्हसि ॥ १९  
 प्राह देवी यदारब्धं तत् कार्यं मे न संशयः ।  
 किंत्ववश्यं त्वया मर्त्ये हतयज्ञेन शूलिना ॥ २०  
 प्रसादे लोकसृष्ट्यर्थं तपः कार्यं ममान्तिके ।  
 प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्ग-जोऽप्यलम् ॥ २१  
 मदंशेनाङ्गनाषष्ठिर्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव ।  
 मत्संनिधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसे योगमुत्तमम् ॥ २२  
 एवमुक्तोऽब्रवीद् दक्षः केषु केषु मयानघे ।  
 तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः ॥ २३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्राचीनकालमें दक्षने एक विशाल यज्ञका अनुष्ठान किया था; उसमें प्रचुर धनराशि दक्षिणाके रूपमें बाँटी गयी थी तथा सभी देवता (अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये) आमन्त्रित किये गये थे । (परंतु द्वेषवश शिवजीको निमन्त्रण नहीं भेजा गया था । तब वहाँ अपने पतिका भाग न देखकर) सतीने पिता दक्षसे पूछा—‘पिताजी ! अपने इस विशाल यज्ञमें आपने मेरे पतिदेवको क्यों नहीं आमन्त्रित किया ?’ तब दक्षने सतीसे कहा—‘बेटी ! तुम्हारा पति त्रिशूल धारण कर रुद्ररूपसे जगत्का उपसंहार करता है, जिससे वह अमङ्गल-भागी है, इस कारण वह यज्ञोंमें भाग पानेके लिये अयोग्य है ।’ यह सुनकर सती क्रोधसे तमतमा उठीं और बोलीं—‘तात ! अब मैं तुम्हारे पापी शरीरसे उत्पन्न हुए अपनी देहका परित्याग कर दूँगी । तुम दस पितरोंके एकमात्र पुत्र होगे और क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेनेपर अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर रुद्रद्वारा तुम्हारा विनाश हो जायगा ।’ ऐसा कहकर सतीने योगबलका आश्रय लिया और स्वतः शरीरसे प्रकट हुए तेजसे अपने शरीरको जलाना प्रारम्भ कर दिया । तब देवता, असुर और किन्नरोंके साथ गन्धर्व एवं गुह्यकगण ‘अरे ! यह क्या हो रहा है ? यह क्या हो रहा है ?’ इस प्रकार हो-हल्ला मचाने लगे । यह देखकर दक्ष भी दुःखी हो सतीके निकट गये और प्रणाम करके बोले—‘देवि ! तुम इस जगत्की जननी तथा जगत्को सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवता हो । तुम मुझपर अनुग्रह करनेकी कामनासे ही मेरी पुत्री होकर अवतीर्ण हुई हो । धर्मज्ञ ! इस निखिल ब्रह्माण्डमें—समस्त चराचर वस्तुओंमें कुछ भी तुमसे रहित नहीं है अर्थात् सबमें तुम्हारी सत्ता व्याप्त है । मुझपर कृपा करो । इस अवसरपर तुम्हें मेरा परित्याग नहीं करना चाहिये ।’ (दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर) देवीने कहा—‘दक्ष ! मैंने जिस कार्यका आरम्भ कर दिया है, उसे तो निःसंदेह अवश्य ही पूर्ण करूँगी, किंतु त्रिशूलधारी शिवजीद्वारा यज्ञ-विध्वंस हो जानेपर उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम मृत्युलोकमें लोक-सृष्टिकी इच्छासे मेरे निकट तपस्या करना । उसके प्रभावसे तुम प्रचेता नामके दस पिताओंके एकमात्र पुत्र होनेपर भी प्रजापति हो जाओगे । उस समय मेरे अंशसे तुम्हें साठ कन्याएँ उत्पन्न होंगी तथा मेरे समीप तपस्या करते हुए तुम्हें उत्तम योगकी प्राप्ति हो जायगी ।’ ऐसा कहे जानेपर दक्षने पूछा—‘पाप-रहित देवि ! इस कार्यके निमित्त मुझे किन-किन तीर्थस्थानोंमें जाकर तुम्हारा दर्शन करना चाहिये तथा किन-किन नामोंद्वारा तुम्हारा स्तवन करना चाहिये’ ॥ १२—२३ ॥

## देव्युवाच

सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि।  
 सर्वलोकेषु यत् किंचिद् रहितं न मया विना ॥ २४  
 तथापि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः।  
 स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ २५  
 वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्घधारिणी।  
 प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने ॥ २६  
 मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे ॥ २७  
 गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी।  
 मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥ २८  
 कान्यकुञ्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते।  
 एकाग्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरे विदुः ॥ २९  
 पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी।  
 नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥ ३०  
 स्थाणवीश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका।  
 श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा ॥ ३१  
 जया वराहशैले तु कमला कमलालये।  
 रुद्रकोट्यां च रुद्राणी काली कालंजरे गिरौ ॥ ३२  
 महालिङ्गे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी।  
 शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया ॥ ३३  
 मायापुर्या कुमारी तु संताने ललिता तथा।  
 उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला ॥ ३४  
 गङ्गायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे।  
 विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्धने ॥ ३५  
 नारायणी सुपार्श्वे तु विकूटे भद्रसुन्दरी।  
 विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले ॥ ३६  
 कोटवी कोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।  
 गोदाश्रमे त्रिसंध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया ॥ ३७  
 शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देविकातटे।  
 रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने ॥ ३८  
 देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी।  
 चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी ॥ ३९  
 सहाद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।  
 रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ४०  
 करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।  
 अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥ ४१  
 अभयेत्युष्णातीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे।  
 माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे ॥ ४२

देवीने कहा—दक्ष! यद्यपि भूतलपर समस्त प्राणियोंमें सब ओर सर्वदा मेरा ही दर्शन करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण लोकोंमें जो कुछ पदार्थ है, वह सब मुझसे रहित नहीं है, अर्थात् सभी पदार्थोंमें मेरी सत्ता विद्यमान है, तथापि सिद्धिकी कामनावाले अथवा ऐश्वर्याभिलाषी जनोंद्वारा जिन-जिन तीर्थस्थानोंमें मेरा दर्शन और स्मरण करना चाहिये, उनका मैं यथार्थरूपसे वर्णन कर रही हूँ। मैं वाराणसीमें विशालाक्षी, नैमिषारण्यमें लिङ्घधारिणी, प्रयागमें ललितादेवी, गन्धमादन पर्वतपर कामाक्षी, मानसरोवरतीर्थमें कुमुदा, अम्बरमें विश्वकाया, गोमन्त (गोआ)-में गोमती, मन्दराचलपर कामचारिणी, चैत्ररथवनमें मदोत्कटा, हस्तिनापुरमें जयन्ती, कान्यकुञ्जमें गौरी, मलयपर्वतपर रम्भा, एकाग्रक (भुवनेश्वर)-तीर्थमें कीर्तिमती, विश्वेश्वरमें विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारतीर्थमें मार्गदायिनी, हिमवान्के पृष्ठभागमें नन्दा, गोकर्णतीर्थमें भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर (थानेश्वर)-में भवानी, बिल्वतीर्थमें बिल्वपत्रिका, श्रीशैलपर माधवी, भद्रेश्वरतीर्थमें भद्रा, वराहशैलपर जया, कमलालयतीर्थमें कमला, रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालज्ञर गिरिपर काली, महालिङ्गतीर्थमें कपिला, मर्कोटमें मुकुटेश्वरी, शालग्रामतीर्थमें महादेवी, शिवलिङ्गमें जलप्रिया, मायापुरी (ऋषिकेश)-में कुमारी, संतानतीर्थमें ललिता, सहस्राक्षतीर्थमें उत्पलाक्षी, कमलाक्षतीर्थमें महोत्पला, गङ्गामें मङ्गला, पुरुषोत्तमतीर्थ (जगन्नाथपुरी)-में विमला, विपाशामें अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्धनमें पाटला, सुपार्श्वतीर्थमें नारायणी, विकूटमें भद्रसुन्दरी, विपुलमें विपुला, मलयाचलपर कल्याणी, कोटितीर्थमें कोटवी, माधव-वनमें सुगन्धा, गोदाश्रममें त्रिसंध्या, गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में रतिप्रिया, शिवकुण्डतीर्थमें शिवानन्दा, देविका (पंजाबकी देवनदी)-के तटपर नन्दिनी, द्वारकापुरीमें रुक्मिणी और वृन्दावनमें राधा हूँ ॥ २४—३८ ॥

मैं मथुरापुरीमें देवकी, पातालमें परमेश्वरी, चित्रकूटमें सीता, विन्ध्यपर्वतपर विन्ध्याधिवासिनी, सहाद्रिपर एकवीरा, हरिश्चन्द्रतीर्थमें चन्द्रिका, रामतीर्थमें रमणा, यमुनामें मृगावती, करवीर (कोल्हापुर)-में महालक्ष्मी, विनायकतीर्थमें उमादेवी, वैद्यनाथमें अरोगा, महाकालमें महेश्वरी, उष्णातीर्थोंमें अभया, विन्ध्यकन्दरमें अमृता, माण्डव्यतीर्थमें माण्डवी, माहेश्वरपुरमें स्वाहा,

छागलाण्डे प्रचण्डा तु चण्डिका मकरन्दके ।  
 सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥ ४३  
 देवमाता सरस्वत्यां पारावारतटे मता ।  
 महालये महाभागा पयोष्यां पिङ्गलेश्वरी ॥ ४४  
 सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिकेये यशस्करी ।  
 उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥ ४५  
 माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे ।  
 जालंधरे विश्वमुखी तारा किञ्चिन्धपर्वते ॥ ४६  
 देवदारुवने पुष्टिर्घोषा काश्मीरमण्डले ।  
 भीमा देवी हिमाद्री तु पुष्टिर्घोषे श्वरे तथा ॥ ४७  
 कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ।  
 शङ्खोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिण्डारके तथा ॥ ४८  
 काला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवकारिणी ।  
 वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ४९  
 औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ।  
 मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ॥ ५०  
 अश्वथे वन्दनीया तु निधिर्वश्रवणालये ।  
 गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसंनिधौ ॥ ५१  
 देवलोके तथेद्वाणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती ।  
 सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातृणां वैष्णवी मता ॥ ५२  
 अरुंधती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा ।  
 चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥ ५३  
 एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ।  
 अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥ ५४  
 यः स्मरेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
 एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः ॥ ५५  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत् ।  
 यस्तु मत्यरमं कालं करोत्येषु मानवः ॥ ५६  
 स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमध्येति शाङ्करम् ।  
 नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ ५७  
 तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः ।  
 गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः ॥ ५८  
 देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति ।  
 एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ॥ ५९

छागलाण्डमें प्रचण्डा, मकरन्दमें चण्डिका, सोमेश्वरतीर्थमें वरारोहा, प्रभासमें पुष्करावती, सरस्वतीमें देवमाता, समुद्रतटवर्ती महालयतीर्थमें महाभागा, पयोष्यी-(पैनगङ्गा)-में पिङ्गलेश्वरी, कृतशौचतीर्थमें सिंहिका, कार्तिकेयमें यशस्करी, उत्पलावर्तकमें लोला, शोणसंगममें सुभद्रा, सिद्धपुरमें लक्ष्मी माता, भरताश्रममें अङ्गना, जालन्धरपर्वतपर विश्वमुखी, किञ्चिन्धपर्वतपर तारा, देवदारुवनमें पुष्टि, काश्मीरमण्डलमें मेधा, हिमगिरिपर भीमादेवी, विश्वेश्वरमें पुष्टि, कपालमोचनमें शुद्धि, कायावरोहण (कारावन, गुजरात)-में माता, शङ्खोद्धारमें ध्वनि, पिण्डारक-क्षेत्रमें धृति, चन्द्रभागा (चनाब)-में काला, अच्छोदमें शिवकारिणी, वेणामें अमृता, बदरीतीर्थमें उर्वशी, उत्तरकुरुमें औषधी, कुशद्वीपमें कुशोदका, हेमकूटपर्वतपर मन्मथा, मुकुटमें सत्यवादिनी, अश्वथतीर्थमें वन्दनीया, वैश्रवणालयमें निधि, वेदवदनमें गायत्री, शिव-सत्रिधिमें पार्वती, देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माके मुखोंमें सरस्वती, सूर्य-बिम्बमें प्रभा, माताओंमें वैष्णवी, सतियोंमें अरुन्धती, सुन्दरी स्त्रियोंमें तिलोत्तमा, चित्तमें ब्रह्मकला और अखिल शरीरधारियोंमें शक्ति-नामसे निवास करती हूँ ॥ ३९—५३ ॥

इस प्रकार मैंने अपने एक सौ आठ श्रेष्ठ नामोंका वर्णन कर दिया । इसीके साथ एक सौ आठ तीर्थोंका भी नामोल्लेख हो गया । जो मनुष्य मेरे इन नामोंका स्मरण करेगा अथवा दूसरेके मुखसे श्रवणमात्र कर लेगा, वह अपने निखिल पापोंसे मुक्त हो जायगा । इसी प्रकार जो मनुष्य इन उपर्युक्त तीर्थोंमें स्नान करके मेरा दर्शन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर कल्पपर्यन्त शिवपुरमें निवास करेगा तथा जो मानव इन तीर्थोंमें मेरे इस परम अन्तिम समयका स्मरण करेगा, वह ब्रह्माण्डका भेदन करके शङ्करजीके परम पद (शिवलोक)-को प्राप्त हो जायगा । जो मनुष्य तृतीया अथवा अष्टमी तिथिके दिन शिवजीके सनिकट जाकर मेरे इन एक सौ आठ नामोंका पाठ करके उन्हें सुनायेगा, वह बहुत-से पुत्रोंवाला हो जायगा । जो विद्वान् गोदान, श्राद्धदान अथवा प्रतिदिन देवार्चनके समय इन नामोंका पाठ करेगा, वह परब्रह्म-पदको प्राप्त हो जायगा । इस प्रकारकी बातें कहती हुई सतीने दक्षके उस यज्ञमण्डपमें अपने-आप ही अपने शरीरको जलाकर भस्म

\*यह शक्तिपीठ-वर्णन पद्म, देवीभागवत एवं स्कन्दादि अन्य ४ पुराणोंमें भी यों ही है । इनकी पाठशुद्धि तथा स्थानोंके परिचयपर डी० सी० सरकार तथा नरपति मिश्रके शोधप्रबन्ध श्रेष्ठ हैं ।

स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्।  
 पार्वती साभवद् देवी शिवदेहार्थधारिणी ॥ ६०  
 मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।  
 अरुन्धती जपन्त्येतत् प्राप योगमनुज्ञम् ॥ ६१  
 पुरुषवाश्च राजर्षिलोके व्यजेयतामगात्।  
 ययातिः पुत्रलाभं च धनलाभं च भार्गवः ॥ ६२  
 तथान्ये देवदैत्याश्च ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।  
 वैश्याः शूद्राश्च बहवः सिद्धिमीयुर्यथेष्पिताम् ॥ ६३  
 यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसंनिधौ।  
 न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते ॥ ६४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशान्वये गौरीनामाष्टोत्रशतकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितरोंके वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें गौरीनामाष्टोत्रशतकथन नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

## चौदहवाँ अध्याय

अच्छोदाका पितृलोकसे पतन तथा उसकी प्रार्थनापर पितरोंद्वारा उसका पुनरुद्धार

सूत उवाच

लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनन्दनाः।  
 वर्तन्ते देवपितरो देवा यान् भावयन्त्यलम् ॥ १  
 अग्निष्वान्ता इति ख्याता यज्वानो यत्र संस्थिताः।  
 अच्छोदा नाम तेषां तु मानसी कन्यका नदी ॥ २  
 अच्छोदं नाम च सरः पितृभिर्निर्मितं पुरा।  
 अच्छोदा तु तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ३  
 आजग्मुः पितरस्तुष्टाः किल दातुं च तां वरम्।  
 दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ ४  
 सर्वे युवानो बलिनः कुसुमायुधसंनिभाः।  
 तन्मध्येऽमावसुं नाम पितरं वीक्ष्य साङ्गना ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! मरीचिके वंशज देवताओंके पितृगण जहाँ निवास करते हैं, वे लोक सोमपथके नामसे विख्यात हैं। देवतालोग उन पितरोंका ध्यान किया करते हैं। वे यज्ञपरायण पितृगण अग्निष्वात् नामसे प्रसिद्ध हैं। जहाँ वे रहते हैं, वहाँ अच्छोदा\* नामकी एक नदी प्रवाहित होती है, जो उन्हीं पितरोंकी मानसी कन्या है। प्राचीनकालमें पितरोंने वहाँ एक अच्छोद नामक सरोवरका भी निर्माण किया था। पूर्वकालमें अच्छोदाने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर पितृगण उसे वर प्रदान करनेके लिये उसके समीप पथारे। वे सब-के-सब पितर दिव्य रूपधारी थे। उनके शरीरपर दिव्य सुगन्धका अनुलेप लगा हुआ था तथा गलेमें दिव्य पुष्पमाला लटक रही थी। वे सभी नवयुवक, बलसम्पन्न एवं कामदेवके सदृश सौन्दर्यशाली थे। उन पितरोंमें अमावसु नामक पितरको

\* इस अध्यायके अन्तमें वर्णित अच्छोद सरोवर और अच्छोदा नदी—दोनों कश्मीरमें हैं तथा परम प्रसिद्ध हैं। सरोवरको आजकल वहाँके लोग 'अच्छावत' कहते हैं।

वक्रे वरार्थिनी सङ्गं कुसुमायुधपीडिता ।  
योगाद् भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी ॥ ६

धरां तु नास्पृशत् पूर्वं पपाताथ भुवस्तले ।  
तिथावमावसुर्यस्यामिच्छां चक्रे न तां प्रति ॥ ७

धैर्येण तस्य सा लोकैरमावास्येति विश्रुता ।  
पितृणां वल्लभा तस्मात्तस्यामक्षयकारकम् ॥ ८  
अच्छोदाधोमुखी दीना लज्जिता तपसः क्षयात् ।  
सा पितृन् प्रार्थयामास पुरे चात्मप्रसिद्धये ॥ ९  
विलप्यमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी ।  
भविष्यमर्थमालोक्य देवकार्यं च ते तदा ॥ १०

इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभ्या गिरा ।  
दिवि दिव्यशरीरेण यत्किञ्चित् क्रियते बुधैः ॥ ११  
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि ।  
सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥ १२  
तस्मात् त्वं पुत्रि तपसः प्राप्यसे प्रेत्य तत्फलम् ।  
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥ १३  
व्यतिक्रमात् पितृणां त्वं कष्टं कुलमवाप्यसि ।  
तस्माद् राज्ञो वसोः कन्या त्वमवश्यं भविष्यसि ॥ १४  
कन्या भूत्वा च लोकान् स्वान् पुनराप्यसि दुर्लभान् ।  
पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्यसि ॥ १५  
द्वीपे तु बद्रीप्राये बादरायणमच्युतम् ।  
स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥ १६  
पौरवस्यात्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शंतनोः ।  
विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्राङ्गदो नृपः ॥ १७  
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजावस्य धीमतः ।  
प्रौष्ठपद्मष्टकारूपा पितृलोके भविष्यसि ॥ १८

देखकर वरकी अभिलाषावाली सुन्दरी अच्छोदा व्यग्र हो उठी और उनके साथ रहनेकी याचना करने लगी । इस मानसिक कदाचारके कारण सुन्दरी अच्छोदा योगसे भ्रष्ट हो गयी और (उसके परिणामस्वरूप वह स्वर्गलोकसे) भूतलपर गिर पड़ी । उसने पहले कभी पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया था । जिस तिथिको अमावस्युने अच्छोदाके साथ निवास करनेकी अनिच्छा प्रकट की, वह तिथि उनके धैर्यके प्रभावसे लोगोंद्वारा अमावस्या नामसे प्रसिद्ध हुई । इसी कारण यह तिथि पितरोंको परम प्रिय है । इस तिथिमें किया हुआ श्राद्धादि कार्य अक्षय फलदायक होता है ॥ १—८ ॥

इस प्रकार (बहुकालार्जित) तपस्याके नष्ट हो जानेसे अच्छोदा लज्जित हो गयी । वह अत्यन्त दीन होकर नीचे मुख किये हुए देवपुरमें पुनः अपनी प्रसिद्धिके लिये पितरोंसे प्रार्थना करने लगी । तब रोती हुई उस तपस्विनीको पितरोंने सान्त्वना दी । वे महाभाग पितर भावी देव-कार्यका विचार कर प्रसन्नता एवं मङ्गलसे परिपूर्ण वाणीद्वारा उससे इस प्रकार बोले—‘वरवर्णिनि ! बुद्धिमान् लोग स्वर्गलोकमें दिव्य शरीरद्वारा जो कुछ शुभाशुभ कर्म करते हैं, वे उसी शरीरसे उन कर्मोंके फलका उपभोग करते हैं; क्योंकि देव-योनिमें कर्म तुरन्त फलदायक हो जाते हैं । उसके विपरीत मानव-योनिमें मृत्युके पश्चात् (जन्मान्तरमें) कर्मफल भोगना पड़ता है । इसलिये पुत्रि ! तुम मृत्युके पश्चात् जन्मान्तरमें अपनी तपस्याका पूर्ण फल प्राप्त करोगी । अद्वाईसवें द्वापरमें तुम मत्स्य-योनिमें उत्पन्न होओगी । पितृकुलका व्यतिक्रमण करनेके कारण तुम्हें उस कष्टदायक योनिकी प्राप्ति होगी । पुनः उस योनिसे मुक्त होकर तुम राजा (उपरिचर) वसुकी कन्या होओगी । कन्या होनेपर तुम अपने दुर्लभ लोकोंको अवश्य प्राप्त करोगी । उस कन्यावस्थामें तुम्हें बद्री (बेर)-के वृक्षोंसे व्यास द्वीपमें महर्षि पराशरसे एक ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो बादरायण नामसे प्रसिद्ध होगा और कभी अपने कर्मसे च्युत न होनेवाले नारायणका अवतार होगा । तुम्हारा वह पुत्र एक ही वेदको अनेक (चार) भागोंमें विभक्त करेगा । तदनन्तर समुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुषशी राजा शंतनुके संयोगसे तुम्हें विचित्रवीर्य एवं महाराज चित्राङ्गद नामक दो पुत्र प्राप्त होंगे । बुद्धिमान् विचित्रवीर्यके दो क्षेत्रज धृतराष्ट्र और पाण्डु-पुत्रोंको उत्पन्न कराकर तुम प्रौष्ठपदी (भाद्रपदकी पूर्णिमा और पौषकृष्णाष्टमी आदि)-में अष्टकारूपसे पितृलोकमें जन्म ग्रहण करोगी ।

नामा सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका ।  
 आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥ १९  
 भविष्यसि परे काले नदीत्वं च गमिष्यसि ।  
 पुण्यतोया सरिच्छेष्टा लोके ह्यच्छोदनामिका ॥ २०  
 इत्युक्त्वा स गणस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत ।  
 साप्यवाप च तत् सर्वं फलं यदुदितं पुरा ॥ २१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृवंशानुकीर्तन नामक चाँदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

इस प्रकार मनुष्य-लोकमें सत्यवती और पितृलोकमें आयु एवं आरोग्य प्रदान करनेवाली तथा नित्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंकी प्रदात्री अष्टका नामसे तुम्हारी ख्याति होगी । कालान्तरमें तुम मनुष्यलोकमें नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला अच्छेदा नामसे नदीरूपमें जन्म धारण करोगी । 'ऐसा कहकर पितरोंका वह समुदाय वहीं अन्तर्हित हो गया तथा अच्छेदाको अपने उन समस्त कर्मफलोंकी प्राप्ति हुई, जो पहले कहे जा चुके हैं ॥ ९—२१ ॥

## पन्द्रहवाँ अध्याय

पितृ-वंशका वर्णन, पीवरीका वृत्तान्त तथा श्राद्ध-विधिका कथन

सूत उवाच

विभ्राजा नाम चान्ये तु दिवि सन्ति सुवर्चसः ।  
 लोका बर्हिषदो यत्र पितरः सन्ति सुव्रताः ॥ १  
 यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः ।  
 सङ्कल्प्या बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः ॥ २  
 यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः ।  
 यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ३  
 यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः ।  
 पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः ॥ ४  
 महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः ।  
 एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता ॥ ५  
 योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम् ।  
 प्रसन्नो भगवांस्तस्या वरं वद्रे तु सा हरेः ॥ ६  
 योगवन्तं सुरूपं च भर्तां विजितेन्द्रियम् ।  
 देहि देव प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदतां वरम् ॥ ७  
 उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः ।  
 भविता तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रते ॥ ८  
 भविष्यति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।  
 पाञ्चालाधिपतेर्देव्या मानुषस्य त्वया तदा ॥ ९  
 जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धा च गौः स्मृता ।  
 कृष्णो गौरः प्रभुः शश्वर्भविष्यन्ति च ते सुताः ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! स्वर्गमें विभ्राज नामक अन्य तेजस्वी लोक भी हैं, जहाँ परम श्रेष्ठ उत्तम व्रतपरायण बर्हिषद् नामक पितर निवास करते हैं । जहाँ मयूरोंसे युक्त हजारों विमान विद्यमान रहते हैं । जहाँ संकल्पके लिये प्रयुक्त हुए बर्हि (कुश) फल देनेके लिये उन्मुख होकर उपस्थित रहते हैं एवं जहाँकी अभ्युदयशालाओंमें पितरोंको श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग आनन्द मनाते रहते हैं । देवताओं और असुरोंके गण, गन्धर्वों और अप्सराओंके समूह तथा यक्षों और रक्षसोंके समुदाय स्वर्गमें उन पितरोंके निमित्त यज्ञका विधान करते रहते हैं । महर्षि पुलस्त्यके सैकड़ों पुत्र, जो तपस्या और योगसे परिपूर्ण, महान् आत्मबलसे सम्पन्न, महान् भाग्यशाली एवं अपने भक्तोंको अभ्य प्रदान करनेवाले हैं, वहाँ निवास करते हैं । इन पितरोंकी एक मानसी कन्या थी, जो पीवरी नामसे विख्यात थी । उस योगिनी एवं योगमाता पीवरीने अत्यन्त कठोर तप किया । उसकी तपस्यासे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये (और उसके समक्ष प्रकट हुए) । तब पीवरीने श्रीहरिसे यह वरदान माँगा—'देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे योगाभ्यासी, अत्यन्त सौन्दर्यशाली, जितेन्द्रिय, वक्ताओंमें श्रेष्ठ एवं पालन-पोषण करनेवाला पति प्रदान कीजिये ।' यह सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'सुव्रते ! जब महर्षि व्यासके पुत्र शुक जन्म धारण करें, उस समय तुम उन योगाचार्यकी पती होओगी । उनके संयोगसे तुम्हें एक योगाभ्यासपरायणा कृत्वी नामकी कन्या उत्पन्न होगी । तब तुम उसे मानव-योनिमें उत्पन्न हुए पञ्चाल-नरेश (नीप मतान्तरसे अणुह)-को समर्पित कर देना । तुम्हारी वह योगसिद्धा कन्या (कृत्वी) ब्रह्मदत्तकी माता होकर 'गौ' नामसे भी प्रसिद्ध होगी । तदनन्तर कृष्ण, गौर, प्रभु और शश्वर्भु नामक तुम्हारे चार पुत्र होंगे,

महात्मानो महाभागा गमिष्यन्ति परं पदम्।  
तानुत्पाद्य पुनर्योगात् सवरा मोक्षमेष्वसि ॥ १  
सुमूर्तिमन्तः पितरो वसिष्ठस्य सुताः स्मृताः।  
नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वे ते धर्ममूर्तयः ॥ २  
ज्योतिर्भासिषु लोकेषु ये वसन्ति दिवः परम्।  
विराजमानाः क्रीडन्ति यत्र ते श्राद्धदायिनः ॥ ३  
सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपि पादजाः।  
किं पुनः श्राद्धदा विप्रा भक्तिमन्तः क्रियान्विताः ॥ ४  
गौर्नामि कन्या येषां तु मानसी दिवि राजते।  
शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्तिवर्धिनी ॥ ५  
मरीचिगर्भा नाम्ना तु लोका मार्तण्डमण्डले।  
पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः ॥ ६  
तीर्थश्राद्धप्रदा यान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः।  
राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः ॥ ७  
एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता।  
पत्नी हृष्णमतः श्रेष्ठा स्तुषा पञ्चजनस्य च ॥ ८  
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही।  
लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः ॥ ९  
सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः।  
आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १०  
पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च।  
यत्र श्राद्धकृतः सर्वे पश्यन्ति युगपद्मताः ॥ ११  
मातृभ्रातृपितृस्वसृसखिसम्बन्धिबान्धवान् ।  
अपि जन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान् सहस्रशः ॥ १२  
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता।  
या पत्नी नहुषस्यासीद् ययातेर्जननी तथा ॥ १३

जो महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं महान् भाग्यशाली होंगे और अन्तमें परमपदको प्राप्त करेंगे। उन पुत्रोंको पैदा करनेके पश्चात् तुम पुनः अपने योगबलसे वर प्राप्त करोगी और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लोगी।<sup>१</sup> महर्षि वसिष्ठके पुत्ररूप (सुकाली नामक) पितर, जो सब-के-सब मानस नामसे विख्यात हैं, अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाले तथा धर्मकी मूर्ति हैं। वे सभी स्वर्गलोकसे परे ज्योतिर्भासी लोकोंमें निवास करते हैं। जहाँ श्राद्धकर्ता शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले विमानोंमें विराजमान होकर क्रीड़ा करते रहते हैं, वहाँ क्रियानिष्ठ एवं भक्तिमान् श्राद्धदाता ब्राह्मणोंकी तो बात ही क्या है। इन पितरोंकी 'गौ' नामकी मानसी कन्या स्वर्गलोकमें विराजमान है, जो शुक्रकी प्रिय पत्नी और साध्योंकी कीर्तिका विस्तार करनेवाली है ॥ १—१५ ॥

इसी प्रकार सूर्यमण्डलमें मरीचिगर्भ नामसे प्रसिद्ध अन्य लोक भी हैं, जहाँ अङ्गिराके पुत्र हविष्मान् नामक पितरके रूपमें निवास करते हैं। ये राजाओं (क्षत्रियों)-के पितर हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्षरूप फलके प्रदाता हैं। जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करते हैं, वे इन लोकोंमें जाते हैं। इन पितरोंकी एक यशोदा नामकी लोक-प्रसिद्ध मानसी कन्या थी, जो पञ्चजनकी श्रेष्ठ पुत्रवधू अंशुमान्नकी पत्नी, (महाराज) दिलीपकी माता और भगीरथकी पितामही थी।<sup>२</sup> अभीष्ट कामनाओं एवं भोगोंका फल प्रदान करनेवाले कामदुघ नामक अन्य पितृलोक भी हैं, जहाँ उत्तम व्रतपरायण सुस्वधा नामवाले पितर निवास करते हैं। वे ही पितर प्रजापति कर्दमके लोकोंमें आज्यप नामसे प्रख्यात हैं। महर्षि पुलहके अङ्गसे उत्पन्न हुए वैश्यगण उनकी भावना (पूजा) करते हैं। श्राद्धकर्ता सभी वैश्यगण इन लोकोंमें पहुँचकर दस हजार जन्मान्तरोंमें देखे और अनुभव किये हुए भी अपने हजारों माता, भाई, पिता, बहन, मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंको एक साथ देखते हैं। इन पितरोंकी मानसी कन्या विरजा नामसे विख्यात थी, जो राजा नहुषकी पत्नी और ययातिकी माता थी।

१. शुकदेवजीका यह वृत्त ठीक इसी प्रकार वायुपुराण ७३। २६—३१; ७०। ८५—८६; पद्मपुराण १। ९। ३०—४०; हरिवंश १। १८। ५०—५३ आदिमें भी प्राप्त होता है। पर मत्स्यपुराणमें 'कृत्वी'का 'गौ' नाम देखकर शङ्का होती है; क्योंकि १५वें श्लोकमें तुरंत 'गौ'को शुकदेवकी दूसरी पत्नी कहा है। पर शङ्का ठीक नहीं; क्योंकि एक ही नाम कइयोंके होते हैं। पुराणोंमें वायुपुराण अध्याय ९। ३, १४ आदिमें 'यति' राजाकी स्त्री तथा वाल्मीकिरामायण ७। ६०।, महाभारत आदिमें पुलस्त्य-पत्नीका भी नाम 'गौ' आता है।

२. यह विवरण वायुपुराण ७२, ब्रह्माण्ड ३। १०, हरिवंश १। ६, ब्रह्मपुराण ३४, पद्म १। ९, लिङ्गपुराण १। ६ में भी है। यहाँ सूर्यवंशी दिलीप प्रथम इष्ट हैं। पुराणानुसार सूर्यवंशमें दो दिलीप हुए हैं। एकके पुत्र थे भगीरथ और दूसरेके रघुवंशप्रसिद्ध रघु हुए हैं।

एकाष्टकाभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती ।  
 त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्शतुर्थं तु वदाम्यतः ॥ २४  
 लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः ।  
 येषां तु मानसी कन्या नर्मदानामविश्रुता ॥ २५  
 सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः ।  
 धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः ॥ २६  
 उत्पन्नाः स्वधया ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः ।  
 कृत्वा सृष्ट्यादिकं सर्वं मानसे साम्प्रतं स्थिताः ॥ २७  
 नर्मदा नाम तेषां तु कन्या तोयवहा सरित् ।  
 भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ॥ २८  
 तेभ्यः सर्वे तु मनवः प्रजाः सर्वेषु निर्मिताः ।  
 ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वन्ति धर्मभावेऽपि सर्वदा ॥ २९  
 तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद् योगसंततिम् ।  
 पितृणामादिसर्वे तु श्राद्धमेव विनिर्मितम् ॥ ३०  
 सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् ।  
 दत्तं स्वधा पुरोधाय पितृन् प्रीणाति सर्वदा ॥ ३१  
 अग्नीषोमयमानां तु कार्यमाप्यायनं बुधः ।  
 अग्न्यभावेऽपि विप्रस्य पाणावपि जलेऽथवा ॥ ३२  
 अजाकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वा सलिलान्तिके ।  
 पितृणामम्बरं स्थानं दक्षिणा दिक् प्रशस्यते ॥ ३३  
 प्राचीनावीतमुदकं तिलाः सव्याङ्गमेव च ।  
 दर्भं मांसं च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः ॥ ३४  
 खड्गलोहामिषमधुकुशश्यामाकशालयः ।  
 यवनीवारमुद्गोक्षुशुक्लपुष्पघृतानि च ॥ ३५  
 वल्लभानि प्रशस्तानि पितृणामिह सर्वदा ।  
 द्वेष्याणि सम्प्रवक्ष्यामि श्राद्धे वर्ज्यानि यानि तु ॥ ३६

बादमें वह पतिपरायणा विरजा ब्रह्मलोकको चली गयी और वहाँ एकाष्टका नामसे प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार मैंने तीन पितृणोंका वर्णन कर दिया। अब इसके बाद चौथे गणका वर्णन कर रहा हूँ। ब्रह्माण्डके ऊपर मानस नामक लोक विद्यमान हैं, उनमें अविनाशी 'सोमप' नामक पितर निवास करते हैं (ये ब्राह्मणोंके पितर हैं)। उनकी मानसी कन्या नर्मदा-नामसे प्रसिद्ध है। वे सभी पितर धर्मकी-सी मूर्ति धारण करनेवाले तथा ब्रह्मसे भी परे बतलाये गये हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे सभी योगाभ्यासी पितर ब्रह्मत्वको प्राप्त करके सृष्टि आदि समस्त कार्योंसे निवृत हो इस समय मानस लोकमें विद्यमान हैं। उनकी वह नर्मदा नामी कन्या (भारतके) दक्षिणापथमें आकर जल प्रवाहित करनेवाली नदी हुई है, जो समस्त प्राणियोंको पवित्र कर रही है। इन्हीं पितरोंकी परम्परासे मनुगण (अपने-अपने कार्यकालमें) सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजाओंका निर्माण करते हैं। इस रहस्यको जानकर लोग धर्मका अभाव हो जानेपर भी सर्वदा श्राद्ध करते रहते हैं। इन्हीं पितरोंकी कृपासे पुनः इन्हींके द्वारा योग-परम्पराको प्राप्त करनेके लिये सृष्टिके प्रारम्भमें पितरोंके लिये श्राद्धका ही निर्माण किया गया था ॥ १६—३० ॥

इन सभी पितरोंके निमित्त चाँदीका अथवा चाँदीमिश्रित अन्य धातुका भी पात्र आदि स्वधाका उच्चारण करके (ब्राह्मणको) दान कर दिया जाय तो वह सर्वदा पितरोंको प्रसन्न करता है। विद्वान् (श्राद्धकर्ता)-को चाहिये कि (श्राद्धकालमें प्रथमतः) अग्नि, सोम और यमका तर्पण करके उहें तृप्त करे (और पितरोंके उद्देश्यसे दिया गया अन्न आदि अग्निमें छोड़ दे)। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथपर, जलमें, अजाकर्णपर, अश्वकर्णपर, गोशालामें अथवा जलके निकट डाल दे। पितरोंका स्थान आकाश बतलाया जाता है। उनके लिये दक्षिण दिशा विशेषरूपसे प्रशस्त मानी गयी है। प्राचीनावीत (अपसव्य) होकर दिया गया जल, तिल, सव्याङ्ग (शरीरका दाहिना भाग), डाभ, फलका गूदा, गो-दुग्ध, मधुर रस, खड्ग, लोह, मधु, कुश, सावाँ, अगहनीका चावल, यव, तिनीका चावल, मूँग, गन्ना, श्वेत पुष्प और घृत—ये पदार्थ पितरोंके लिये सर्वदा प्रिय और प्रशस्त कहे गये हैं। अब जो श्राद्धकार्यमें वर्जित तथा पितरोंके लिये अप्रिय हैं, उन पदार्थोंका वर्णन कर रहा हूँ—

मसूरशणनिष्वावराजमाषकुसुम्भिका: ।  
 पद्माबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटर्षषका: ॥ ३७  
 न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा ।  
 कोद्रवोदारचणकाः कपित्थं मधुकातसी ॥ ३८  
 एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियमिच्छता ।  
 पितृन् प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम् ॥ ३९  
 यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजापत्यम् ।  
 देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते ॥ ४०  
 देवतानां च पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ।  
 श्रीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधा निःशस्त्राः स्थिरसौहृदाः ॥ ४१  
 शान्तात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः ।  
 भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ४२  
 हविष्यतामाधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः ।  
 एतद् चः सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्तनम् ।  
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं कीर्तनीयं सदा नृभिः ॥ ४३

इति श्रीमात्म्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणमें पितृवंशानुकीर्तन नामक पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

## सोलहवाँ अध्याय

श्राद्धोंके विविध भेद, उनके करनेका समय तथा श्राद्धमें निमन्त्रित करनेयोग्य ब्राह्मणके लक्षण

सूत उवाच

श्रुत्वैतत् सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् ।  
 श्राद्धे कालं च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ॥ १  
 श्राद्धेषु भोजनीया ये ये च वर्ज्या द्विजातयः ।  
 कस्मिन् वासरभागे वा पितृभ्यः श्राद्धमाचरेत् ॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे सुनकर मनुने मत्स्यभगवान्से पूछा—‘मधुसूदन! श्राद्धके लिये कौन-सा काल उत्तम है? श्राद्धके विभिन्न भेद कौन-से हैं? श्राद्धोंमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा कैसे ब्राह्मण वर्जित हैं? दिनके किस भागमें पितरोंके लिये श्राद्ध करना उचित है?

कस्मिन् दत्तं कथं याति श्राद्धं तु मधुसूदनं ।  
विधिना केन कर्तव्यं कथं प्रीणाति तत् पितृन् ॥ ३

मत्स्य उवाच

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।  
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ४  
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते ।  
नित्यं तावत् प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥ ५  
अदैवं तद् विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम् ।  
पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु तावन्महीपते ॥ ६  
पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताऽशृणुष्व नराधिप ।  
पञ्चाग्निः स्नातकश्चैव त्रसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ७  
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः ।  
सर्वज्ञो वेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः ॥ ८  
पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः ।  
शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः ॥ ९  
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।  
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्रतः स्वसुहृद् गुरुन् ॥ १०  
विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान् ।  
यश्च व्याकुरुते वाक्यं यश्च मीमांसतेऽध्वरम् ॥ ११  
सामस्वरविधिजश्च पञ्चक्तिपावनपावनः ।  
सामगो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथ ब्रह्मवित् ॥ १२  
यत्र ते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवत् ।  
एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान् निबोध मे ॥ १३

कैसे पात्रको श्राद्धीय वस्तु प्रदान करनी चाहिये ? तथा उसका फल पितरोंको कैसे प्राप्त होता है ? श्राद्ध किस विधि से करना उपयुक्त है ? तथा वह श्राद्ध किस प्रकार पितरोंको प्रसन्न करता है ? (ये सारी बातें मुझे बतलानेकी कृपा करें) ॥ १—३ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे ! प्रतिदिन पितरोंके प्रति श्रद्धा रखते हुए अब्र आदिसे या केवल जलसे अथवा दूध या फल-मूलसे भी श्राद्धकर्म करना चाहिये । श्राद्ध नित्य, नैमित्तिक और काम्यरूपसे तीन प्रकारका बतलाया गया है । इनमें मैं पहले नित्यश्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, जो अर्घ्य और आवाहनसे रहित होता है । इसे 'अदैव' मानना चाहिये । पर्वोंपर सम्पन्न होनेवाले (त्रिपुरुष) श्राद्धको 'पार्वण' कहते हैं । महीपते ! यह पार्वण श्राद्ध तीन प्रकारका बतलाया जाता है, उन्हें सुनो । नरेश्वर ! पार्वण श्राद्धमें जिन्हें नियुक्त करना चाहिये, उन्हें बतलाता हूँ, सुनो । जो पञ्चाग्नि विद्याका ज्ञाता अथवा गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंका उपासक, स्नातक, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेदके एक अंशका अध्येता॑), वेदके छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय, श्रोत्रियका पुत्र, धर्मशास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, सर्वज्ञ, वेदवेत्ता, उचित मन्त्रणा करनेवाला, जाने हुए वंशमें उत्पन्न, कुलीन, पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, स्वाध्याय एवं जपमें तत्पर रहनेवाला, शिवभक्त, पितृपरायण, सूर्यभक्त, वैष्णव, ब्राह्मणभक्त, योगवेत्ता, शान्त, आत्माको वशीभूत कर लेनेवाला एवं शीलवान् हो (ऐसे ब्राह्मणको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करना चाहिये) । (अब इस पुनीत श्राद्धमें जिन्हें भोजन कराना चाहिये, उनके विशेषमें बतला रहा हूँ, सुनो ।) पुत्रीका पुत्र (नाती), अपना मित्र, गुरु (अथवा गुरुजन), कुलपति (आचार्य), मामा, भाई-बन्धु, ऋत्विक्, आचार्य (विद्यागुरु) और सोमपायी—इन्हें प्रयत्नपूर्वक बुलाकर श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये । साथ ही जो विधिवाक्योंके व्याख्याता, यज्ञके मीमांसक, सामवेदके स्वर और (उसके उच्चारणकी) विधिके ज्ञाता, पञ्चपावनोंमें॒ भी परम पवित्र, सामवेदके पारगामी विद्वान्, ब्रह्मचारी, वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञानी हैं—ये सभी श्राद्धमें चेष्टापूर्वक भोजन कराने योग्य हैं । ऐसे ब्राह्मण जिस श्राद्धमें भोजन करते हैं, वही श्राद्ध परमार्थसम्पन्न माना जाता है । अब जो ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जित हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो ।

१. ऋग्वेद १० । ११४ की ३—५ ऋचाएँ 'त्रिसुपर्ण' संज्ञक हैं । उसके विशेषज्ञको भी 'त्रिसुपर्ण' कहा जाता है । वहाँ वही इष्ट है ।  
२. विद्या, तप आदिसे विशिष्ट ब्राह्मण, जिससे श्राद्धमें निमान्त्रित ब्राह्मणोंकी पञ्च पवित्र हो जाती है ।

पतितोऽभिशस्तः क्लीबः पिशुनव्यङ्गरोगिणः ।  
कुनखी श्यावदन्तश्च कुण्डगोलाश्वपालकाः ॥ १४

परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः ।  
बैडालो बकवृत्तिश्च दम्भी देवलकादयः ॥ १५

कृतध्नान् नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः ।  
त्रिशङ्कुर्बर्बरद्राववीतद्रविडकोङ्कणान् ॥ १६

वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वाञ्छाद्वकाले विशेषतः ।  
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥ १७

निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।  
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८

दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मया तु निमन्त्रितः ।  
एवं निमन्त्र्य नियमं श्रावयेत् पितृबान्धवान् ॥ १९

अक्रोधनैः शौचपैः सततं ब्रह्मचारिभिः ।  
भवितव्यं भवद्विश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥ २०

पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान् ।  
पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छाद्वमिन्दुक्षये सदा ॥ २१

गोमयेनोपलिसे तु दक्षिणप्रवणे स्थले ।  
श्राद्धं समाचरेद् भक्त्या गोष्ठे वा जलसंनिधौ ॥ २२

अग्निमान् निर्वपेत् पित्र्यं चरुं च सममुष्टिभिः ।  
पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ २३

अभिधार्य ततः कुर्याच्चिर्वापत्रयमग्रतः ।  
तेऽपि तस्यायता: कार्याश्वतुरङ्गुलविस्तृताः ॥ २४

दर्वीत्रयं तु कुर्वीत खादिरं रजतान्वितम् ।  
रलिमात्रं परिशलक्षणं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ॥ २५

पतित (जो अपने वर्णाश्रम-धर्मसे च्युत हो गया हो), अभिशस्त (कलङ्कित, बदनाम), नपुंसक, चुगलखोर, विकृत अङ्गोंवाला, रोगी, बुरे नखोंवाला, काले दाँतोंसे युक्त, कुण्ड (सधवाका जारज पुत्र), गोलक (विधवाका जारज पुत्र), कुत्तोंका पालक, परिवित्त\*, नौकर अथवा जिसका मन किसी अन्य श्राद्धमें लगा हो, पागल, उम्मादी, क्रूर, बिडाल एवं बगुलेकी तरह चोरीसे जीविकोपार्जन करनेवाला, दम्भी तथा मन्दिरमें देव-पूजा करके वेतनभोगी (पुजारी) —ये सभी श्राद्धभोजमें निषिद्ध माने गये हैं। इसी प्रकार कृतध्न (किये हुए उपकारको न माननेवाला), नास्तिक (परलोकपर विश्वास न करनेवाला), त्रिशङ्कु (कीकटसे दक्षिण और महानदीसे उत्तरका भाग), बर्बर (भारतकी पश्चिम सीमापरका प्रदेश), द्राव, वीत, द्रविड और कौंकण आदि देशोंके निवासी तथा संन्यासी—इन सभीका विशेषरूपसे श्राद्धकार्यमें परित्याग कर देना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके एक या दो दिन पहले ही श्राद्धकर्ता विनीतभावसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे; क्योंकि पितरलोग आकर उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके निकट उपस्थित होते हैं। वे वायुरूप होकर उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा उनके बैठ जानेपर पितर भी उन्हींके समीप बैठ जाते हैं ॥ ४—१८ ॥

उस समय श्राद्धकर्ता ब्राह्मणके दाहिने घुटनेको स्पर्शकर (उससे) इस प्रकार प्रार्थना करे—‘मैं आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ।’ इस प्रकार निमन्त्रण देकर अपने पिताके भाई-बन्धुओंको श्राद्ध-नियम बतलाते हुए यों कहे—‘(मैं अमुक दिन पितृ-श्राद्ध करूँगा, अतः उस दिन) आपलोगोंको निरन्तर क्रोधरहित, शौचाचारपरायण तथा ब्रह्मचर्य-व्रतमें स्थित रहना चाहिये। मुझ श्राद्धकर्ताद्वारा भी इन नियमोंका पालन किया जायगा।’ इस प्रकार पितृ-यज्ञसे निवृत्त होकर तर्पण-कर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ताको ‘पिण्डान्वाहार्यक’ नामक श्राद्ध सदा अमावास्या तिथिमें करना चाहिये। गोशालामें या किसी जलाशयके निकट दक्षिण दिशाकी ओर ढालू स्थानको गोबरसे लीपकर वहीं भक्तिपूर्वक श्राद्धकर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ता पितरोंके निमित्त बनी हुई चरुको समसंख्यक (२, ४, ६) मुट्ठियोंद्वारा ‘मैं पितरोंको चरु प्रदान कर रहा हूँ’—यों कहकर पितरोंको चरु प्रदान करे और शेष सबको अपनी दाहिनी ओर रख ले। तत्पश्चात् अग्निमें धीकी धारा छोड़कर चरुको तीन भागोंमें विभक्त करके आगेकी ओर रखे। उन भागोंको भी चार अङ्गुलके विस्तारका लम्बा बना देना चाहिये। पुनः तीन दर्वा (करछुलें, जिनसे हवनीय पदार्थ अग्निमें छोड़े जाते हैं) रखनी चाहिये, जो खैर या चाँदीमिश्रित अन्य धातुकी बनी हों, जिनका परिमाण मुट्ठी बँधे हुए हाथके बराबर हो, जो अत्यन्त चिकनी, उत्तम एवं हथेलीकी-सी बनी हुई सुडौल हों।

\* बड़े भाईके अविवहित रहते हुए जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है, उसे ‘परिवित्त’ कहा जाता है।

उदपात्रं च कांस्यं च मेक्षणं च समित् कुशान्।  
 तिलाः पात्राणि सद्वासो गन्धधूपानुलेपनम्॥ २६

आहरेदपसव्यं तु सर्वे दक्षिणतः शनैः।  
 एवमासाद्य तत् सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि॥ २७

गोमयेनोपलिसायां गोमूत्रेण तु मण्डलम्।  
 अक्षताभिः सपुष्याभिस्तदभ्यर्थ्यपसव्यवत्॥ २८

विप्राणां क्षालयेत् पादावभिनन्द्य पुनः पुनः।  
 आसनेषूपकलृसेषु दर्भवत्सु विधानवत्॥ २९

उपस्पृष्टोदकान् विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्।  
 द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च॥ ३०

भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद् विस्तरं बुधः।  
 दैवपूर्वं नियोज्याथ विप्रानर्थ्यादिना बुधः॥ ३१

अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि।  
 स्वगृहोक्तविधानेन कांस्ये कृत्वा चरुं ततः॥ ३२

अग्नीषोमयमानां तु कुर्यादाप्यायनं बुधः।  
 दक्षिणाग्नौ प्रतीते वा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः॥ ३३

यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम्।  
 प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता॥ ३४

षट् च तस्माद्विःशेषात् पिण्डान् कृत्वा ततोदकम्।  
 दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना॥ ३५

जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः।  
 विधाय लेखां यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम्॥ ३६

दक्षिणाभिमुखः कुर्यात् करे दर्वीं निधाय वै।  
 निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुकमात्॥ ३७

इसी प्रकार अपसव्य होकर (जनेऊको बाँयें कंधेसे दाहिने कंधेपर रखकर) पीतलका जलपात्र, मेक्षण (प्रणीतापात्र), समिधा, कुश, तिल, अन्यान्य पात्र, शुद्ध नवीन वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन आदिको लाकर सबको धीरेसे अपनी दाहिनी ओर रख ले। इस प्रकार सभी आवश्यक सामग्रियोंको एकत्र करके घरके दरवाजेपर गोबरसे लिपी हुई भूमिपर अपसव्य होकर गोमूत्रसे मण्डलकी रचना करे और पुष्पसहित अक्षतोद्वारा उसकी भी पूजा करे। तत्पश्चात् बारम्बार ब्राह्मणोंका अभिनन्दन करते हुए उनका पाद-प्रक्षालन करे। पुनः उन ब्राह्मणोंको कुशनिर्मित आसनोंपर बैठाकर विधिपूर्वक उन्हें आचमन या जलपान करावे। तदनन्तर उनसे श्राद्धके लिये सम्मति ले॥ १९—२९ १/२॥

बुद्धिमान् पुरुषको देवकार्यमें दो एवं पितृकार्यमें तीन अथवा दोनों कार्योंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न होनेपर भी पार्वण श्राद्धमें विस्तार करना उचित नहीं है। पहले विश्वेदेवको अर्च्य आदि समर्पित करके तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी अर्च्य आदि द्वारा पूजा करे। पुनः श्राद्धकर्ता ब्राह्मणको चाहिये कि वह उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर चरुको काँसेके बर्तनमें रखकर अपने गृहोक्तके विधानानुसार विधिपूर्वक अग्निमें हवन करे, फिर बुद्धिमान् पुरुषको अग्नि, सोम और यमका तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार एक अग्निका उपासक यज्ञोपवीतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मण ‘दक्षिण’ नामक अग्निके प्रज्वलित हो जानेपर श्राद्धकर्म सम्पन्न करे। तदनन्तर पर्युक्षण आदिसे निवृत्त होकर उपर्युक्त सारी विधियोंको समझ ले और प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर सारा कार्य सम्पन्न करे। फिर उस बचे हुए हविसे छः पिण्ड बनाकर उनपर बायें हाथसे अपने जलपात्रद्वारा तिलसहित जल गिराये और ईर्ष्या-द्वेषरहित होकर हाथमें कुश लेकर बायाँ घुटना मोड़कर प्रयत्नपूर्वक (वेदीपर) रेखा बनाये (एवं रेखाओंपर कुश बिछाये।) तथा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पिण्ड रखनेके लिये बिछाये गये कुशोंपर अवनेजन (श्राद्ध-वेदीपर बिछे हुए कुशोंपर जल सीचनेका संस्कार) करे। फिर हाथमें करछुल लेकर

निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः ।  
 तेषु दर्भेषु तं हस्तं विमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ ३८  
 तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम् ।  
 षडप्यृतून् नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः ॥ ३९  
 एवमावाह्य तत् सर्वं वेदमन्त्रैर्थोदितैः ।  
 एकाग्रेरेक एव स्यान्निर्वापो दर्विका तथा ॥ ४०  
 ततः कृत्वान्तरे दद्यात् पत्नीभ्योऽन्नं कुशेषु सः ।  
 तद्वत् पिण्डादिके कुर्यादावाहनविसर्जनम् ॥ ४१  
 ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु ।  
 तानेव विप्रान् प्रथमं प्राशयेद् यत्ततो नरः ॥ ४२  
 यस्मादन्नाद्वृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः ।  
 अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात् तच्चन्द्रसंक्षये ॥ ४३  
 पूर्वं दत्त्वा तु तद्वस्ते सपवित्रं तिलोदकम् ।  
 तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत् स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ ४४  
 वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्ठं पूतं च सर्वदा ।  
 वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन् नारायणं हरिम् ॥ ४५  
 तृप्ता ज्ञात्वा ततः कुर्याद् विकिरन् सार्ववर्णिकम् ।  
 सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद् भुवि ॥ ४६  
 आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् ।  
 स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरि समाहरेत् ॥ ४७  
 देवायत्तं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोऽन्यथा भवेत् ।  
 विसृज्य ब्राह्मणांस्तद्वत् तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४८  
 दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितृन् याचेत मानवः ।  
 दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥ ४९  
 श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति ।  
 अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥ ५०

तथा क्रमशः एक-एक पिण्ड उठाकर पितरोंके गोत्र एवं नामोंका उच्चारण करके उन सभी बिछाये गये कुशोंपर एक-एक करके रख दे और लेपभागी पितरोंकी तृसिके लिये उन कुशोंके मूलभागमें अपने उस हाथको पोंछ दे । तत्पश्चात् पुनः पूर्ववत् उन पिण्डोंपर प्रत्यवनेजन जल छोड़े । तदुपरान्त गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उन छहों पितरोंका पूजन करके उन्हें नमस्कार करे और फिर यथोक्त वेद-मन्त्रोंद्वारा उनका आवाहन करे । एकाग्रिक ब्राह्मणके लिये एक ही निर्वाप और एक ही करछुलका विधान है । यह सब सम्पन्न कर लेनेके पश्चात् श्राद्धकर्ता कुशोंपर पितरोंकी पत्नियोंके लिये अन्न प्रदान करे और पिण्डोंपर आवाहन एवं विसर्जन आदि क्रिया पूर्ववत् करे । तत्पश्चात् श्राद्धकर्ता उन सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर उन्हें सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंको खिलावे ॥ ३०—४२ ॥

चौंकि पिण्डान्नसे निकाले गये अंशको अमावास्याके दिन ब्राह्मणलोग खाते हैं, इसीलिये इस श्राद्धको 'अन्वाहार्यक' कहा जाता है । श्राद्धकर्ता पहले पवित्रकसहित तिल और जलको उस ब्राह्मणके हाथमें देकर तत्पश्चात् पिण्डांशको समर्पित करे और 'यह हमारे पितरोंके लिये स्वधा हो' यों कहते हुए भोजन कराये । उस ब्राह्मणको चाहिये कि वह क्रोधका परित्याग करके भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए 'यह बहुत मीठा है', 'यह परम पवित्र है'—यों कहते हुए भोजन करे । उन ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर तत्पश्चात् सभी वर्णोंके लिये विकिराकी क्रिया करनी चाहिये । उस समय जलसहित अन्न लेकर पृथ्वीपर जल गिरा दे । पुनः उन ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर जल, पुष्प, अक्षत आदि सभी सामग्री स्वस्तिवाचनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर डाल दे । फिर इस श्राद्धफलको भगवान् को अर्पित कर दे, अन्यथा श्राद्ध नष्ट हो जाता है । इसी प्रकार उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे । उस समय श्राद्धकर्ता दक्षिण दिशाकी ओर मुखकरके पितरोंसे अभिलाषापूर्तिके निमित्त याचना करते हुए यों कहे— 'पितृगण ! हमारे दाताओं, वेदों (वेदज्ञान) और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास प्रचुर सम्पत्ति हो, हमारे अधिक-से-अधिक अन्न उत्पन्न हों, हमारे घरपर अतिथियोंका जमघट लगा रहे ।

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ।  
 एतदस्त्वति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यं तु पार्वणम् ॥ ५१  
 यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ।  
 पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ॥ ५२  
 विप्राग्रतो वा विकिरेद् वयोभिरभिवाशयेत् ।  
 पत्नी तु मध्यमं पिण्डं प्राशयेद् विनयान्विता ॥ ५३  
 आधत्त पितरो गर्भमत्र संतानवर्धनम् ।  
 तावदुच्छेषणं तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः ॥ ५४  
 वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि ।  
 इष्टैः सह ततः शान्तो भुज्ञीत पितृसेवितम् ॥ ५५  
 पुनर्भोजनमध्यानं यानमायासमैथुनम् ।  
 श्राद्धकृच्छ्राद्धभुजैव सर्वमेतद् विवर्जयेत् ॥ ५६  
 स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा ।  
 अनेन विधिना श्राद्धं निरुद्धास्येह निर्विपेत् ॥ ५७  
 कन्याकुम्भवृषस्थेऽके कृष्णपक्षेषु सर्वदा ।  
 यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात् परम् ।  
 तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ॥ ५८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निमच्छाद्वे श्राद्धकल्पो नाम घोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निमच्छाद्विषयक श्राद्धकल्प नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

## सत्रहवाँ अध्याय

### साधारण एवं आध्युदयिक श्राद्धकी विधिका विवरण

#### सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् ।  
 श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १  
 अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे ।  
 अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥ २

आद्र्मिधारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ।  
 गजच्छायाव्यतीपाते विष्टवैधृतिवासरे ॥ ३

हमसे माँगनेवाले बहुत हों, परंतु हम किसीसे याचना न करें।' उस समय ब्राह्मणलोग कहें—'ऐसा ही हो।' इस प्रकार अन्वाहार्यक नामक पार्वण श्राद्ध जिस प्रकार अमावास्या तिथिको बतलाया गया है, उसी प्रकार अन्य तिथियोंमें भी किया जा सकता है। श्राद्ध-समाप्तिके पश्चात् उन पिण्डोंको गौ, बकरी या ब्राह्मणको दे दे अथवा अग्नि या जलमें भी डाल दे अथवा ब्राह्मणके सामने ही पक्षियोंके लिये छोट दे। उनमें मझले पिण्डको (श्राद्धकर्ताकी) पत्नी 'पितृगण मेरे उदरमें संतानकी वृद्धि करनेवाले गर्भकी स्थापना करायें' यों याचना करती हुई विनयपूर्वक स्वयं खा जाय। यह पिण्ड तबतक उच्छिष्ट बना रहता है, जबतक ब्राह्मण विदा नहीं कर दिये जाते। इस प्रकार पितृकर्मके समाप्त हो जानेपर वैश्वदेवका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने इष्ट-मित्रोंसहित शान्तिपूर्वक उस पितृसेवित अन्नका स्वयं भोजन करना चाहिये ॥ ४३—५५ ॥

श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता—दोनोंको श्राद्धमें भोजन करनेके पश्चात् पुनः भोजन करना, मार्गागमन, सवारीपर चढ़ना, परिश्रमका काम करना, मैथुन, स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबका उस दिन परित्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे जमुहाई आदि न लेकर श्राद्ध-कर्म सम्पन्न करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके स्थित रहनेपर कृष्णपक्षमें जहाँ-जहाँ पिण्डदान करे, वहाँ-वहाँ अग्निहोत्री श्राद्धकर्ताको सदा इसी विधिसे पिण्डदान करना चाहिये ॥ ५६—५८ ॥

वैशाखस्य तृतीया या नवमी कार्तिकस्य च ।  
पञ्चदशी च माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी ॥ ४

युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः ।  
तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता ॥ ५  
अश्वयुक्तुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।  
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ६  
फाल्गुनस्य ह्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ।  
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ ७  
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।  
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी सिता ।  
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ ८  
यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमास्ते दिवाकरः ।  
माघमासस्य सप्तम्यां सा तु स्याद् रथसप्तमी ॥ ९  
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं  
दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।  
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं  
रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ॥ १०  
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये ।  
तीर्थायतनगोष्ठेषु दीपोद्यानगृहेषु च ॥ ११  
विविक्तेषूपलिसेषु श्राद्धं देयं विजानता ।  
विप्रान् पूर्वे परे चाह्वि विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥ १२  
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान् ।  
द्वौ दैवे त्रीस्तथा पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा ॥ १३  
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे ।  
विश्वान् देवान् यवैः पुष्टैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् ॥ १४  
पूरयेत् पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम् ।  
शंनो देवीत्यपः कुर्याद् यवोऽसीति यवानपि ॥ १५

वैशाखमासकी शुक्लतृतीया (अक्षयतृतीया), कार्तिकमासकी शुक्लनवमी (अक्षयनवमी), माघमासकी पूर्णिमा और भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी—ये युगादि तिथियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायक होता है। इसी प्रकार विद्वान् श्राद्धकर्ताको मन्वन्तरोंकी आदि तिथियोंमें भी श्राद्ध-कर्म करना चाहिये ॥ १—५ ॥

आश्विनमासकी शुक्लनवमी, कार्तिकमासकी शुक्लद्वादशी, चैत्रमासकी शुक्लतृतीया, भाद्रपदमासकी शुक्लतृतीया, फाल्गुनमासकी अमावास्या, पौषमासकी शुक्ल-एकादशी, आषाढ़मासकी शुक्लदशमी, माघमासकी शुक्लसप्तमी, श्रावणमासकी कृष्णाष्टमी, आषाढ़मासकी पूर्णिमा तथा कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये चौदह तिथियाँ चौदह मन्वन्तरोंकी आदि तिथियाँ हैं; इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलकारक होता है। जिस मन्वन्तरकी आदि तिथि माघमासकी शुक्लसप्तमीमें भगवान् सूर्य रथपर आरूढ़ होते हैं, वह सप्तमी रथसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। इस तिथिमें यदि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक अपने पितरोंको तिलमिश्रित जलमात्र प्रदान करता है अर्थात् तर्पण कर लेता है तो वह सहस्रों वर्षोंतक किये गये श्राद्धके समान फलदायक होता है। इसका रहस्य पितुगण स्वयं बतलाते हैं। विद्वान् श्राद्धकर्ताको चाहिये कि वह वैशाखी पूर्णिमामें, सूर्य एवं चन्द्रग्रहणमें, विशेष उत्सवके अवसरपर, पितृपक्षमें,\* तीर्थस्थान, देव-मन्दिर एवं गोशालामें, दीपगृह और वाटिकामें एकान्तमें लिपी-पुती हुई भूमिपर श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करे। वह श्राद्धके एक या दो दिन पूर्व ही विनप्रभावसे शीलवान्, सदाचारी, गुणी, रूपवान् एवं अधिक अवस्थावाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। देवकार्यमें दो और पितृ-कार्यमें तीन अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अतिशय समृद्धिशाली होनेपर भी विस्तारमें नहीं लगना चाहिये। उस समय विश्वेदेवोंको आसन प्रदान करके यव और पुष्टोंद्वारा उनकी अर्चना करे। फिर दो मिट्टीके पात्र (कोसा) रखकर उनमें कुशनिर्मित पवित्रक डाल दे और 'शं नो देवीरभीष्टये०' (वाज० सं० ३६। १२) इस मन्त्रको पढ़कर उन्हें जलसे भर दे और 'यवोऽसि०' (नारायणोपनिषद्) यह मन्त्र उच्चारणकर उनमें यव डाल दे।

\* इस प्रकार श्राद्धके १६ अवसर प्रसिद्ध हैं और ये ही वचन हेमाद्रि आदिके श्राद्धकाण्डों तथा श्राद्धतत्त्व, श्राद्धविवेक, श्राद्धप्रकाश, श्राद्धकल्पलता, पितृदायिता आदि सभी श्राद्ध-निबन्धोंमें प्राप्त होते हैं।

गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वेदेवं प्रति न्यसेत्।  
विश्वेदेवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद् यवान्॥ १६

गन्धपुष्पैरलङ्घत्य या दिव्येत्यर्थ्यमुत्सुजेत्।  
अभ्यर्थ्य ताभ्यामुत्सृष्टे पितृकार्यं समारभेत्॥ १७

दर्भासनं तु दत्त्वादौ त्रीणि पात्राणि पूरयेत्।  
सपवित्राणि कृत्वादौ शन्नो देवीत्यपः क्षिपेत्॥ १८

तिलोऽसीति तिलान् कुर्याद् गन्धपुष्पादिकं पुनः।  
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः॥ १९

जलजं वाथ कुर्वीत तथा सागरसम्भवम्।  
सौवर्णं राजतं वापि पितृणां पात्रमुच्यते॥ २०

रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा।  
राजतैर्भजनैरेषामथवा रजतान्वितैः॥ २१

वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते।  
तथार्थ्यपिण्डभोज्यादौ पितृणां राजतं मतम्॥ २२

शिवनेत्रोद्ध्रवं यस्मात् तस्मात् पितृवल्लभम्।  
अमङ्गलं तद् यलेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥ २३

एवं पात्राणि सङ्कल्प्य यथालाभं विमत्सरः।  
या दिव्येति पितुर्नामि गोत्रैर्दर्भकरो न्यसेत्॥ २४

पितृनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तैः पुनः।  
उशन्तस्त्वा तथायान्तु त्रष्ण्यामावाहयेत् पितृन्॥ २५

या दिव्येत्यर्थ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः।  
हस्तात् तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संस्तवमादितः॥ २६

पितृपात्रे निधायाथ न्युञ्जमुत्तरतो न्यसेत्।  
पितृभ्यः स्थानमसीति निधाय परिषेचयेत्॥ २७

तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः।  
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहत्य परिवेषयेत्॥ २८

प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः।  
गुणाङ्गैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः॥ २९

फिर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजा करके उन्हें विश्वेदेवोंके उद्देश्यसे (उनके निकट) रख दे। फिर 'विश्वेदेवास०' (शु० यजु० ७। ३४) इत्यादि दो मन्त्रोद्घारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके (वेदीपर) जौ बिखेर दे। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प आदिसे अलंकृत करके 'या दिव्या आपः०' (तै० सं०) इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। इस प्रकार उनकी पूजा करके और उनसे निवृत्त होकर पितृ-कार्य आरम्भ करे॥ ६—१७॥

(पितृ-श्राद्धमें) पहले कुशोंका आसन प्रदान करके तीन अर्घ्यपात्रोंको तैयार करना चाहिये। उनमें प्रथमतः कुशनिर्मित पवित्रक डालकर 'शं नो' देवी०' (शु० यजु० ३६। १२)—' इस मन्त्रसे उन्हें जलसे भर दे, पुनः 'तिलोऽसि०'- इस मन्त्रसे उनमें तिल डालकर उन्हें (अमन्त्रक ही) गन्ध, पुष्प आदिसे पूरा कर दे। पितरोंके निमित्त प्रयुक्त किये गये ये पात्र काष्ठके या वृक्षके पत्तेके या जल एवं सागरसे उत्पन्न हुए पत्तेके अथवा सुवर्णमय या रजतमय होने चाहिये। (यदि चाँदीका पात्र देनेकी सामर्थ्य न हो तो) चाँदीके विषयमें कथनोपकथन, दर्शन अथवा दानसे ही कार्य सम्पन्न हो सकता है। पितरोंके निमित्त यदि चाँदीके बने हुए या चाँदीसे मढ़े हुए पात्रोंद्वारा श्रद्धापूर्वक जलमात्र भी प्रदान कर दिया जाय तो वह अक्षय तृप्तिकारक होता है। इसी प्रकार पितरोंके लिये अर्घ्य, पिण्ड और भोजनके पात्र भी चाँदीके ही प्रशस्त माने गये हैं। चूँकि चाँदी शिवजीके नेत्रसे उद्भूत हुई है, इसलिये यह पितरोंको परम प्रिय है; किन्तु देवकार्यमें इसे अशुभ माना गया है, इसलिये देवकार्यमें चाँदीको दूर रखना चाहिये। इस प्रकार यथाशक्ति पात्रोंकी व्यवस्था करके मत्सररहित हो कुश हाथमें लेकर 'या दिव्या०' (तै० सं०)—इस मन्त्रद्वारा अपने पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए (उन अर्घ्यपात्रोंको) रख दे। (फिर ब्राह्मणोंकी ओर देखकर यों कहे कि) 'मैं अपने पितरोंका आवाहन करूँगा।' इसके उत्तरमें ब्राह्मणलोग कहें—'करो।' ऐसा कहे जानेपर 'उशन्तस्त्वा०'—एवं 'आयान्तु नः०'—इन दोनों ऋचाओंद्वारा पितरोंका आवाहन करे। तत्पश्चात् 'या दिव्या०'—इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करके गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे। फिर पिण्डदानसे पूर्व उस जलको हाथमें लेकर उसे पितृ-पात्रमें रखकर वेदीके अग्रभागमें उलटकर रख दे और 'पितृभ्यः स्थानमसि'—यह पितरोंके लिये स्थान है—ऐसा कहकर उसे जलसे संच दे। इस कार्यमें भी पूर्ववत् सावधानीपूर्वक अग्निकार्य सम्पन्न करे। तदुपरान्त हाथमें कुश लिये हुए प्रशान्तचित्तसे गुणकारी दाल, शाक आदिसे युक्त विविध प्रकारके खाद्य पदार्थोंको अपने दोनों

अत्रं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्।  
 मांसं प्रीणाति वै सर्वान् पितृनित्याह केशवः ॥ ३०  
 द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु ।  
 औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथं पञ्चं वै ॥ ३१  
 घण्मासं छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा ।  
 सप्तं पार्षतपांसेन तथाष्टावेणजेन तु ॥ ३२  
 दशं मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः ।  
 शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३३  
 संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ।  
 रौरवेण च तृप्यन्ति मासान् पञ्चदशैव तु ॥ ३४  
 वार्धीणसस्य मांसेन तृसिद्धादशवार्षिकी ।  
 कालशाकेन चानन्ता खडगमांसेन चैव हि ॥ ३५  
 यत् किञ्चिवन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम् ।  
 दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ३६  
 स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च ।  
 ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणां सूक्तानि विविधानि च ॥ ३७  
 इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तिः ।  
 बृहद्रथन्तरं तद्वज्येष्टसाम सरौहिणम् ॥ ३८  
 तथैव शान्तिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च ।  
 मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत् प्रीतिकारि तु यत् पुनः ॥ ३९  
 विप्राणामात्मनश्चैव तत् सर्वं समुदीरयेत् ।  
 भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ॥ ४०  
 सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ।  
 समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद् भुवि ॥ ४१  
 अग्निदाधास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।  
 भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमां गतिम् ॥ ४२  
 येषां न माता न पिता न बन्धु-

न गोत्रशुद्धिर्न तथात्रमस्ति ।  
 तत्त्वस्येऽनं भुवि दत्तमेतत् ।  
 प्रयान्तु लोकेषु सुखाय तद्वत् ॥ ४३  
 असंस्कृतप्रमीतानां त्यक्तानां कुलयोषिताम् ।  
 उच्छिष्टभागधेयः स्याद् दर्भे विकिरयोश्च यः ॥ ४४  
 तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद् विप्रकरे तथा ।  
 उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥ ४५

हाथोंसे लाकर 'पूर्णरूपसे परिवेषण करे (परोसे)। पदार्थोंमें दही, दूध और शक्करमिश्रित अत्र तथा गोघृत, गोदुग्ध और खीर आदि जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। पितरलोग गृहस्थोंके प्रथम देवता हैं, इसलिये श्राद्धके अवसरपर पितृसम्बन्धी सूक्तोंका स्वाध्याय (पाठ), सम्पूर्ण पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके विभिन्न प्रकारके सूक्त, इन्द्र, अग्नि और सोमके पवित्र सूक्त, बृहद्रथन्तर, रौहिणसहित ज्येष्ठ साम, शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण और मण्डलब्राह्मण आदि तथा इसी प्रकारके अन्यान्य प्रीतिवर्धक सूक्तों या स्तोत्रोंका स्वयं अथवा ब्राह्मणोंद्वारा पाठ करना-करवाना चाहिये ॥ १८—३९ १ २ ॥

राजन्! उन ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकनेपर उनके भोजनके संनिकट ही सभी वर्णोंके लिये नियत किये हुए अत्र आदि पदार्थोंको लाकर उन्हें जलसे परिपूर्ण कर भोजन करनेवालोंके समक्ष ही यह कहते हुए पृथ्वीपर बिखरे दे—'मेरे कुलमें (मृत्युके पश्चात्) जिन जीवोंका अग्नि-संस्कार हुआ हो अथवा जिनका अग्नि-संस्कार नहीं भी हुआ हो, वे सभी पृथ्वीपर बिखरे हुए इस अन्तसे तृप्त हों और परम गतिको प्राप्त हों। जिनकी न माता है, न जिनके पिता या भाई-बन्धु हैं, न तो जिनकी गोत्र-शुद्धि हुई है तथा जिनके पास अत्र भी नहीं है, उनकी तृप्तिके निमित्त मैंने भूतलपर यह अत्र छोट दिया है, अतः वे भी (मेरे पितरोंकी भाँति) सुखभोगके लिये उत्तम लोकोंमें जायें। इसी प्रकार जो कुलवधुएँ बिना संस्कृत हुए ही मृत्युको प्राप्त हो गयी हैं अथवा जिनका परिवारवालोंने परित्याग कर दिया है, उनके लिये कुश-मूलमें लगा हुआ तथा विकिरका बचा हुआ उच्छिष्ट भाग ही हिस्सा है।' तदनन्तर ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर एक बार उनके हाथोंपर जल डाल दे। फिर गोबर, गोमूत्र और जलसे लिपी हुई भूमिपर

निधाय दर्भान् विधिवद् दक्षिणाग्रान् प्रयत्नतः ।  
 सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत् ॥ ४६  
 अवनेजनपूर्वं तु नामगोत्रेण मानवः ।  
 गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥ ४७  
 जान्वाच्य सव्यं सव्येन पाणिनाथं प्रदक्षिणम् ।  
 पित्र्यमानीय तत् कार्यं विधिवद् दर्भपाणिना ॥ ४८  
 दीपप्रज्वालनं तद्वत् कुर्यात् पुष्पार्चनं बुधः ।  
 अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात् सकृत् सकृत् ॥ ४९  
 अथ पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षयोदकमेव च ।  
 सतिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ ५०  
 गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च ।  
 दद्याद् यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ॥ ५१  
 वित्तशाव्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।  
 ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ॥ ५२  
 दत्त्वाशीः प्रतिगृहीयाद् विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः ।  
 अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ॥ ५३  
 गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः ।  
 दातारो नोऽभिवर्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ॥ ५४  
 एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः ।  
 स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुदृत्य भक्तिः ॥ ५५  
 उच्छेषणं तु तत् तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः ।  
 ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्मव्यवस्थितिः ॥ ५६  
 उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्यास्तिकस्य च ।  
 दासर्वगस्य तत् पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते ॥ ५७  
 पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा ।  
 अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ॥ ५८  
 ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृहोदपात्रकम् ।  
 वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ५९  
 बहिः प्रदक्षिणां कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् ।  
 बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥ ६०

कुशोंको विधिपूर्वक दक्षिणाभिमुख बिछा दे । तब श्राद्धकर्ता पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करके पहले (कुशोंपर) अवनेजन दे (पिण्डकी वेदीपर कुशसे जल छिड़के), फिर पितृ-यज्ञकी भाँति सभी प्रकारके अन्तोंसे बने हुए पिण्डोंको उन कुशोंपर रख दे । पुनः गन्ध, पुष्प आदिसे पिण्ड-पूजा करके उनपर प्रत्यवनेजनका जल छोड़े और बायाँ घुटना टेककर बायें हाथसे प्रदक्षिणा करे; फिर कुश हाथमें लेकर विधिपूर्वक पितृकार्य सम्पन्न करे । बुद्धिमान् श्राद्धकर्ताको पूर्वोक्त विधिके अनुसार दीप जलाना एवं पुष्पोंद्वारा पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके उनके हाथोंपर एक-एक बार जल, पुष्प, अक्षत और तिलसहित अक्षय्योदक डालकर यथाशक्ति उन्हें दक्षिणा दे । पुनः कंजूसी छोड़कर पितरोंको प्रसन्न करते हुए गौ, पृथ्वी, सोना, वस्त्र, सुन्दर शय्याएँ तथा जो वस्तु अपने तथा पिताको अभीष्ट रही हो, वह सब ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये । तदुपरान्त स्वधाका उच्चारण करके विद्वान् श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो विश्वेदेवोंको जल प्रदान करके उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे । उस समय ब्राह्मणोंसे कहे—‘हमारे पितर सौम्य हों ।’ पुनः ब्राह्मण लोग कहें—‘सन्तु—हों’ ॥ ४०—५३ ॥

(पुनः यजमान कहे) ‘हमारे गोत्रकी वृद्धि हो तथा हमारे दाताओंकी अभिवृद्धि हो ।’ यों कहे जानेपर पुनः वे ब्राह्मण कहें—‘वैसा ही हो ।’ पुनः प्रार्थना करे—‘ये आशीर्वाद सत्य हों ।’ ब्राह्मणलोग कहें—‘सन्तु—(सत्य) हों’ । पुनः उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और पिण्डोंको उठाकर भक्तिपूर्वक ग्रहबलि करे—यही धर्मकी मर्यादा है । जबतक निमन्त्रित ब्राह्मण विसर्जित किये जाते हैं, तबतक सभी वस्तुएँ उच्छिष्ट रहती हैं । कपटरहित एवं आस्तिक ब्राह्मणोंका जूठन और पितृकार्यमें भूमिपर बिखरे हुए अन्न नौकरोंके भाग हैं—ऐसा कहा जाता है । नरेश्वर! पितरोंद्वारा व्यवस्थित यह तर्पणरूप कार्य पुत्रहीनों, पुत्रवानों तथा स्त्रियोंके लिये भी है । तदनन्तर ब्राह्मणोंको आगे खड़ा करके जलपात्रको हाथमें लेकर ‘वाजे वाजे’—यों कहते हुए कुशोंके अग्रभागसे पितरोंका विसर्जन करे तथा बाहर जाकर पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धुओंको साथ लेकर आठ पगतक उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलकर उनकी प्रदक्षिणा करे ।

निवृत्य प्राणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्ववत् ।  
 वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च ॥ ६१  
 ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः ।  
 भुज्ञीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥ ६२  
 एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु ।  
 श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ ६३  
 भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।  
 शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ ६४  
 तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ।  
 उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥ ६५  
 मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम् ।  
 ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥ ६६  
 प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः ।  
 प्राइमुखो निर्वपेत् पिण्डान् दूर्वया च कुशैर्युतान् ॥ ६७  
 सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्थ्य द्वयोद्वयोः ।  
 युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः ॥ ६८  
 तिलार्थस्तु यवैः कार्यो नान्दीशब्दानुपूर्वकः ।  
 माङ्गल्यानि च सर्वाणि वाचयेद् द्विजपुङ्गवैः ॥ ६९  
 एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा ।  
 नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्त्रतः सदा ॥ ७०  
 दानप्रथानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान् प्रभुः ।  
 दानेन सर्वकामासिरस्य संजायते यतः ॥ ७१

वहाँसे लौटकर अग्निको प्रणाम करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका पर्युक्षण करे तथा वैश्वदेव और नित्य बलि प्रदान करे। वैश्वदेवबलि समाप्त कर लेनेके बाद अपने नौकर-चाकर, पुत्र, भाई-बन्धु और अतिथियोंके साथ सभी प्रकारके पितृ-सेवित (जिन्हें पहले पितरोंको समर्पित किया जा चुका है) पदार्थोंका भोजन करे। इस सामान्य पार्वण नामक श्राद्धको, जो सभी प्रकारके मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है, उपनयन-संस्कारसे रहित व्यक्ति भी सभी पर्वोंके अवसरपर कर सकता है। बुद्धिमान् पितृ-भक्त पुरुष पलीरहित अवस्थामें तथा परदेशमें स्थित रहनेपर भी इस श्राद्धका विधान कर सकता है। शूद्रको भी पूर्वोक्त विधिके अनुसार मन्त्ररहित ही इस श्राद्धको करनेका अधिकार है। ऋषियो! अब तीसरे प्रकारके पार्वण श्राद्धको, जो आभ्युदयिक वृद्धिश्राद्धके नामसे कहा जाता है, बतला रहा हूँ। यह श्राद्ध किसी उत्सव, हर्ष-संयोग, यज्ञ, विवाह आदिके शुभ अवसरपर किया जाता है ॥ ५४—६५ ॥

राजन्! इस श्राद्धमें प्रथमतः माताओंकी पूजा करके तत्पश्चात् पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मातामह (नाना) और विश्वेदेवोंके पूजनका विधान है। श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करके दही, अक्षत, फल और जल आदि सामग्री-समेत दूर्वा और कुशोंसे संयुक्त पिण्डोंको समर्पित करे। इस आभ्युदयिक श्राद्धमें 'सम्पन्नम्' इस मन्त्रका उच्चारण करके दोनों प्रकारके पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। उस समय वस्त्र, सुवर्ण आदि सामग्रियोंसे दो ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। तिलके स्थानपर 'नान्दी' शब्दके उच्चारणपूर्वक यवसे ही कार्य सम्पन्न करे और श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा सभी प्रकारके माङ्गलिक सूक्तों अथवा स्तोत्रोंका पाठ कराये। इसी प्रकार इस सामान्य वृद्धिश्राद्धमें शूद्र भी सदा-सर्वदा नमस्काररूपी मन्त्रके उच्चारणसे तथा आमान्त्र-दानसे (बिना पके हुए कच्चे अन्नके दानसे) कार्य सम्पन्न कर सकता है। शूद्रको विशेषरूपसे दानप्रधान (दानमें तत्पर, दानशील) होना चाहिये; क्योंकि दानसे उसके सभी मनोरथोंकी पूर्ति हो जाती है—ऐसा सर्वसमर्थ भगवान् कहा है ॥ ६६—७१ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे साधारणाभ्युदयकीर्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें साधारणाभ्युदयश्राद्ध-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

## अठारहवाँ अध्याय

एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि

सूत उवाच

एकोद्दिष्टमतो वक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना ।  
 मृते पुत्रैर्यथा कार्यमाशौचं च पितर्यपि ॥ १  
 दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते ।  
 क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि ॥ २  
 शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ।  
 नैशं वाकृतचूडस्य त्रिरात्रं परतः स्मृतम् ॥ ३  
 जननेऽप्येवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा ।  
 तथास्थिसञ्जयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ ४  
 प्रेताय पिण्डदानं तु द्वादशाहं समाचरेत् ।  
 पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत् ॥ ५  
 तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं<sup>१</sup> न नीयते ।  
 गृहं पुत्रं कलत्रं च द्वादशाहं प्रपश्यति ॥ ६  
 तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा ।  
 सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ७  
 तत एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु ।  
 क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान् ॥ ८  
 द्वितीयेऽहि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत् ।  
 आवाहनाग्रौकरणं दैवहीनं विधानतः ॥ ९  
 एकं पवित्रमेकोऽर्घं एकः पिण्डो विधीयते ।  
 उपतिष्ठतामित्येतद् देयं पश्चात्तिलोदकम् ॥ १०  
 स्वदितं विकिरेद् ब्रूयाद् विसर्गं चाभिरम्यताम् ।  
 शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ॥ ११  
 अनेन विधिना सर्वमनुभासं समाचरेत् ।  
 सूतकान्ताद् द्वितीयेऽहि शब्दां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ १२

सूतजी कहते हैं— ऋषियो ! इसके उपरान्त अब मैं उस 'एकोद्दिष्ट'<sup>२</sup> श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका वर्णन स्वयं भगवान् चक्रपाणि विष्णुने किया है। पिताकी मृत्यु हो जानेपर पुत्रोंको शौचपर्यन्त जैसा कार्य करना चाहिये, उसे सुनिये ॥ १ ॥

ब्राह्मणोंमें दस दिनके अशौचका विधान है। इसी प्रकार क्षत्रियोंमें बारह दिनका, वैश्योंमें पन्द्रह दिनका और शूद्रोंमें एक मासका अशौच लगता है। इस अशौचका विधान सगोत्रमें ही किया गया है। जिसका मुण्डन-संस्कार नहीं हुआ हो, ऐसे बच्चेका मरणाशौच एक राततक तथा इससे बड़ी अवस्थावालेका तीन राततक बतलाया गया है। इसी प्रकार जननाशौच भी सर्वदा सभी वर्णोंके लिये होता है। मरणाशौचमें अस्थिसंचयनके उपरान्त (परिवारवालोंका) अङ्गस्पर्श करनेका विधान है। प्रेतात्माके लिये बारह दिनोंतक पिण्डदान करना चाहिये; क्योंकि वे पिण्ड उस प्रेतके लिये पाथेय (मार्गका कलेवा) बतलाये गये हैं, अतः अतिशय सुखदायी होते हैं। इसी कारण वह प्रेतात्मा बारह दिनोंतक प्रेतपुर (यमपुरी)-को नहीं ले जाया जाता। वह बारह दिनोंतक अपने गृह, पुत्र और पत्नीको देखता रहता है। इसलिये उसके समस्त दाहोंकी शान्ति तथा मार्गकी थकावटका विनाश करनेके निमित्त दस राततक आकाशमें (पीपलके वृक्षमें बँधा हुआ) जलघट रखना चाहिये। तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि अन्य वर्णवालोंको भी अपने-अपने सूतककी समाप्तिपर (विषम-संख्यक) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। पुनः दूसरे अर्थात् बारहवें दिन पूर्ववत् विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्धका समारम्भ करे। इसमें आवाहन, अग्निमें पिण्डदान तथा विश्वेदेवोंका पूजन निषिद्ध है। इस श्राद्धमें एक ही पवित्रक, एक ही अर्घ्य और एक ही पिण्डका विधान है। इसके पश्चात् 'उपतिष्ठताम्' इस शब्दका उच्चारण करके तिलसहित जल प्रदान करे और 'स्वदितम्०' इस सम्पूर्ण मन्त्रको बोलकर अन्नको पृथ्वीपर बिखेर दे तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहे। इस प्रकार वेदज्ञ पुत्रको अपने पिताका शेष श्राद्ध-कार्यं पूर्ववत् करना चाहिये। इसी विधिसे प्रतिमास (पिताकी मृत्यु-तिथिपर) सारा कार्य सम्पादित करना चाहिये। सूतक समाप्त होनेके पश्चात् दूसरे दिन

१. 'कहीं-कहीं द्वादशाहेन नीयते' पाठ भी है। वहाँ १२ दिनोंमें यमपुरी या पितृपुर ले जाया जाता है, ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

२. पिता आदि केवल एक व्यक्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाला श्राद्ध 'एकोद्दिष्ट' है।

काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम्।  
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः ॥ १३  
वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत देया च कपिला शुभा।  
उदकुम्भश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यसमन्वितः ॥ १४  
यावदब्दं नरश्रेष्ठ सतिलोदकपूर्वकम्।  
ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ १५  
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत्।  
वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ॥ १६  
सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत्।  
पितृनेवासयेत् तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत् ॥ १७  
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम्।  
अर्धार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ १८  
तद्वत् संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तथा।  
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यं तु विभजेत् तथा ॥ १९  
चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतो भवेत्।  
ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः ॥ २०  
अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम्।  
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्न दीयते ॥ २१  
पितृष्वेव तु दातव्यं तत्पिण्डो येषु संस्थितः।  
ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु ॥ २२  
त्रिपिण्डमाचरेच्छाद्धमेकोद्दिष्टे मृतेऽहनि।  
एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ॥ २३  
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः।  
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः ॥ २४  
सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत्।  
प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥ २५

काञ्चनपुरुष (सोनेकी प्रतिमा) और फल-वस्त्रसे समन्वित विलक्षण शय्याका दान करना चाहिये। उसी समय अनेकविध वस्त्राभूषणोंसे द्विज-दम्पतीका पूजन करे। तत्पश्चात् वृषोत्सर्ग (साँड़ छोड़ने)-का काम सम्पन्न करे। उस समय एक सुन्दर कपिला गौका दान करे। नरश्रेष्ठ! पुनः अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे युक्त एक जलपात्र, जो तिल और जलसे परिपूर्ण हो, दान करे। इस प्रकारके जलपात्रका दान वर्षपर्यन्त करना चाहिये। इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध किया जाता है। सपिण्डीकरण श्राद्धके पश्चात् प्रेतात्मा पार्वणश्राद्धका भागी हो जाता है तथा पूर्वकथित आभ्युदयिक आदि वृद्धि श्राद्धोंमें भाग पानेके योग्य एवं गृहस्थ हो जाता है ॥ २—१६ ॥

सपिण्डीकरण श्राद्धमें सर्वप्रथम विश्वेदेवोंको नियुक्त करे। तत्पश्चात् पितरोंको स्थान दे और प्रेतका स्थान उनसे अलग निश्चित करे। फिर अर्ध्य देनेके लिये चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार पात्र तैयार करे और प्रेतपात्रके जलसे पितृपात्रोंको सिक्त कर दे। (अर्थात् प्रेतपात्रके जलको तीन भागमें विभक्त करके उन्हें पितृपात्रोंमें डाल दे।) इसी प्रकार पिण्डदाता चार पिण्डोंका निर्माण करके उन्हें संकल्पपूर्वक (पितरों और प्रेतके स्थानोंपर पृथक्-पृथक्) रख दे। फिर 'ये समानाः०' (वाजस० १९। ४५-४६) — इन दो मन्त्रोंद्वारा अन्तके (चौथे प्रेतके) पिण्डको (स्वर्णशलाका या कुशसे) तीन भागोंमें विभक्त कर दे (और एक-एक भागको क्रमशः पितरोंके पिण्डोंमें मिला दे)। इसके पश्चात् उस चौथे पिण्डका कहीं भी कोई उपयोग नहीं रह जाता। इसके बाद वह प्रेतात्मा सब ओरसे संतुष्ट होकर पितृरूपमें परिवर्तित हो जाता है और 'अग्निष्वात्' आदि देवपितरोंके मध्य उत्तम एवं अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। इसी कारण सपिण्डीकरणके पश्चात् उसे कुछ नहीं दिया जाता। वह प्रेतात्मा जिन पितरोंके बीच स्थित है, उसके पिण्डके तीनों भागोंको उन्हीं पितरोंके पिण्डोंमें मिला देना चाहिये। तत्पश्चात् संक्रान्ति अथवा ग्रहण आदि पर्वोंके समय त्रिपिण्ड श्राद्ध ही करना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्धको प्रेतात्माकी मृत्युके दिन करनेका विधान है। जो श्राद्धकर्ता पिताकी मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग कर (केवल) अन्य श्राद्धोंको करता है, वह सदैव पितृघाती तथा माता और भाईका विनाशक हो जाता है। पिताकी क्षयाहतिथिपर पार्वण श्राद्ध करनेवाला मानव अधम-से-अधम गतिको प्राप्त होता है। चूँकि प्रेतोंसे सम्बन्धित हो जानेसे पितृगण व्याकुल हो जाते हैं, इसलिये प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये।

यावदब्दं तु यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः।  
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ २६

आमश्राद्धं यदा कुर्याद् विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा।  
तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥ २७

त्रिभिः सपिण्डीकरणे अशेषत्रितये पिता।  
यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात्॥ २८

मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात्।

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।  
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्डयं साप्तपौरुषम्॥ २९

जो मनुष्य मत्सररहित होकर वर्षपर्यन्त प्रेतके निमित्त अन्न आदि पदार्थोंसे युक्त जलपात्र दान करता रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। विधियोंका ज्ञाता श्राद्धकर्ता जब आमश्राद्ध (जिसमें ब्राह्मणोंको भोजन न कराकर कच्चा अन्न दिया जाता है) करे तो विधिपूर्वक अग्निकरण करे और उसी समय पिण्डदान भी करे। जब पिता सपिण्डीकरण श्राद्धमें अपने पिता, पितामह, प्रपितामहके साथ सम्बन्ध प्राप्त कर लेता है, तब वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर भी वह कुशके मार्जनसे लेपभागी हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ और पञ्चमसहित तीन पितर लेपभागी और पिता आदि तीन पिण्डभागी हैं। उनमें पिण्डदाता सातवें संतान है। इस प्रकार सात पीढ़ीतक सपिण्डता मानी जाती है॥ १७—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सपिण्डीकरणकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सपिण्डीकरण नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८॥

## उत्त्रीसवाँ अध्याय

श्राद्धोंमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्यकी प्रासिका विवरण

ऋषय ऊचुः

कथं कव्यानि देयानि हव्यानि च जनैरिह।  
गच्छन्ति पितृलोकस्थान् प्रापकः कोऽत्र गद्यते॥ १

यदि मर्त्यो द्विजो भुद्गते हूयते यदि वानले।  
शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद् भुज्यते कथम्॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! मनुष्योंको (पितरोंके निमित्त) हव्य और कव्य किस प्रकार देना चाहिये? इस मृत्युलोकमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्य पितृलोकमें स्थित पितरोंके पास कैसे पहुँच जाते हैं? यहाँ उनको पहुँचानेवाला कौन कहा गया है? यदि मृत्युलोकवासी ब्राह्मण उन्हें खा जाता है अथवा अग्निमें उनकी आहुति दे दी जाती है तो अपने कर्मानुसार शुभ एवं अशुभ योनियोंमें गये हुए प्रेतोंद्वारा उस पदार्थका उपभोग कैसे किया जाता है?॥ १-२॥

सूत उवाच

वसून् वदन्ति च पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।  
प्रपितामहांस्तथादित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ ३  
नाम गोत्रं पितृणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः।  
श्राद्धस्य मन्त्राः श्रद्धा च उपयोज्यातिभक्तिः ॥ ४  
अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः।  
नामगोत्रकालदेशा भवान्तरगतानपि ॥ ५  
प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान्।  
देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः ॥ ६  
तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति।  
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् ॥ ७  
श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्युपतिष्ठति।  
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् ॥ ८  
दनुजत्वे तथा माया प्रेतत्वे रुधिरोदकम्।  
मनुष्यत्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसं भवेत् ॥ ९  
रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिः।  
दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यमेव च ॥ १०  
श्रद्धापुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः।  
आयुः पुत्रान् धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ११  
राज्यं चैव प्रयच्छन्ति प्रीताः पितृगणा नृणाम्।  
श्रूयते च पुरा मोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः।  
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैर्गता विष्णोः परं पदम् ॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पितरोंको वसुगण, पितामहोंको रुद्रगण तथा प्रपितामहोंको आदित्यगण कहा जाता है—ऐसी वैदिकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र (उनके निमित्त प्रदान किये गये) हव्य-कव्यको उनके पास पहुँचानेवाले हैं। अतिशय भक्तिपूर्वक उच्चरित श्राद्धके मन्त्र भी कारण हैं एवं श्रद्धाके उपयोग भी हेतु है। अग्निष्वात्त आदि पितरोंके आधिपत्य-पदपर स्थित हैं। उन देव-पितरोंके समक्ष जो खाद्य पदार्थ पितरोंका नाम, गोत्र, काल और देशका उच्चारण करके श्रद्धासे अर्पित किया जाता है, वह पितृगणोंको यदि वे जन्मान्तरमें भी गये हुए हों तो भी उन्हें तृप्त कर देता है। वह उस समय उस योनिके लिये उपयुक्त आहारके रूपमें परिणत हो जाता है। यदि शुभ कर्मोंके प्रभावसे पिता देवयोनिमें उत्पन्न हो गये हैं तो उनके उद्देश्यसे दिया गया अन्न अमृत होकर देवयोनिमें भी उन्हें प्राप्त होता है। वह श्राद्धान्न दैत्ययोनिमें भोगरूपमें और पशुयोनिमें तृणरूपमें बदल जाता है। सर्पयोनिमें वह वायुरूपसे सर्पके निकट पहुँचता है। यक्ष-योनिमें वह पीनेवाला पदार्थ तथा राक्षसयोनिमें मांस हो जाता है। दानवयोनिमें मायारूपमें, प्रेतयोनिमें रुधिर और जलके रूपमें तथा मानवयोनिमें नाना प्रकारके भोग-रसोंसे युक्त अन्न-पानादिके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। रमण करनेकी शक्ति, सुन्दरी स्त्रियाँ, भोजन करनेके पदार्थ, भोजन पचानेकी शक्ति, प्रचुर सम्पत्तिके साथ-साथ दान देनेकी निष्ठा, सुन्दर रूप और स्वास्थ्य—ये सभी श्रद्धारूपी वृक्षके पुष्प बतलाये गये हैं और ब्रह्मप्राप्ति उसका फल है। पितृगण प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, अनेक पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं। सुना जाता है कि कौशिकके पुत्र पूर्वकालमें (श्राद्धके प्रभावसे व्याध, मृग, चक्रवाक आदि योनियोंमें) पाँच बार जन्म लेनेके पश्चात् मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपद वैकुण्ठलोकको चले गये थे ॥ ३—१२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे फलानुगमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें फलानुगमन नामक उत्तीर्णवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

## बीसवाँ अध्याय

महर्षि कौशिकके पुत्रोंका वृत्तान्त तथा पिपीलिकाकी कथा

ऋष्य ऊचुः

**कथं कौशिकदायादाः प्रासास्ते योगमुत्तमम्।  
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैः कथं कर्मक्षयो भवेत्॥ १**

सूत उचाच

कौशिको नाम धर्मात्मा कुरुक्षेत्रे महानृषिः ।  
नामतः कर्मतस्तस्य सुतान् सम निबोधत ॥ २  
स्वसृपः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च ।  
वागदुष्टः पितृवर्ती च गर्गशिष्यास्तदाभवन् ॥ ३  
पितर्युपरते तेषामभूद् दुर्धिक्षमुल्बणम् ।  
अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयंकरी ॥ ४  
गर्गादेशाद् वने दोग्धीं रक्षन्तस्ते तपोधनाः ।  
खादामः कपिलामेतां वयं क्षुत्पीडिता भृशम् ॥ ५  
इति चिन्तयतां पापं लघुः प्राह तदानुजः ।  
यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धस्तपेण योज्यताम् ॥ ६  
श्राद्धे नियोज्यमानेयं पापात् त्रास्यति नो ध्वुम् ।  
एवं कुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदाग्रजैः ॥ ७  
चक्रे समाहितः श्राद्धमुपयुज्य च तां पुनः ।  
द्वौ दैवे भ्रातरौ कृत्वा पित्रे त्रीनप्यनुक्रमात् ॥ ८  
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु ।  
चकार मन्त्रवच्छाद्धं स्मरन् पितृपरायणः ॥ ९  
विना गवा वत्सकोऽपि गुरवे विनिवेदितः ।  
व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १०  
एवं सा भक्षिता धेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः ।  
वैदिकं बलमाश्रित्य कूरे कर्मणि निर्भयाः ॥ ११  
ततः कालावकृष्टास्ते व्याधा दाशपुरेऽभवन् ।  
जातिस्मरत्वं प्रासास्ते पितृभावेन भाविताः ॥ १२  
यत् कृतं क्रूरकर्मणि श्राद्धस्तपेण तैस्तदा ।  
तेन ते भवने जाता व्याधानां क्रूरकर्मिणाम् ॥ १३

ऋषियोने पूछा—सूतजी ! महर्षि कौशिकके\* वे पुत्र किस प्रकार उत्तम योगको प्राप्त हुए तथा पाँच ही बार जन्म ग्रहण करनेसे उनके अशुभ कर्मोंका विनाश कैसे हुआ ? ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा महर्षि थे । उनके सात पुत्र थे । (उन पुत्रोंके वृत्तान्त) नाम एवं कर्मानुसार बतला रहा हूँ, सुनिये । उनके स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वागदुष्ट और पितृवर्ती—ये नाम थे । पिताकी मृत्युके पश्चात् वे सभी महर्षि गर्गके शिष्य हुए । उस समय समस्त लोकोंको भयभीत करनेवाली महती अनावृष्टि हुई, जिसके कारण भीषण अकाल पड़ गया । इसी बीच वे सभी तपस्वी अपने गुरु गर्गचार्यकी आज्ञासे उनकी सेवामें लग गये । वहाँ वनमें वे सभी भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो गये । जब क्षुधा-शान्तिका कोई अन्य उपाय न सूझा, तब छोटे भाई पितृवर्तीने श्राद्ध-कर्म करनेकी सम्मति दी । बड़े भाइयोंद्वारा ‘अच्छा, ऐसा ही करो’—ऐसी आज्ञा पाकर पितृवर्तीने समाहित-चित्त होकर श्राद्धका उपक्रम आरम्भ किया । उस समय उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देव-कार्यमें, तीनको पितृकार्यमें और एकको अतिथिरूपमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बन गया । इस प्रकार पितृपरायण पितृवर्तीने पितरोंका स्मरण करते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धकार्य सम्पन्न किया । कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर (मन्दसौर) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु पितृ-स्त्रेह (श्राद्धकृत्य)-से भावित होनेके कारण उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा । पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणाम-स्वरूप वे क्रूरकर्मी बहेलियोंके घरमें पैदा तो हुए

\* कौशिक नामके प्राचीन समयमें १०—१२ व्यक्ति हुए हैं, जिनमें विश्वामित्र सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं । पर ये उनसे भिन्न हैं । विश्वामित्रका सम्बन्ध बिहारसे लेकर कञ्जीजतक रहा है, पर ये कुरुक्षेत्रवासी हैं । यह कथा पद्मपुराण १ । १०, हरिवंश १ । २१—२७ आदिमें भी है । और इसका संकेत गरुडपु १ । २१० । २०—२१ आदि बीसों स्थलोंपर है ।

पितृणां चैव माहात्म्याज्ञाता जातिस्मरास्तु ते ।  
ते तु वैराग्ययोगेन आस्थायानशनं पुनः ॥ १४  
जातिस्मराः सम जाता मृगाः कालञ्ज्रे गिरौ ।  
नीलकण्ठस्य पुरतः पितृभावानुभाविताः ॥ १५  
तत्रापि ज्ञानवैराग्यात् प्राणानुत्सृज्य धर्मतः ।  
लोकैरवेक्ष्यमाणास्ते तीर्थन्तेऽनशनेन तु ॥ १६  
मानसे चक्रवाकास्ते सञ्चाताः सम योगिनः ।  
नामतः कर्मतः सर्वाञ्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १७  
सुमनाः कुमुदः शुद्धश्छिद्रदर्शी सुनेत्रकः ।  
सुनेत्रश्चांशुमांश्चैव समैते योगपारगाः ॥ १८  
योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभ्रमुश्चाल्पचेतनाः ।  
दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमुद्याने स्त्रीभिरन्वितम् ॥ १९  
क्रीडन्तं विविधैर्भावैर्महाबलपराक्रमम् ।  
पाञ्चालान्वयसम्भूतं प्रभूतबलवाहनम् ॥ २०  
राज्यकामोऽभवच्यैकस्तेषां मध्ये जलौकसाम् ।  
पितृवर्ती च यो विप्रः श्राद्धकृत् पितृवत्सलः ॥ २१  
अपरौ मन्त्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ ।  
मन्त्रित्वे चक्रतुश्चेच्छामस्मिन् मत्ये द्विजोत्तमाः ॥ २२  
तन्मध्ये ये तु निष्कामास्ते बभूवुद्धिजोत्तमाः ।  
विभ्राजपुत्रस्त्वेकोऽभूद् ब्रह्मदत्त इति स्मृतः ॥ २३  
मन्त्रिपुत्रौ तथा चोभौ कण्डरीकसुबालकौ ।  
ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तः सन् पुरोहितविपश्चिता ॥ २४  
पाञ्चालराजो विक्रान्तः सर्वशास्त्रविशारदः ।  
योगिवत् सर्वजन्तूनां रुतवेत्ताभवत् तदा ॥ २५  
तस्य राज्ञोऽभवद् भार्या देवलस्यात्मजा शुभा ।  
संनतिर्नाम विख्याता कपिला याभवत् पुरा ॥ २६  
पितृकार्ये नियुक्तत्वादभवद् ब्रह्मवादिनी ।  
तया चकार सहितः स राज्यं राजनन्दनः ॥ २७  
कदाचिदुद्यानगतस्तया सह स पार्थिवः ।  
दर्दर्श कीटमिथुनमनङ्गकलहाकुलम् ॥ २८  
पिपीलिकामनुनयन् परितः कीटकामुकः ।  
पञ्चबाणाभितसाङ्गः सगद्गदमुवाच ह ॥ २९

परंतु पितरोंके ही माहात्म्यसे वे सभी जातिस्मर (पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञाता) बने ही रहे । पुनः श्राद्ध-कर्मके फलसे वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन सभीने अनशन करके अपने-अपने उस शरीरका त्याग कर दिया । तदनन्तर वे सातों कालञ्ज्रे पर्वतपर भगवान् नीलकण्ठके समक्ष मृग-योनिमें उत्पन्न हुए । वहाँ भी पितरोंके स्थेहसे अनुभावित होनेके कारण वे जातिस्मर बने ही रहे । उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन लोगोंने तीर्थ-स्थानमें अनशन करके लोगोंके देखते-देखते धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया । तत्पश्चात् उन सातों योगाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें जन्म धारण किया । द्विजवरो ! अब आपलोग नाम एवं कर्मानुसार उन सभीका वृत्तान्त श्रवण कीजिये । इस योनिमें उनके नाम हैं—सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्र, सुनेत्र और अंशुमान् । ये सातों योगके पारदर्शी थे । इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट हो गये और इधर-उधर भ्रमण करने लगे । उसी समय एक पाञ्चालवंशी नरेश, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न था तथा जिसके पास अधिक-से-अधिक सेना और वाहन थे, अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ अनेकविध हाव-भावोंसे क्रीडा कर रहा था । उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्य-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा उत्पन्न हो गयी । इसी प्रकार दूसरे दोनोंने राजाके दो मन्त्रियोंको प्रचुर सेना और वाहनोंसे युक्त देखकर इस मृत्युलोकमें मन्त्र-पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की । द्विजवरो ! उनमें जो चार निष्काम थे, वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए । उन तीनोंमेंसे पहला राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हुआ तथा अन्य दो कण्डरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए । (राजा विभ्राजकी मृत्युके उपरान्त) विद्वान् पुरोहितने ब्रह्मदत्तको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया । वह पाञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था । देवलकी सुन्दरी कन्या, जो संनति नामसे विख्यात थी, राजा ब्रह्मदत्तकी पत्नी हुई । वह ब्रह्मवादिनी थी । उस पत्नीके साथ रहकर राजकुमार ब्रह्मदत्त राज्य-भार संभालने लगा ॥ २—२७ ॥

एक बार राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया । वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चीटा-चीटी)-को देखा । वह कीट, जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो उठा था, चारों ओरसे चीटीसे अनुनय-विनय करता हुआ गद्गद वाणीमें बोला—

\* इसका कहीं अणुह तथा कहीं नीप नाम भी आया है ।

न त्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित् ।  
 मध्यक्षामातिजघना बृहद्वक्षोऽभिगामिनी ॥ ३०  
 सुवर्णवर्णा सुश्रोणी मञ्जूका चारुहासिनी ।  
 सुलक्ष्यनेत्ररसना गुडशर्करवत्सला ॥ ३१  
 भोक्ष्यसे मयि भुद्वते त्वं स्नासि स्नाते तथा मयि ।  
 प्रोष्ठिते सति दीना त्वं कुद्वेऽपि भयचञ्चला ॥ ३२  
 किमर्थं वद कल्याणि सरोषवदना स्थिता ।  
 सा तमाह सकोपा तु किमालपसि मां शठ ॥ ३३  
 त्वया मोदकचूर्णं तु मां विहाय विनेष्यता ।  
 प्रदत्तं समतिक्रान्ते दिनेऽन्यस्याः समन्मथ ॥ ३४

पिपीलिक उवाच

त्वत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि ।  
 तदेकमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि भामिनि ॥ ३५  
 नैतदेवं करिष्यामि पुनः क्वापीह सुव्रते ।  
 स्पृशामि पादौ सत्येन प्रसीद प्रणतस्य मे ॥ ३६

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा सा प्रसन्नाभवत् ततः ।  
 आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका ॥ ३७  
 ब्रह्मदत्तोऽप्यशेषं तं ज्ञात्वा विस्मयमागमत् ।  
 सर्वसत्त्वरुतज्ञत्वात् प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ३८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पके श्राद्धमाहात्म्यमें पिपीलिकावहास नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

'प्रिये ! इस जगत्में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है । तुम्हारा कटिप्रदेश पतला और जंघे मोटे हैं, तुम स्तनोंके भारी भारसे विनम्र होकर चलनेवाली, स्वर्णके समान गौरवर्णा, सुन्दर कमरवाली, मृदुभाषणी, मनोहर हास्यसे युक्त, भलीभाँति लक्ष्यको भेदन करनेवाले नेत्रों और जीभसे समन्वित तथा गुड़ और शक्करकी प्रेमी हो । तुम मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात् भोजन करती हो तथा मेरे स्नान कर लेनेपर स्नान करती हो । इसी प्रकार मेरे परदेश चले जानेपर तुम दीन हो जाती हो और कुद्ध होनेपर भयभीत हो उठती हो । कल्याण ! बतलाओ तो सही, तुम किस कारण क्रोधसे मुँह फुलाये बैठी हो ।' तब क्रोधसे भरी हुई चींटी उस कीटसे बोली—'शठ ! तुम क्या मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो ? अरे धूर्त ! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लङ्घूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है ?' ॥ २८—३४ ॥

चींटा बोला—वरवर्णिनि ! तुम्हारे सदृश रूप-रंगवाली होनेके कारण मैंने भूलसे दूसरी चींटीको लङ्घू दे दिया है, अतः भामिनि ! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो । सुनते ! मैं पुनः कभी भी इस प्रकारका कार्य नहीं करूँगा । मैं सत्यकी दुहाई देकर तुम्हारे चरण छूता हूँ तुम मुझ विनीतपर प्रसन्न हो जाओ ॥ ३५—३६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार उस चींटेका कथन सुनकर वह चींटी प्रसन्न हो गयी । इधर, चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी कृपासे समस्त प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता होनेके कारण ब्रह्मदत्त भी उस सारे वृत्तान्तको जानकर विस्मयविमुग्ध हो गये ॥ ३७—३८ ॥

## इककीसवाँ अध्याय

ब्रह्मदत्तका वृत्तान्त तथा चार चक्रवाकोंकी गतिका वर्णन

ऋष्य ऊचुः

कथं सत्त्वरुतज्ञोऽभूद् ब्रह्मदत्तो धरातले ।  
 तच्चाभवत् कस्य कुले चक्रवाकचतुष्टयम् ॥ १

सूत उवाच

तस्मिन्नेव पुरे जातास्ते च चक्राह्यास्तदा ।  
 वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मराः पुरा ॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! ब्रह्मदत्त इस भूतलपर जन्म लेकर समस्त प्राणियोंकी बोलीके ज्ञाता कैसे हो गये ? तथा वे चारों चक्रवाक किसके कुलमें उत्पन्न हुए ? ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! वे चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे । उस जन्ममें भी वे ब्राह्मण पूर्ववत् जातिस्मर बने रहे ।

धृतिमांस्तत्त्वदर्शीं च विद्याचण्डस्तपोत्सुकः ।  
नामतः कर्मतश्चैते सुदरिद्रस्य ते सुताः ॥ ३  
तपसे बुद्धिरभवत् तदा तेषां द्विजन्मनाम् ।  
यास्यामः परमां सिद्धिमित्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः ॥ ४  
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः ।  
उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः ॥ ५  
अधर्म एष इति वः पिता तानभ्यवारयत् ।  
वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनः ॥ ६  
को नु धर्मोऽत्र भविता मत्यागाद् गतिरेव वा ।  
ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिस्तव तात वदस्व तत् ॥ ७  
वित्तमेतत् पुरो राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम् ।  
धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव ॥ ८  
ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु

दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।

कालंजरे सप्त च चक्रवाका

ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः ॥ ९

इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः ।  
वृद्धोऽपि राजभवनं जगामात्मार्थसिद्धये ॥ १०

अणुहो नाम वैभ्राजः पाञ्चालाधिपतिः पुरा ।  
पुत्रार्थी देवदेवेशं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ११

आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः ।  
ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य जनार्दनः ॥ १२

वरं वृणीष्व भद्रं ते हृदयेनेष्पितं नृप ।  
एवमुक्तस्तु देवेन वब्रे स वरमुत्तमम् ॥ १३

पुत्रं मे देहि देवेश महाबलपराक्रमम् ।  
पारगं सर्वशास्त्राणां धार्मिकं योगिनां परम् ॥ १४

सर्वसत्त्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम् ।  
एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः ॥ १५

पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ।  
ततः स तस्य पुत्रोऽभूद् ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् ॥ १६

(उस समय उनके) धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड और तपोत्सुक—ये चार नाम थे । वे कर्मानुसार एक अत्यन्त सुदरिद्र (उस ब्राह्मणका नाम भी सुदरिद्र था) ब्राह्मणके पुत्र थे । बचपनमें ही इन ब्राह्मणोंकी बुद्धि तपस्याकी ओर प्रवृत्त हो गयी । तब ये द्विजश्रेष्ठ पितासे प्रार्थना करते हुए बोले—‘पिताजी ! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं ।’ उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—‘पुत्रो ! यह कैसी बात कह रहे हो ? मुझ दरिद्र बूढ़े पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो, भला मेरा परित्याग कर देनेसे तुमलोगोंको कौन-सा धर्म प्राप्त होगा तथा तुम्हारी क्या गति होगी ? यह तो महान् अधर्म है ।’ ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया । यह सुनकर उन पुत्रोंने कहा—‘तात ! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर लिया है । इसके अतिरिक्त आपको और क्या चाहिये, सो बतलाइये । यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर (आगे बताये जानेवाले श्लोकका) पाठ कीजियेगा तो वे आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे । (उस श्लोकका अर्थ यों है—)‘जो कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मण, दाशपुर (मंदसौर)-में व्याध, कालञ्जर पर्वतपर मृग और मानसरोवरमें सात चक्रवाक थे, वे सिद्ध (होकर) यहाँ निवास करते हैं ।’ पितासे ऐसा कहकर वे सभी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये । इधर वृद्ध सुदरिद्र भी अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये राजभवनकी ओर चल पड़े ॥ २—१० ॥

(अब ब्रह्मदत्तकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं—)  
पूर्वकालमें पञ्चाल देशके एक अणुह नामक नरेश हो गये हैं, जो विभ्राटके पुत्र थे । वे पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे कठोर व्रतमें तत्पर होकर सामर्थ्यशाली एवं सर्वव्यापक देवदेवेश्वर नारायण श्रीहरिकी आराधना करने लगे । तत्पश्चात् अधिक काल व्यतीत होनेपर भगवान् जनार्दन उनकी आराधनासे प्रसन्न हुए (और उनके समक्ष प्रकट होकर बोले—) ‘राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोऽभिलिष्ट वरदान माँग लो ।’ भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर राजाने उत्तम वरकी याचना करते हुए कहा—‘देवेश ! मुझे ऐसा पुत्र प्रदान कीजिये, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, धार्मिक, श्रेष्ठ योगी, सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता और योगाभ्यासी हो । भगवन् ! मुझे ऐसा ही औरस पुत्र दीजिये ।’ यह सुनकर विश्वात्मा परमेश्वर राजासे ‘ऐसा ही हो’—यों कहकर समस्त देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर समयानुसार वहीं प्रतापी ब्रह्मदत्त उस राजा अणुहका पुत्र हुआ, जो आगे

सर्वसत्त्वानुकम्पी च सर्वसत्त्वबलाधिकः ।  
सर्वसत्त्वरुतज्जश्श सर्वसत्त्वेश्वरेश्वरः ॥ १७

अहसत् तेन योगात्मा स पिपीलिकरागतः ।  
यत्र तत्कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम् ॥ १८

ततः सा संनतिर्दद्वा तं हसन्तं सुविस्मिता ।  
किमप्याशङ्क्य मनसा तमपृच्छन्नरेश्वरम् ॥ १९

संनतिरुवाच

अकस्मादतिहासस्ते किमर्थमभवत्रूप ।  
हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया ॥ २०

सूत उवाच

अवदद् राजपुत्रोऽपि स पिपीलिकभाषितम् ।  
रागवारिभः समुत्पन्नमेतद्वास्यं वरानने ॥ २१

न चान्यत्कारणं किंचिद्वास्यहेतौ शुचिस्मिते ।  
न सामन्यत् तदा देवी प्राहालीकमिदं वचः ॥ २२

अहमेवाद्य हसिता न जीविष्ये त्वयाधुना ।  
कथं पिपीलिकालापं मर्त्यो वेत्ति विना सुरान् ॥ २३

तस्मात् त्वयाहमेवेह हसिता किमतः परम् ।  
ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तप्युरो हरेः ॥ २४

आस्थाय नियमं तस्थौ सप्तरात्रमकल्प्यः ।  
स्वप्रे प्राह हृषीकेशः प्रभाते पर्यटन् पुरम् ॥ २५

वृद्धद्विजो यस्तद्वाक्यात् सर्वं ज्ञास्यस्यशेषतः ।  
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः प्रभातेऽथ नृपः पुरात् ॥ २६

निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः ।  
गदन्तं विप्रमायान्तं तं वृद्धं संददर्श ह ॥ २७

ब्राह्मण उवाच

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु  
दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।

चलकर सम्पूर्ण जीवोंपर दयालु, समस्त प्राणियोंमें अमित बलसम्पन्न, सम्पूर्ण प्राणियोंकी भाषाका ज्ञाता और समस्त प्राणियोंके राजाधिराज-सम्प्राद् हुआ ॥ ११—१७ ॥

तत्पश्चात् जहाँ वे कीट-दम्पति (चीटे-चींटी) बातें करते हुए स्थित थे, वहाँ पहुँचनेपर चींटेकी कामचेष्टाको देखकर योगात्मा ब्रह्मदत्तको हँसी आ गयी। राजाको हँसते देखकर महारानी संनति आश्वर्यचकित हो उठी और मनमें किसी भावी अनर्थकी आशङ्का करके नरेश्वर ब्रह्मदत्तसे प्रश्न कर बैठी ॥ १८—१९ ॥

संनतिने पूछा—राजन्! अकस्मात् आपका यह अदृहास किसलिये हुआ है? असमयमें आपको जो यह हँसी आयी है, इस हास्यका कारण मैं नहीं समझ पा रही हूँ ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तब राजकुमार ब्रह्मदत्तने (महारानी संनतिसे) चीटे-चींटीके उस सारे वार्तालापको सुनाते हुए कहा—‘वरानने! इनके प्रेमालापपूर्ण वचनोंको सुननेसे मुझे ऐसी हँसी आ गयी है। शुचिस्मिते! मेरी हँसीके विषयमें कोई अन्य कारण नहीं है।’ पंतु रानी संनतिने (राजाके उस कथनपर) विश्वास नहीं किया और कहा—‘राजन्! आपका यह कथन सरासर असत्य है। अभी-अभी आपने मेरे ही किसी विषयको लेकर हास्य किया है, अतः अब मैं जीवन धारण नहीं करूँगी। भला, देवताओंके अतिरिक्त मृत्युलोकनिवासी प्राणी चीटे-चींटीके वार्तालापको कैसे जान सकता है! इसलिये यहाँ आपने मेरी ही हँसी उड़ायी है। इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?’ रानीकी बात सुनकर निष्पाप राजा ब्रह्मदत्त कुछ उत्तर न दे सके। फिर इस रहस्यको जाननेकी इच्छासे वे श्रीहरिके समक्ष नियमपूर्वक आराधना करते हुए सात राततक बैठे रहे। अन्तमें भगवान् हृषीकेशने स्वप्रमें राजासे कहा—‘राजन्! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके उन वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।’ यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रातःकाल जब राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी और दोनों मन्त्रियोंके साथ नगरसे निकल रहे थे, उसी समय उन्होंने अपने समक्ष आते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको देखा, जो इस प्रकार कह रहा था ॥ २१—२७ ॥

ब्राह्मण कह रहा था—‘जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें, दाशपुर (मंदसौर)-में व्याधके रूपमें,

कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका  
ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः ॥ २८  
सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ताभ्यां स पपात शुचा ततः ।  
जातिस्मरत्वमगमत् तौ च मन्त्रिवरावुभौ ॥ २९  
कामशास्त्रप्रणेता च बाध्रव्यस्तु सुबालकः ।  
पाञ्चाल इति लोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित् ॥ ३०  
कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः ।  
भूत्वा जातिस्मरौ शोकात् पतितावग्रतस्तदा ॥ ३१  
हा वयं योगविभृष्टाः कामतः कर्मबन्धनाः ।  
एवं विलम्बं बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः ॥ ३२  
विस्मयाच्छाद्माहात्म्यमभिनन्द्य पुनः पुनः ।  
ततस्तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतग्रामसंयुतम् ॥ ३३  
विसृज्य ब्राह्मणं तं च वृद्धं धनमुदान्वितम् ।  
आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम् ॥ ३४  
विष्वक्सेनाभिधानं तु राजा राज्येऽभ्यवेचयत् ।  
मानसे मिलिताः सर्वे ततस्ते योगिनो वराः ॥ ३५  
ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन् पितृसत्ता विमत्सराः ।  
संनतिश्चाभवद् भृष्टा मयैतत् किल दर्शितम् ॥ ३६  
राज्यत्यागफलं सर्वं यदेतदभिलक्ष्यते ।  
तथेति प्राह राजा तु पुनस्तामभिनन्दयन् ॥ ३७  
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैतत् प्राप्यते फलम् ।  
ततस्ते योगमास्थाय सर्वं एव वनौकसः ॥ ३८  
ब्रह्मरन्ध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात् ।  
एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ३९  
प्रयच्छन्ति सुतान् राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः ।  
य इदं पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य च द्विजाः ॥ ४०  
द्विजेभ्यः श्रावयेद् यो वा शृणोत्यथ पठेत् वा ।  
कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४१

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे पितृमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें पितृमाहात्म्य नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

कालञ्जर—पर्वतपर मृग-योनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही (व्यक्ति अब) सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं' ॥ २८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर राजा शोकाकुल हो अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ भूतलपर गिर पड़े। उस समय उन्हें जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञातृत्व)-की प्राप्ति हो गयी। उन दोनों श्रेष्ठ मन्त्रियोंमें एक बाध्रव्य सुबालक कामशास्त्रका प्रणेता और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह संसारमें पाञ्चाल नामसे विख्यात था। दूसरा कण्डरीक भी धर्मात्मा और वेद-शास्त्रका प्रवर्तक था। वे दोनों भी उस समय राजाके अग्रभागमें शोकाविष्ट हो धराशायी हो गये और उन्हें भी जातिस्मरत्वकी प्राप्ति हुई। (उस समय वे विलाप करते हुए कहने लगे—) 'हाय! हमलोग लोलुप हो कर्मबन्धनमें फँसकर योगसे पूर्णतया भ्रष्ट हो गये।' इस तरह अनेकविध विलाप करके वे तीनों योगके पारदर्शी विद्वान् विस्मयाविष्ट हो बारंबार श्राद्धके माहात्म्यका अभिनन्दन करने लगे। तत्पश्चात् राजाने उस ब्राह्मणको अनेक गाँवोंसहित प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान की। इस प्रकार धनकी प्राप्तिसे हर्षित हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको विदाकर राजा ब्रह्मदत्तने राजलक्षणोंसे युक्त अपने विष्वक्सेन नामक औरस पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया (और स्वयं जंगलकी राह ली)। तदनन्तर ब्रह्मदत्त आदि वे सभी श्रेष्ठ योगी मत्सररहित एवं पितृभक्त होकर उस मानसरोवरमें परस्पर आ मिले। संनतिका अमर्ष गल गया और वह राजासे कहने लगी— 'राजन्! आप जो यह अभिलाषा कर रहे हैं, वह सब राज्य-त्यागका ही परिणाम है और निश्चय ही मेरे द्वारा घटित हुआ है।' राजाने 'तथेति'—ऐसा ही है कहकर उसकी बातको स्वीकार किया और पुनः उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—'यह तुम्हारी ही कृपा है, जो मुझे यह सारा फल प्राप्त हो रहा है।' तदनन्तर वे सभी वनवासी योगका आश्रय लेकर अपने तपोबलके प्रभावसे ब्रह्मरन्ध्रद्वारा प्राणत्याग करके परमपदको प्राप्त हो गये। इस प्रकार प्रसन्न हुए पितामह—पितरलोग मनुष्योंको, आयु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख, पुत्र और राज्य प्रदान करते हैं। द्विजवरो! जो मनुष्य ब्रह्मदत्तके इस पितृमाहात्म्यको ब्राह्मणोंको सुनाता है य स्वयं श्रवण करता है अथवा पढ़ता है, वह सौ करोड़ कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें प्रशंसित होता है ॥ २९—४१ ॥

## बाईसवाँ अध्याय

श्राद्धके योग्य समय, स्थान (तीर्थ) तथा कुछ विशेष नियमोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कस्मिन् काले च तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत्।  
कस्मिन् वासरभोगे तु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत्।  
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत्॥ १  
सूत उवाच

अपराह्ने तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये।  
यत्किञ्चिद् दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम्॥ २  
तीर्थानि यानि सर्वाणि पितृणां वल्लभानि च।  
नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः॥ ३  
पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्।  
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥ ४  
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः॥ ५  
एषव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां द्रजेत्।  
यजेत् वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ६  
तथा वाराणसी पुण्या पितृणां वल्लभा सदा।  
यत्राविमुक्तसांनिध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ७  
पितृणां वल्लभं तद्वत् पुण्यं च विमलेश्वरम्।  
पितृतीर्थं प्रयागं तु सर्वकामफलप्रदम्॥ ८  
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः।  
योगनिद्राशयस्तद्वत् सदा वसति केशवः॥ ९  
दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च।  
नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा॥ १०  
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुक्तमम्।  
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम्॥ ११  
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतमुसलिले हृदे।  
तीर्थं तु नैमिं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम्॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! श्राद्धकर्ताको दिनके किस भागमें श्राद्ध करना चाहिये? किस कालमें किया गया वह श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है? तथा किन-किन तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अधिक-से-अधिक फल प्रदान करता है?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अपराह्न-काल (दिनके तीसरे पहरमें प्राप्त होनेवाले) अभिजित् मुहूर्तमें तथा रोहिणीके उदयकालमें (पितरोंके निमित्त) जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। द्विजवरो! अब जो-जो तीर्थ पितरोंको परम प्रिय हैं, उन सबका नाम-निर्देशपूर्वक संक्षेपसे वर्णन कर रहा हूँ। गया नामक पितृतीर्थ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायक है, वहाँ देवदेवेश्वर भगवान् पितामह स्वयं ही विराजमान हैं। वहाँ श्राद्धमें भाग पानेकी कामनावाले पितरोंद्वारा यह गाथा गायी गयी है—‘मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे यदि एक भी पुत्र गयाकी यात्रा करेगा अथवा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर देगा या नील वृष (साँड़)-का उत्सर्ज कर देगा (तो हमारा उद्धार हो जायगा)।’ उसी प्रकार पुण्यप्रद वाराणसी नगरी सदा पितरोंको प्रिय है, जहाँ अविमुक्तके निकट किया गया श्राद्ध भुक्ति (भोग) एवं मुक्ति (मोक्ष)-रूप फल प्रदान करता है। उसी प्रकार पुण्यप्रद विमलेश्वर तीर्थ भी पितरोंके लिये परम प्रिय है। पितृतीर्थ प्रयाग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है। वहाँ माधवसमेत भगवान् वटेश्वर तथा उसी प्रकार योगनिद्रामें शयन करते हुए भगवान् केशव सदा निवास करते हैं॥ २—९॥

पुण्यमय दशाश्वमेधिक तीर्थ, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), नन्दा, ललिता तथा मङ्गलमयी मायापुरी (ऋषिकेश)—ये सभी तीर्थ भी उसी प्रकार पितरोंको प्रिय हैं। मित्रपद (तीर्थ) भी श्रेष्ठ हैं। उत्तम केदारतीर्थ और सर्वतीर्थमय एवं मङ्गलप्रद गङ्गासागरतीर्थको भी पितृप्रिय कहा गया है। उसी तरह शतद्व (सतलज) नदीके जलके अन्तर्गत कुण्डमें स्थित ब्रह्मसर तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं। नैमित्यारण्य सम्पूर्ण तीर्थोंका एकत्र फल प्रदान करनेवाला है। यह

गङ्गोदभेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः ।  
 तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत् ॥ १३  
 यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजो हरः ।  
 नैमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत् पुरा ॥ १४  
 तदेतत्रैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ।  
 देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ॥ १५  
 यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं ब्रजेत् ।  
 कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥ १६  
 यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः ।  
 तीर्थमिक्षुमती नाम पितृणां वल्लभं सदा ॥ १७  
 सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा ।  
 कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥ १८  
 तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता ।  
 इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ॥ १९  
 यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृष्टद्वती ।  
 नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ॥ २०  
 पितृणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः ।  
 जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गो हि लक्ष्यते ॥ २१  
 अद्यापि पितृतीर्थं तत् सर्वकामफलप्रदम् ।  
 नीलकुण्डमिति ख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥ २२  
 तथा रुद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च ।  
 मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती ॥ २३  
 पूर्वमित्रपदं तद्वद् वैद्यनाथं महाफलम् ।  
 क्षिप्रा नदी महाकालस्तथा कालञ्जरं शुभम् ॥ २४  
 वंशोदभेदं हरोदभेदं गङ्गोदभेदं महाफलम् ।  
 भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च ॥ २५  
 गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः ।  
 एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहरणि च ॥ २६  
 स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतां नृणाम् ।  
 ओंकारं पितृतीर्थं च कावेरी कपिलोदकम् ॥ २७

पितरोंको (बहुत) प्रिय है। यहीं गोमती नदीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है। यहाँ त्रिशूलधारी महादेव और सनातन यज्ञवराह विराजते हैं। यहाँ अष्टादश भुजाधारी शंकरकी प्रतिमा है। यहाँका काञ्चनद्वार प्रसिद्ध है। यहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुद्वारा दिये गये धर्मचक्रकी नैमि शीर्ण होकर गिरी थी। यह सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा निषेवित नैमिषारण्य नामक तीर्थ है। यहाँ देवाधिदेव भगवान् वाराहका भी दर्शन होता है। जो वहाँकी यात्रा करता है, वह पवित्रात्मा होकर नारायणपदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण पापोंका विनाशक एवं महान् पुण्यशाली कृतशौच नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् जनार्दन नृसिंहरूपसे विराजमान रहते हैं। तीर्थभूता इक्षुमती (काली नदी) पितरोंको सदा प्रिय है। (कन्नौजके पास इस इक्षुमतीके साथ) गङ्गाजीके संगमपर पितरलोग सदा निवास करते हैं। सम्पूर्ण तीर्थोंसे युक्त कुरुक्षेत्र नामक महान् पुण्यप्रद तीर्थ है। इसी प्रकार समस्त देवताओंद्वारा नमस्कृत पुण्यसलिला सरयू, पितृ-तीर्थोंकी अधिवासिनीरूपा इरावती नदी, यमुना, देविका (देग), काली (कालीसिंध), चन्द्रभागा (चनाब), दृष्टद्वती (गगगर), पुण्यतोया वेणुमती (वेण्वा) नदी तथा सर्वश्रेष्ठा वेत्रवती (बेतवा)—ये नदियाँ पितरोंको परम प्रिय हैं। इसलिये श्राद्धके विषयमें करोड़ों गुना फलदायिनी मानी गयी हैं। द्विजवरो ! जम्बूमार्ग (भड़ोंच) नामक तीर्थ महान् पुण्यदायक एवं सम्पूर्ण मनोऽभिलषित फलोंका प्रदाता है, यह पितरोंका प्रिय तीर्थ है। वहाँसे पितॄलोक जानेका मार्ग अभी भी दिखायी पड़ता है। नीलकुण्ड तीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है ॥ १०—२२ ॥

इसी प्रकार पुण्यप्रद रुद्रसर, मानससर, मन्दाकिनी, अच्छोदा (अच्छावत), विपाशा (व्यास नदी), सरस्वती, पूर्वमित्रपद, महान् फलदायक वैद्यनाथ, शिप्रा नदी, महाकाल, मङ्गलमय कालञ्जर, वंशोद्देद, हरोद्देद, महान् फलप्रद गङ्गोद्देद, भद्रेश्वर, विष्णुपद और नर्मदाद्वार—ये सभी पितृप्रिय तीर्थ हैं। इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेसे गया तीर्थमें पिण्ड-प्रदानके तुल्य ही फल प्राप्त होता है—ऐसा महर्षियोंने कहा है। ये सभी पितृतीर्थ जब स्मरणमात्र कर लेनेसे लोगोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करते हैं, तब (वहाँ जाकर) श्राद्ध करनेवाले मनुष्योंके पापनाशकी तो बात ही क्या है। इसी तरह ओंकार पितृतीर्थ है। कावेरी, कपिलोदका,

सम्प्रेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम् ।  
 कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत् ॥ २८  
 शुक्रतीर्थं च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम् ।  
 सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम् ॥ २९  
 श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसंनिधौ ।  
 कायावरोहणं नाम तथा चर्मणवती नदी ॥ ३०  
 गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसं परम् ।  
 भैरवं भृगुतङ्गं च गौरीतीर्थमनुज्ञम् ॥ ३१  
 तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम् ।  
 तथा पापहरं नाम पुण्याथं तपती नदी ॥ ३२  
 मूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा ।  
 महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका ॥ ३३  
 तथा वेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च ।  
 महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा ॥ ३४  
 शतरुद्रा शताह्ना च तथा विश्वपदं परम् ।  
 अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ ॥ ३५  
 कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा ।  
 एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ॥ ३६  
 श्राद्धमेतेषु यद् दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम् ।  
 द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ॥ ३७  
 गोकर्णं गजकर्णं च तथा च पुरुषोत्तमः ।  
 द्वारका कृष्णतीर्थं च तथार्बुद्सरस्वती ॥ ३८  
 नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका ।  
 धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ॥ ३९  
 एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।  
 तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ॥ ४०  
 यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुमेखलायामवस्थितः ।  
 तथा मन्दोदरीतीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ॥ ४१  
 तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा ।  
 चक्रवाकं चर्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत् ॥ ४२  
 अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम् ।  
 श्रीशैलं शांकरं तीर्थं नारसिंहमतः परम् ॥ ४३  
 महेन्द्रं च तथा पुण्यमथं श्रीरङ्गसंज्ञितम् ।  
 एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम् ॥ ४४  
 दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै ।  
 तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ॥ ४५

चण्डवेगा और नर्मदाका संगम तथा अमरकण्टक—इन पितृतीर्थोंमें स्नान आदि करनेसे कुरुक्षेत्रसे सौंगुने अधिक फलकी प्राप्ति होती है। शुक्रतीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है तथा सर्वोत्तम सोमेश्वरतीर्थ स्नान, श्राद्ध, दान, हवन तथा स्वाध्याय करनेपर समस्त व्याधियोंका विनाशक, पुण्यप्रदाता और सौं करोड़ गुना फलसे भी अधिक फलदायी है। कायावरोहण (गुजरातका कारावन) नामक तीर्थ, चर्मणवती (चम्बल) नदी, गोमती, वरुणा (वरुण), उसी प्रकार औंशनस नामक उत्तम तीर्थ, भैरव, (केदारनाथके पास) भृगुतङ्ग, सर्वश्रेष्ठ गौरीतीर्थ, वैनायक नामक तीर्थ, उसके बाद भद्रेश्वरतीर्थ तथा पापहर नामक तीर्थ, पुण्यसलिला तपती नदी, मूलतापी, पयोष्णी तथा पयोष्णी-संगम, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ, अवन्तिका (उज्जैनी) तथा पुण्यतोया वेणानदी, महाशाल, महारुद्र, महालिङ्ग और मङ्गलमयी दशार्णा (धसान) नदी तो अत्यन्त ही शुभ हैं ॥ २३—३४ ॥

शतरुद्रा, शताह्ना तथा श्रेष्ठ विश्वपद, अङ्गारवाहिका, उसी प्रकार शोण और घर्घर (घाघरा) नामक दो नद, पुण्यजला कालिका नदी तथा वितस्ता (झेलम) नदी—ये पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये प्रशस्त माने गये हैं। इनमें जो श्राद्ध आदि कर्म किया जाता है, वह अनन्त फलदायक कहा गया है। द्रोणी, वाटनदी, धारानदी, क्षीरनदी, गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम-क्षेत्र, द्वारका, कृष्णतीर्थ तथा अर्बुदगिरि (आबू), सरस्वती, मणिमती नदी गिरिकर्णिका, धूतपापतीर्थ तथा दक्षिण समुद्र—इन पितृतीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है। इसके पश्चात् मेघंकर नामक तीर्थ (गुजरातमें)है, जिसकी मेखलामें शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले स्वयं जनार्दन भगवान् विष्णु स्थित हैं। इसी प्रकार मन्दोदरीतीर्थ तथा मङ्गलमयी चम्पा नदी, सामलनाथ, महाशाल नदी, चक्रवाक, चर्मकोट, महान् तीर्थ जन्मेश्वर, अर्जुन, त्रिपुर इसके बाद सिद्धेश्वर, श्रीशैल (मल्लिकार्जुन), शार्ङ्गरतीर्थ, इसके पश्चात् नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र तथा पुण्यप्रद श्रीरङ्ग नामक तीर्थ हैं। इनमें भी किया गया श्राद्ध सदा अनन्त फलदाता माना गया है तथा ये दर्शनमात्रसे ही तुरंत पापोंको हर लेते हैं। पुण्यसलिला तुङ्गभद्रा नदी तथा भीमरथी नदी,

भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुडमला नदी ।  
 नदी गोदावरी नाम त्रिसंध्या तीर्थमुत्तमम् ॥ ४६  
 तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम् ।  
 यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥ ४७  
 श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत् ।  
 स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजाः ॥ ४८  
 श्रीपर्णीं ताप्रपर्णीं च जयातीर्थमनुत्तमम् ।  
 तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च ॥ ४९  
 भद्रतीर्थं च विख्यातं पम्पातीर्थं च शाश्वतम् ।  
 पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलंपुरम् ॥ ५०  
 अङ्गारकं च विख्यातमार्मदकमलम्बुषम् ।  
 आग्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्रकमतः परम् ॥ ५१  
 गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम् ।  
 सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ॥ ५२  
 रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः ।  
 इन्द्रकीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम् ॥ ५३  
 एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु ।  
 एतेषु सर्वदेवानां सांनिध्यं दृश्यते यतः ॥ ५४  
 दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् ।  
 बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम् ॥ ५५  
 तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा ।  
 श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ॥ ५६  
 तथैव पितृतीर्थं तु यत्र गोदावरी नदी ।  
 युता लिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा ॥ ५७  
 जामदग्न्यस्य तत् तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् ।  
 प्रतीकस्य भयाद् भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ॥ ५८  
 तत् तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम् ।  
 श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम् ॥ ५९  
 तथा सहस्रलिङ्गं च राघवेश्वरमुत्तमम् ।  
 सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ॥ ६०  
 निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमासवान् ।  
 तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ॥ ६१  
 तीर्थं तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च ।  
 सोमपानं च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम् ॥ ६२

भीमेश्वर, कृष्णवेणा, कावेरी, कुडमला नदी, गोदावरी नदी, त्रिसंध्या नामक उत्तम तीर्थं तथा समस्त तीर्थोंद्वारा नमस्कृत त्रैयम्बक नामक तीर्थं, जहाँ त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर स्वयं ही निवास करते हैं—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध करोड़ों-करोड़ों गुना फलदायक होता है। ब्राह्मणों ! इन तीर्थोंका स्मरणमात्र करनेसे पापसमूह सैकड़ों टुकड़ोंमें चूर-चूर होकर नष्ट हो जाते हैं ॥३५—४८ ॥

इसी प्रकार श्रीपर्णीं, ताप्रपर्णीं, सर्वश्रेष्ठ जयातीर्थं, पुण्यतोया मत्स्य नदी, शिवधार, सुप्रसिद्ध भद्रतीर्थं, सनातन पम्पातीर्थं, पुण्यमय रामेश्वर, एलापुर, अलम्पुर, अङ्गारक, प्रख्यात आमर्दक, अलम्बुष, (अलम्बुषा देवीका स्थान) आग्रातकेश्वर एवं एकाम्रक (भुवनेश्वर) हैं । इसके बाद गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, कृपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, रामाधिवास, उसमें भी सौमित्रिसंगम, इन्द्रकील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये सभी श्राद्धमें सदा सर्वाधिक प्रशस्त माने गये हैं । चूँकि इन तीर्थोंमें सम्पूर्ण देवताओंका सांनिध्य देखा जाता है, इसलिये इन सभीमें दिया गया दान सैकड़ों कोटि गुनासे भी अधिक फलदायी होता है । पुण्यजला बाहुदा (धवला) नदी, मङ्गलमय सिद्धवन, पाशुपत नामक तीर्थ तथा शुभदायिनी पार्वतिका नदी—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध सौ करोड़ गुनासे भी अधिक फलदाता होता है । उसी प्रकार यह भी एक पितृतीर्थ है, जहाँ सहस्रों शिवलिङ्गोंसे युक्त एवं अन्तरमें सभी नदियोंका जल प्रवाहित करनेवाली गोदावरी नदी बहती है । वहाँपर जामदग्न्यका वह उत्तम तीर्थ क्रमशः आकर सम्मिलित हुआ है, जो प्रतीकके भयसे पृथक् हो गया था । गोदावरी नदीमें स्थित हव्य-कव्य-भोजी पितरोंका वह परम प्रियतीर्थ अप्सरोयुग नामसे प्रसिद्ध है । यह भी श्राद्ध, हवन और दान आदि कार्योंमें सैकड़ों कोटि गुनेसे अधिक फल देनेवाला है तथा सहस्रलिङ्ग, उत्तम राघवेश्वर और पुण्यतोया इन्द्रफेना नदी नामक तीर्थ है, जहाँ पूर्वकालमें इन्द्रका पतन हो गया था तथा पुनः उन्होंने अपने तपोबलसे नमुचिका वध करके स्वर्गलोकको प्राप्त किया था । वहाँ मनुष्योंद्वारा किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है । पुष्कर नामक तीर्थं, शालग्राम और जहाँ वैश्वानरका निवासस्थान है, वह सुप्रसिद्ध सोमपानतीर्थं,

तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च।  
 मलन्दरा नदी पुण्या कौशिकी चन्द्रिका तथा ॥ ६३  
 वैदर्भीं चाथ वेणा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा।  
 कावेरी चोत्तरा पुण्या तथा जालंधरो गिरि: ॥ ६४  
 एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते।  
 लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ॥ ६५  
 विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम्।  
 कुञ्जाम्रं तु तथा तीर्थमुर्वशीपुलिनं तथा ॥ ६६  
 संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम्।  
 एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ॥ ६७  
 अद्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च।  
 तथा वसिष्ठं तीर्थं तु हारीतं तु ततः परम् ॥ ६८  
 ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च।  
 पिण्डारकं च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च ॥ ६९  
 घण्टेश्वरं बिल्वकं च नीलपर्वतमेव च।  
 तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥ ७०  
 अश्वतीर्थं च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः।  
 तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवोघवती नदी ॥ ७१  
 तीर्थं वसुप्रदं नामच्छागलाण्डं तथैव च।  
 एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ ७२  
 तथा च बद्रीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च।  
 जयन्तं विजयं चैव शक्रतीर्थं तथैव च ॥ ७३  
 श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा।  
 तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा ॥ ७४  
 वैकुण्ठतीर्थं च परं भीमेश्वरमथापि वा।  
 एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ७५  
 तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा।  
 कुशेश्यं च विख्यातं गौरीशिखरमेव च ॥ ७६  
 नकुलेशस्य तीर्थं च कर्दमालं तथैव च।  
 दिण्डपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा ॥ ७७  
 सप्तगोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम्।  
 तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः ॥ ७८  
 एष तूदेशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया।  
 वागीशोऽपि न शक्रोति विस्तरात् किमु मानुषः ॥ ७९

सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।  
 वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थं तु समुदाहृतम् ॥ ८०

सारस्वततीर्थं, स्वामितीर्थं, मलन्दरा नदी, कौशिकी और चन्द्रिका—ये पुण्यजला नदियाँ हैं। वैदर्भा, वैणा, पूर्वमुख बहनेवाली श्रेष्ठ पयोष्णी, उत्तरमुख बहनेवाली पुण्यसलिला कावेरी तथा जालंधर गिरि—इन श्राद्धसम्बन्धी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है ॥ ४९—६४ १/२ ॥

उसी प्रकार लोहदण्डतीर्थं, चित्रकूट, विन्ध्ययोग, गङ्गा नदीका मङ्गलमय तट, कुञ्जाम्र (ऋषिकेश) तीर्थं, उर्वशीपुलिन, संसारमोचनतीर्थं तथा ऋणमोचन—इन पितृतीर्थोंमें श्राद्धका फल अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थं, गौतमेश्वर, वसिष्ठतीर्थं, उसके बाद हारीततीर्थं, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हयतीर्थं, (द्वारकाके पास) प्रख्यात पिण्डारक, शङ्खोद्धार, घण्टेश्वर, बिल्वक, नीलपर्वत, धरणीतीर्थं, रामतीर्थं तथा अश्वतीर्थं (कन्नौज)—ये सब भी श्राद्ध एवं दानके लिये अनन्त फलदायक -रूपसे विख्यात हैं ॥ ६५—७० १/२ ॥

वेदशिर नामक तीर्थं, उसी तरह ओघवती नदी, वसुप्रद नामक तीर्थं एवं छागलाण्डतीर्थं—इन तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। बद्रीतीर्थं, गणतीर्थं, जयन्त, विजय, शक्रतीर्थं, श्रीपतितीर्थं, रैवतकतीर्थं, शारदातीर्थं, भद्रकालेश्वर, वैकुण्ठतीर्थं, श्रेष्ठ भीमेश्वरतीर्थं—इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले लोग परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। मातृगृह नामक तीर्थं, करवीरपुर, कुशेश्य, सुप्रसिद्ध गौरी-शिखर, नकुलेशतीर्थं, कर्दमाल, दिण्डपुण्यकर, उसी तरह पुण्डरीकपुर तथा समस्त तीर्थेश्वरोंका भी अधीश्वर सप्तगोदावरीतीर्थं—इन तीर्थोंमें अनन्त फलप्राप्तिके इच्छुकोंको श्राद्ध प्रदान करना चाहिये ॥ ७१—७८ ॥

इस प्रकार मैंने तीर्थोंके इस संग्रहका संक्षेपमें वर्णन किया; वैसे इनका विस्तृत वर्णन करनेमें तो बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यकी तो गणना ही क्या है? सत्यतीर्थं, दयातीर्थं तथा इन्द्रियनिग्रहतीर्थं—ये सभी वर्णाश्रम-धर्म माननेवालोंके घरमें भी तीर्थरूपसे बतलाये गये हैं।

एततीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत् कोटिगुणमिष्यते ।  
यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थं श्राद्धं समाचरेत् ॥ ८१  
प्रातःकालो मुहूर्तास्त्रीन् सङ्घवस्तावदेव तु ।  
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्नस्ततः परम् ॥ ८२  
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत् ।  
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥ ८३  
अहो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।  
तत्राष्ट्रमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ॥ ८४  
मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दो भवति भास्करः ।  
तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति ॥ ८५  
मध्याह्नखड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः ।  
रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ ८६  
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः ।  
अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः ॥ ८७  
ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतपाद्यमुहूर्तचतुष्टयम् ।  
मुहूर्तपञ्चकं चैतत् स्वधाभवनमिष्यते ॥ ८८  
विष्णोदेहसभूदभूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।  
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः ॥ ८९  
तिलोदकाञ्जलिदेयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः ।  
सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते ॥ ९०  
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते ।  
तर्पणं तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः ॥ ९१

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ।  
पुरा मत्स्येन कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम् ।  
शृणोति यः पठेद् वापि श्रीमान् संजायते नरः ॥ ९२  
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः ।  
सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम् ॥ ९३  
इदं पवित्रं यशसो निधान-  
मिदं महापापहरं च पुंसाम् ।  
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितं च  
श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः ॥ ९४

चूँकि इन तीर्थोंमें जो श्राद्ध किया जाता है, वह कोटिगुणा फलदायक होता है, अतः प्रयत्नपूर्वक तीर्थोंमें श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करना चाहिये । प्रातःकाल तीन मुहूर्ततकका काल संगव कहलाता है । उसके बाद तीन मुहूर्ततकका काल मध्याह्न और उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्न है । फिर तीन मुहूर्ततक सायंकाल होता है, उसमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये । सायंकालका समय राक्षसी वेला नामसे प्रसिद्ध है । यह सभी कार्योंमें निन्दित है । एक दिनमें पन्द्रह मुहूर्त होते हैं, यह तो सदासे विख्यात है । उनमें जो आठवाँ मुहूर्त है, वह कुतप नामसे प्रसिद्ध है । चूँकि मध्याह्नके समय सूर्य सदा मन्द हो जाते हैं, इसलिये उस समय अनन्त फलदायक उस (कुतप)-का आरम्भ होता है । मध्याह्नकाल, खड्गपात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गौ और आठवाँ दौहित्र (कन्याका पुत्र) —ये आठों चूँकि पापको, जिसे कुत्सित कहा जाता है, संतास करनेवाले हैं, इसलिये 'कुतप'नामसे विख्यात हैं । इस कुतप मुहूर्तके उपरान्त चार मुहूर्त अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधावाचनके लिये उत्तम काल हैं । कुश तथा काला तिल—ये दोनों भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रादुर्भूत हुए हैं, अतः ये श्राद्धकी रक्षा करनेमें सर्वसमर्थ हैं—ऐसा देवगण कहते हैं । तीर्थवासियोंको जलमें प्रवेश करके एक हाथमें कुश लेकर तिलसहित जलाञ्जलि देनी चाहिये । ऐसा करनेसे श्राद्धकी विशेषता बढ़ जाती है । श्राद्ध करते समय (पिण्ड आदि तो) एक ही हाथसे दिया जाता है, परंतु तर्पण दोनों हाथोंसे किया जाता है—यह विधि सदासे प्रचलित है ॥ ७९—९१ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें मत्स्यभगवान् ने इस तीर्थ-श्राद्धका वर्णन किया था । यह पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुर्वर्धक तथा सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है । जो मनुष्य इसे सुनता है अथवा स्वयं इसका पाठ करता है, वह श्रीसम्पन्न हो जाता है । तीर्थनिवासियोंद्वारा समस्त पापोंकी शान्तिके निमित्त श्राद्धके समय इस परम श्रेष्ठ दर्दितविनाशक (श्राद्ध-माहात्म्यरूप) प्रसङ्गका पाठ करना चाहिये । यह श्राद्ध-माहात्म्य परम पवित्र, यशका आश्रयस्थान, पुरुषोंके महान्-से-महान् पापोंका विनाशक तथा ब्रह्मा, सूर्य और रुद्रद्वारा भी पूजित (सम्मानित) है ॥ ९२—९४ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

## तर्देशवाँ अध्याय

चन्द्रमाकी उत्पत्ति, उनका दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंके साथ विवाह, चन्द्रमाद्वारा राजसूय-  
यज्ञका अनुष्ठान, उनकी तारापर आसक्ति, उनका भगवान् शङ्करके साथ  
युद्ध तथा ब्रह्माजीका बीच-बचाव करके युद्ध शान्त करना

ऋष्य ऊचुः

**सोमः पितृणामधिपः कथं शास्त्रविशारद ।**  
**तद्वंश्या ये च राजानो बभूवः कीर्तिवर्धनाः ॥ १**

सूत उवाच

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा ।  
अनुत्तरं नाम तपः सृष्ट्यर्थं तस्वान् प्रभुः ॥ २  
यदानन्दकरं ब्रह्म जगत्क्लेशविनाशनम् ।  
ब्रह्मविष्वर्करुद्राणामभ्यन्तरमतीन्द्रियम् ॥ ३  
शान्तिकृच्छान्तमनसस्तदन्तर्नयने स्थितम् ।  
माहात्म्यात्तपसा विप्राः परमानन्दकारकम् ॥ ४  
यस्मादुमापतिः सार्थमुमया तमधिष्ठितः ।  
तं दृष्ट्वा चाष्टमांशेन तस्मात् सोमोऽभवच्छिशुः ॥ ५  
अथः सुस्वाव नेत्राभ्यां धाम तच्चाम्बुसम्भवम् ।  
दीपयद् विश्वमखिलं ज्योत्स्नया सच्चाचरम् ॥ ६  
तद्विश्वो जगृहुर्धाम स्त्रीरूपेण सुतेच्छया ।  
गर्भोऽभूत् त्वदुदरे तासामास्थितोऽब्दशतत्रयम् ॥ ७  
आशास्तं मुमुक्षुर्भर्मशक्ता धारणे ततः ।  
समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः ॥ ८  
युवानमकरोद् ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम् ।  
स्यन्दनेऽथ सहस्राश्वे वेदशक्तिमये प्रभुः ॥ ९  
आरोप्य लोकमनयदात्मीयं स पितामहः ।  
तत्र ब्रह्मिष्यभिः प्रोक्तमस्मत् स्वामी भवत्वयम् ॥ १०

ऋषियोंने पूछा—शास्त्रविशारद सूतजी ! पितरोंके अधिपति चन्द्रमाकी उत्पत्ति कैसे हुई ? आप यह सब हमें बतलाइये तथा चन्द्रवंशमें जो कीर्तिवर्धक राजा हो गये हैं, उनके विषयमें भी हमलोग सुनना चाहते हैं, कृपया वह सब भी विस्तारसे बतलायें ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें ब्रह्माने अपने मानसपुत्र अत्रिको सृष्टि-रचनाके लिये आज्ञा दी । उन सामर्थ्यशाली महर्षिने सृष्टि-रचनाके निमित्त अनुत्तर<sup>३</sup> नामक (भीषण) तप किया । उस तपके प्रभावसे जगत् के कष्टोंका विनाशक, शान्तिकर्ता, इन्द्रियोंसे परे जो परमानन्द है तथा जो ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके अन्तःप्रदेशमें निवास करनेवाला है, वही ब्रह्म उन प्रशान्त मनवाले<sup>४</sup> महर्षिके (मन एवं) नेत्रोंके भीतर स्थित हो गया । चूँकि उस समय उमासहित उमापति शंकरने भी अत्रिके मन-नेत्रोंको अधियम बनाया था, अतः उन्हें देखकर शिवके या उनके अष्टमांशसे शिशु (ललाटस्थ चन्द्रके) रूपमें चन्द्रमा प्रकट हो गये । उस समय महर्षि अत्रिके नेत्रोंसे जलसम्भूत धाम (तेज) नीचेकी ओर बह चला । उसने अपने प्रकाशसे अखिल चराचर विश्वको उद्दीप कर दिया । दिशाओंने उस तेजको स्त्री-रूपसे धारणकर पुत्र-प्रासिकी कामनासे ग्रहण कर लिया । वह उनके उदरमें गर्भरूप होकर तीन सौ वर्षोंतक स्थित रहा । जब दिशाएँ उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं, तब उन्होंने उसका परित्याग कर दिया । तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माने उस गर्भको उठाकर उसे एकत्र कर सर्वायुधधारी तरुण पुरुषके रूपमें परिणत कर दिया तथा वे शक्तिशाली पितामह सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए वेदशक्तिमय रथपर उसे बैठाकर अपने लोकको ले गये । वहाँ (उस पुरुषको देखकर) ब्रह्मिष्योंने कहा—‘ये हम लोगोंके स्वामी हों ।’

१. यह अध्याय पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, १२ में भी यों ही है ।

२. जिसके बाद किसीने वैसा या उससे कोई दूसरा बड़ा तप न किया हो, वह तपस्या ही ‘अनुत्तर’ तप है ।

३. इसमें ‘चन्द्रमा मनसो जातः’ (पुरुषसूक्त १३०)-का उपबृहण है ।

पितृभिर्देवगन्धर्वैरोषधीभिस्तथैव च ।  
तुष्टुवुः सोमदेवत्यैर्ब्रह्माद्यैर्मन्त्रसंग्रहैः ॥ ११  
स्तूयमानस्य तस्याभूदधिको धामसम्भवः ।  
तेजोवितानादभवद् भुवि दिव्यौषधीगणः ॥ १२  
तद्विमिरधिका तस्माद् रात्रौ भवति सर्वदा ।  
तेनौषधीशः सोमोऽभूद् द्विजेशश्चापि गद्यते ॥ १३  
वेदधामरसं चापि यदिदं चन्द्रमण्डलम् ।  
क्षीयते वर्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा ॥ १४  
विंशतिं च तथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ ।  
रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याः सुवर्चसः ॥ १५  
ततः समासहस्राणां सहस्राणि दशैव तु ।  
तपश्चचार शीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः ॥ १६  
ततस्तुष्टस्तु भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः ।  
वरं वृणीष्व प्रोवाच परमात्मा जनार्दनः ॥ १७  
ततो वक्त्रे वरान् सोमः शक्रलोकं जयाम्यहम् ।  
प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु मम मन्दिरे ॥ १८  
राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्याः सन्तु मे द्विजाः ।  
रक्षःपालः शिवोऽस्माकमास्तां शूलधरो हरः ॥ १९  
तथेत्युक्तः स आजहे राजसूयं तु विष्णुना ।  
होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुदगाताभूच्यतुर्मुखः ॥ २०  
ब्रह्मत्वमगमत् तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम् ।  
सदस्याः सनकाद्यास्तु राजसूयविधौ स्मृताः ॥ २१  
चमसाध्वर्यवस्तत्र विश्वेदेवा दशैव तु ।  
त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादितम् ॥ २२  
ततः समासेऽवभृथे तद्वापालोकनेच्छवः ।  
कामबाणाभितसाङ्घो नव देव्यः सिष्वेविरे ॥ २३  
लक्ष्मीनारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम् ।  
द्युतिर्विभावसुं तद्वत् तुष्टिर्धातारमव्ययम् ॥ २४  
प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मनं कुहूः स्वयम् ।  
कीर्तिर्जयन्तं भर्तां वसुर्मारीचकश्यपम् ॥ २५

उसी समय पितर, ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व और ओषधियोंने 'सोमदैवत्य'\* नामक वैदिक मन्त्रसमूहोंसे उनकी स्तुति की । इस प्रकार स्तुति किये जानेपर चन्द्रमाका तेज और अधिक बढ़ गया । तब उस तेजसमूहसे भूतलपर दिव्य ओषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ । इसी कारण रात्रिमें उन ओषधियोंकी कान्ति सर्वदा अधिक हो जाती है । इसी हेतु चन्द्रमा ओषधीश कहलाये तथा उन्हें द्विजेश भी कहा जाता है । वेदोंके तेजरूप रससे उत्पन्न हुआ जो यह चन्द्रमण्डल है, वह सर्वदा शुक्लपक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें क्षीण होता रहता है ॥ २—१४ ॥

तदनन्तर प्रचेता-नन्दन दक्षने चन्द्रमाको अपनी सत्ताईस कन्याएँ—जो रूप-लावण्यसे सम्पन्न तथा परम तेजस्विनी थीं, पलीरूपमें प्रदान कीं । तब शीत किरणोंवाले चन्द्रमाने एकमात्र भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर १० लाख वर्षोंतक तपस्या की । उससे प्रभावित होकर भगवान् (ऐश्वर्यशाली) जनार्दन (दुष्टविनाशक), परमात्मा (परम आत्मबलसे सम्पन्न), नारायण (जलशायी) हैं, वे श्रीहरि चन्द्रमापर प्रसन्न हो गये और (उनके समक्ष प्रकट होकर) बोले—'वर माँगो !' इस प्रकार कहे जानेपर चन्द्रमाने वर माँगते हुए कहा—'भगवन् !' मैं इन्द्रलोकको जीत लेना चाहता हूँ, जिससे देवतालोग प्रत्यक्षरूपसे मेरे भवनमें आकर अपना-अपना भाग ग्रहण करें । मेरे राजसूय-यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवगण ब्राह्मण हों तथा त्रिशूलधारी मङ्गलमय भगवान् शंकर हम सभीके दिव्य रक्षःपाल (राक्षसोंसे रक्षा करनेवाले या सभी प्रकारके रक्षक) रूपमें उपस्थित रहें ।' भगवान् विष्णुके 'तथेति'—'ऐसा ही हो'—यों कहकर स्वीकार कर लेनेपर चन्द्रमाने राजसूय-यज्ञका आयोजन किया । उस यज्ञमें महर्षि अत्रि होता (ऋग्वेदके पाठक), भूग अध्यर्थु (यजुर्वेदके पाठक) और चतुर्मुख ब्रह्मा उद्गाता (सामवेदके गायक) थे । स्वयं श्रीहरिने उस यज्ञका उपद्रष्टा होकर ब्रह्म (अथर्ववेदका पाठक)-का पद ग्रहण किया । उस राजसूय-यज्ञमें सनक आदि सदस्य और दसों विश्वेदेव चमसाध्वर्यु (यज्ञमें सोमरस पीनेवाले) बने—ऐसा सुना जाता है । उस समय चन्द्रमाने ऋत्विजोंको तीनों लोक दक्षिणारूपमें प्रदान कर दिये थे । तत्पश्चात् अवभृथस्नान (यज्ञान्तमें होनेवाला स्नान)-की समाप्तिपर (चन्द्रमाके रूपपर मुाध होकर) उसके सौन्दर्यका अवलोकन करनेकी इच्छासे युक्त सिनीवाली आदि नौ देवियाँ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं । लक्ष्मी नारायणको, सिनीवाली कर्दमको, द्युति विभावसुको, तुष्टि अविनाशी ब्रह्माको, प्रभा प्रभाकरको, कुहू स्वयं हविष्मान्को, कीर्ति जयन्तको, वसु मरीचिनन्दन कश्यपको

\* ऋग्वेदके १। ११ (मुख्यतम), १। १—११४, १०। ८५ (जिसे विवाहसूक्त भी कहते हैं) आदि सूक्त सोमदैवत्य हैं ।

धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दि सोममेवाभजंस्तदा ।  
 स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा ॥ २६  
 एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा ।  
 न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः ॥ २७  
 तथाप्यराजत विधुर्दशाधा भावयन् दिशः ।  
 सोमः प्राप्याथ दुष्प्राप्यमैश्वर्यं सृष्टिसंस्कृतम् ।  
 सप्तलोकैकनाथत्वमवाप तपसा तदा ॥ २८  
 कदाचिदुद्यानगतामपश्य-

दनेकपुष्पाभरणैश्च शोभिताम् ।

बृहस्त्रितम्बस्तनभारखेदात्-

भार्या पुष्पस्य भङ्गेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम् ॥ २९  
 च तां देवगुरोरनङ्ग-  
 बाणाभिरामायतचारुनेत्राम् ।  
 तारां स ताराधिपतिः स्मरातः  
 केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ ॥ ३०  
 सापि स्मराता सह तेन रेमे  
 तदरूपकान्त्या हृतमानसेन ।  
 चिरं विहत्याथ जगाम तारां  
 विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि ॥ ३१  
 न तृप्तिरासीच्य गृहेऽपि तस्य  
 तारानुरक्तस्य सुखागमेषु ।

बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्ध-

स्तद्विद्याननिष्ठैकमना बभूव ॥ ३२  
 शशाक शार्पं न च दातुमस्मै  
 न मन्त्रशस्त्राग्निविषरशेषैः ।

तस्यापकर्तुं विविधैरुपायै-

नैवाभिच्चारैरपि वागधीशः ॥ ३३  
 स याचयामास ततस्तु दैन्यात्  
 सोमं स्वभार्यार्थमनङ्गतसः ।

स याच्यमानोऽपि ददौ न तारां

बृहस्पतेस्तसुखपाशबद्धः ॥ ३४

महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेण

साध्यैर्मरुदभिः सह लोकपालैः ।

ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दु-

स्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव ॥ ३५

यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्या-

मनेकरुद्राचितपादपद्मः ।

ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी

बृहस्पतिस्तेहवशानुबद्धः ॥ ३६

और धृति अपने पति नन्दिको छोड़कर उस समय चन्द्रमाकी सेवामें नियुक्त हुई। चन्द्रमा उस समय दसों दिशाओंको उद्घासित करते हुए सुशोभित हो रहे थे तथा उन्होंने समस्त सृष्टिमें संस्कृत एवं दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तकर सातों लोकोंका एकच्छत्र आधिपत्य प्राप्त किया' ॥ १५—२८॥

इसके कुछ दिन बाद चन्द्रमा एक बार कभी

ताराको साथ लेकर अपने घर चले गये। बृहस्पतिके

कहनेपर भी उन्होंने ताराको उन्हें समर्पित नहीं किया।

तत्पश्चात् महेश्वर, ब्रह्मा, साध्यगण तथा लोकपालोंसहित

मरुदण्डके समझानेपर भी जब चन्द्रमाने ताराको किसी

प्रकार नहीं लौटाया, तब भगवान् शिव, जो भूतलपर

वामदेव नामसे विख्यात हैं तथा अनेकों रुद्र जिनके

चरणकमलोंकी अर्चना किया करते हैं, क्रुद्ध हो उठे।

तदनन्तर त्रिपुरासुरके शत्रु एवं पिनाक धारण करनेवाले

भगवान् शंकर बृहस्पतिके प्रति स्नेहके वशीभूत हो शिष्योंके

|   |                     |      |
|---|---------------------|------|
| धनुर्गृहीत्वाजगवं                       | पुरारि-             |      |
| जगाम                                    | भूतेश्वरसिद्धजुषः । |      |
| युद्धाय सोमेन                           | विशेषदीप-           |      |
| तृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः                 |                     | ॥ ३७ |
| सहैव जग्मुश्च                           | गणेशकाद्या          |      |
| विंशच्चतुःषष्ठिगणास्त्रयुक्ताः          |                     | ।    |
| यक्षेश्वरः कोटिशतैरनेकै-                |                     |      |
| र्युतोऽन्वगात् स्यन्दनसंस्थितानाम् ॥ ३८ |                     |      |
| वेतालयक्षोरगकिंनराणां                   |                     |      |
| पद्मेन चैकेन तथार्बुदेन ।               |                     |      |
| लक्ष्मस्त्रिभिर्द्वादशभी                | रथानां              |      |
| सोमोऽन्वगात् तत्र विवृद्धमन्युः ॥ ३९    |                     |      |
| नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः             |                     |      |
| शनैश्चराङ्गारकवृद्धतेजाः                |                     | ।    |
| जग्मुर्भयं सप्त तथैव लोका-              |                     |      |
| श्चाल भूद्वीपसमुद्रगर्भा ॥ ४०           |                     |      |
| स सोममेवाभ्यगमत् पिनाकी                 |                     |      |
| गृहीतदीपास्त्रविशालवह्निः               |                     | ।    |
| अथाभवद् भीषणभीमसेन-                     |                     |      |
| सैन्यद्वयस्यापि महाहवोऽसौ ॥ ४१          |                     |      |
| अशेषसत्त्वक्षयकृत्प्रवृद्ध-             |                     |      |
| स्तीक्ष्णायुधास्त्रज्वलनैकरूपः          |                     | ।    |
| शस्त्रैरथान्योऽन्यमशेषसैन्यं            |                     |      |
| द्वयोर्जगाम क्षयमुग्रतीक्षणैः ॥ ४२      |                     |      |
| पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि           |                     |      |
| स्वर्भूमिपातालमथो दहन्ति ।              |                     |      |
| रुद्रः कोपाद् ब्रह्मशीर्ष मुमोच         |                     |      |
| सोमोऽपि सोमास्त्रममोघवीर्यम् ॥ ४३       |                     |      |
| तयोर्निपातेन समुद्रभूम्यो-              |                     |      |
| रथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत् ।           |                     |      |
| तदस्त्रयुग्मं जगतां क्षयाय              |                     |      |
| प्रवृद्धमालोक्य पितामहोऽपि ॥ ४४         |                     |      |
| अन्तःप्रविश्याथ कथं कथंचि-              |                     |      |
| न्निवारयामास सुरैः सहैव ।               |                     |      |
| अकारणं किं क्षयकृजनानां                 |                     |      |
| सोम त्वयापीत्थमकारि कार्यम् ॥ ४५        |                     |      |

साथ 'आजगव' नामक धनुष लेकर चन्द्रमाके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुए। उस समय उनका मुख विशेषरूपसे उद्धीस हुए तृतीय नेत्रकी अग्निसे बड़ा भयानक दीख रहा था ॥ २९—३७ ॥

उनके साथ भूतेश्वरों और सिद्धोंका समुदाय भी था तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित गणेश आदि चौरासी गण भी साथ ही रवाना हुए। उसी प्रकार यक्षराज कुबेरने भी अनेकों शतकोटि सेनाओंके साथ-साथ रथारूढ़ एक पद्म वेताल, एक अरब यक्ष, तीन लाख नाग और बारह लाख किन्नरोंको साथ लेकर शिवजीका अनुसरण किया। उधर चन्द्रमा भी क्रोधाविष्ट हो नक्षत्रों, दैत्यों और असुरोंकी सेनाओंके साथ शनैश्वर और मंगलके सहयोगके कारण उद्धीस तेजसे सम्पन्न हो रणभूमिमें आ डटे। उस समाहारको देखकर सातों लोक भयभीत हो उठे तथा द्वीपों एवं समुद्रोंसहित पृथ्वी काँपने लगी। शिवजीने प्रकाशमान एवं विशाल आग्नेयास्त्रको लेकर चन्द्रमापर आक्रमण किया। फिर तो दोनों सेनाओंमें अत्यन्त भीषण युद्ध छिड़ गया। धीर-धीर उस युद्धने उग्ररूप धारण कर लिया। उसमें सम्पूर्ण जीवोंका संहार हो रहा था तथा अग्निके समान प्रज्वलित हथियार चमक रहे थे। इस प्रकार एक-दूसरेके प्रति अत्यन्त तीखे शस्त्रोंके प्रहारसे दोनों सेनाएँ समग्ररूपसे नष्ट होने लगीं। उस समय ऐसे जाज्वल्यमान शस्त्रोंकी वर्षा हो रही थी, जो स्वर्गलोक, भूतल और पातालको भस्म कर डालते थे। यह देख रुद्ध रुद्ध होकर ब्रह्मशीर्ष नामक अस्त्र चलाया, तब चन्द्रमाने भी अपने अचूक लक्ष्यवाले सोमास्त्रका प्रयोग किया। उन दोनों अस्त्रोंके टकरानेसे समुद्र, भूमि और अन्तरिक्ष आदि सभी भयसे काँप उठे। इस प्रकार उन दोनों अस्त्रोंको जगत्का विनाश करनेके लिये बढ़ता हुआ देखकर देवताओंके साथ ब्रह्माने उनके भीतर प्रवेश करके किसी-किसी प्रकारसे उनका निवारण किया (और कहा—) 'सोम! तुमने अकारण ही ऐसा कार्य क्यों किया, यह तो लोगोंका विनाशक है। सोम! चौंकि तुमने

यस्मात् परस्त्रीहरणाय सोम  
त्वया कृतं युद्धमतीव भीमम्।  
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु  
शान्तोऽप्यलं नूनमथो सितान्ते॥  
भार्यामिमामर्पय वाक्पतेस्त्वं  
न चावमानोऽस्ति परस्वहारे॥ ४६

सूत उवाच

तथेति चोवाच हिमांशुमाली  
युद्धादपाक्रामदतः प्रशान्तः।  
बृहस्पतिः स्वामपगृह्य तारां  
हष्टो जगाम स्वगृहं सरुद्रः॥ ४७

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशाख्याने सोमापचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशाख्यानमें सोमापचार नामक तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३॥

दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेके लिये इतना भयंकर युद्ध किया है, इसलिये शान्तस्वरूप होनेपर भी तुम शुक्लपक्षके अन्तमें अर्थात् कृष्णपक्षमें निश्चय ही जनतामें पापग्रहके रूपसे प्रसिद्ध होओगे। तुम बृहस्पतिकी इस भार्याको उन्हें समर्पित कर दो। दूसरेका धन लेकर उसे लौटा देनेमें अपमान नहीं होता॥ ३८—४६॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तब चन्द्रमाने 'तथेति—ऐसा ही हो' यों कहकर ब्रह्माकी आज्ञा स्वीकार कर ली और वे शान्त होकर युद्धसे हट गये। इधर बृहस्पति भी अपनी पती ताराको ग्रहण करके शिवजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको चले गये॥ ४७॥

## चौबीसवाँ अध्याय

ताराके गर्भसे बुधकी उत्पत्ति, पुरुरवाका जन्म, पुरुरवा और उर्वशीकी कथा,  
नहुष-पुत्रोंके वर्णन-प्रसङ्गमें यथातिका वृत्तान्त

सूत उवाच

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसंनिभः।  
दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः॥ १  
तारोदराद् विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसंनिभः।  
सर्वार्थशास्त्रविद् धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः॥ २  
नाम यद्राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम्।  
राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः॥ ३  
जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद् बली।  
ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवा देवर्षिभिः सह॥ ४  
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा।  
अपृच्छंस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर एक वर्ष व्यतीत होनेपर ताराके उदरसे एक कुमार प्रकट हुआ। वह बारहों सूर्योंके समान तेजस्वी, दिव्य पीताम्बरधारी, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा चन्द्रमाके सदृश कान्तिमान् था। वह सम्पूर्ण अर्थशास्त्रका ज्ञाता, उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न तथा हस्तिशास्त्र (हाथीके गुण-दोष तथा चिकित्सा आदि विवेचनापूर्ण शास्त्र)-का प्रवर्तक था। वही शास्त्र 'राजपुत्रीय' (या 'पालकाय')-नामसे विख्यात है, इसमें गज-चिकित्साका विशद वर्णन है। सोम राजाका पुत्र होनेके कारण वह राजकुमार राजपुत्र तथा बुधके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस बलवान् राजकुमारने जन्म लेते ही सभी तेजस्वी पदार्थोंको अभिभूत कर दिया। उसके जातकर्म-संस्कारके उत्सवमें ब्रह्मा आदि सभी देवता देवर्षियोंके साथ बृहस्पतिके घर पधारे। चन्द्रमाने उस पुत्रको ग्रहण

१. यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। अग्निपुराण २८७—११, बृहत्संहिता ६६, १३, आकाशभैरवकल्प, शिवतत्त्वरत्नाकर, मानसोल्लास १। १०००—१४०० आदिमें इसका वर्णन है। वाल्मी० रामा० १। ६। २४—३० की तथा रघुवंश ५। ५० की टीकाओंमें भी इसके कुछ अंश निर्दिष्ट हैं।

२. इन्हींसे 'राजपूत' शब्द भी प्रचलित हुआ।

ततः सा लज्जिता तेषां न किंचिदवदत् तदा ।  
 पुनः पुनस्तदा पृष्ठा लज्जयन्ती वराङ्गना ॥ ६  
 सोमस्येति चिरादाह ततोऽगृह्णाद् विधुः सुतम् ।  
 बुध इत्यकरोन्नाम्ना प्रादाद् राज्यं च भूतले ॥ ७  
 अभिषेकं ततः कृत्वा प्रधानमकरोद् विभुः ।  
 ग्रहसाम्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मिष्यसंयुतः ॥ ८  
 पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ।  
 इलोदरे च धर्मिष्टं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥ ९  
 अश्वमेधशतं साग्रमकरोद् यः स्वतेजसा ।  
 पुरुरवा इति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ १०  
 हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य जनार्दनम् ।  
 लोकैश्वर्यमगाद् राजा सप्तद्वीपपतिस्तदा ॥ ११  
 केशिप्रभृतयो दैत्याः कोटिशो येन दारिताः ।  
 उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद् रूपमोहिता ॥ १२  
 सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना ।  
 धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ १३  
 चामरग्राहिणी कीर्तिः सदा चैवाङ्ग्नवाहिका ।  
 विष्णोः प्रसादाद् देवेन्द्रो ददावर्धासनं तदा ॥ १४  
 धर्मार्थकामान् धर्मेण सममेवाभ्यपालयत् ।  
 धर्मार्थकामाः संद्रष्टुमाजग्मुः कौतुकात् पुरा ॥ १५  
 जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति नः समम् ।  
 भक्त्या चक्रे ततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं नृपः ॥ १६  
 आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषितम् ।  
 निवेश्याथाकरोत् पूजामीषद् धर्मेऽधिकां पुनः ॥ १७  
 जगमतुस्तेन कामार्थावतिकोपं नृपं प्रति ।  
 अर्थः शापमदात् तस्मै लोभात् त्वं नाशमेष्यसि ॥ १८  
 कामोऽप्याह तवोन्मादो भविता गन्धमादने ।  
 कुमारवनमाश्रित्य वियोगादुर्वशीभवात् ॥ १९  
 धर्मेऽप्याह चिरायुस्त्वं धार्मिकश्च भविष्यसि ।  
 सन्ततिस्तव राजेन्द्र यावच्चन्द्राकर्तारकम् ॥ २०  
 शतशो वृद्धिमायातु न नाशं भुवि यास्यति ।  
 इत्युक्त्वान्तर्दधुः सर्वे राजा राज्यं तदन्वभूत् ॥ २१

कर लिया और उसका नाम 'बुध' रखा । तत्पश्चात् सर्वव्यापी ब्रह्माने ब्रह्मिष्योंके साथ उसे भूतलके राज्यपर अभिषिक्त कर सर्वप्रधान बना दिया और ग्रहोंकी समता प्रदान की । फिर सभी देवताओंके देखते-देखते ब्रह्मा वहीं अन्तर्हित हो गये । बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया । वह पुरुरवा नामसे विख्यात हुआ । वह सम्पूर्ण लोगोंद्वारा वन्दित हुआ । उन्होंने अपने प्रभावसे एक सौसे भी अधिक अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया । उस राजा पुरुरवाने हिमवान् पर्वतके रमणीय शिखरपर भगवान् विष्णुकी आराधना करके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा वे सातों द्वीपोंके अधिपति हुए । उन्होंने केशि आदि करोड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर दिया । उनके रूपपर मुग्ध होकर उर्वशी उनकी पत्नी बन गयी । सम्पूर्ण लोकोंकी हित-कामनासे युक्त पुरुरवाने पर्वत, वन और काननोंसहित सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया । कीर्ति तो (मानो) सदा उनकी चँचल धारण करनेवाली सेविका थी । भगवान् विष्णुकी कृपासे देवराज इन्द्रने उन्हें अपना अर्धासन प्रदान किया था ॥ १—१४ ॥

पुरुरवा धर्म, अर्थ और कामका समानरूपसे ही पालन करते थे । पूर्वकालमें एक बार धर्म, अर्थ और काम कुतूहलवश यह देखनेके लिये राजा के निकट आये कि यह हमलोगोंको समानरूपसे कैसे देखता है । उनके मनमें राजा के चरित्रको जाननेकी अभिलाषा थी । राजा ने उन्हें भक्तिपूर्वक अर्ध्य-पाद्य आदि प्रदान किया । तत्पश्चात् स्वर्णजटित तीन दिव्य आसन लाकर उनपर उन्हें बैठाया और उनकी पूजा की । इसके बाद उन्होंने पुनः धर्मकी थोड़ी अधिक पूजा कर दी । इस कारण अर्थ और काम राजापर अत्यन्त कुद्ध हो उठे । अर्थने राजा को शाप देते हुए कहा—'तुम लोभके कारण नष्ट हो जाओगे ।' कामने भी कहा—'राजन् ! गन्धमादन पर्वतपर स्थित कुमारवनमें तुम्हें उर्वशीजन्य वियोगसे उन्माद हो जायगा ।' धर्मने कहा—'राजेन्द्र ! तुम दीर्घायु और धार्मिक होगे । तुम्हारी संतति करोड़ों प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होती रहेगी और जबतक सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणकी सत्ता विद्यमान है, तबतक उनका भूतलपर विनाश नहीं होगा ।' यों कहकर वे सभी अन्तर्हित हो गये और राजा राज्यका उपभोग करने लगे ॥ १५—२१ ॥

अहन्यहनि देवेन्द्रं द्रष्टुं याति स राजराट्।  
 कदाचिदारुह्य रथं दक्षिणाम्बरचारिणम्॥ २२  
 सार्थमकेण सोऽपश्यन्नीयमानामथाम्बरे।  
 केशिना दानवेन्द्रेण चित्रलेखामथोर्वशीम्॥ २३  
 तं विनिर्जित्य समरे विविधायुधपाणिना।  
 बुधपुत्रेण वायव्यमस्त्रं मुक्त्वा यशोऽर्थिना॥ २४  
 तथा शक्रोऽपि समरे येन चैवं विनिर्जितः।  
 मित्रत्वमगमद् देवैर्ददाविन्द्राय चोर्वशीम्॥ २५  
 ततः प्रभृति मित्रत्वमगमत् पाकशासनः।  
 सर्वलोकातिशायित्वं बलमूर्जो यशः श्रियम्॥ २६  
 प्रादाद् वज्रीति संतुष्टे गेयतां भरतेन च।  
 सा पुरुरवसः प्रीत्या गायन्ती चरितं महत्॥ २७  
 लक्ष्मीस्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम्।  
 मेनकामुर्वशी रम्भां नृत्यतेति तदादिशत्॥ २८  
 ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी।  
 सा पुरुरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीडिता॥ २९  
 विस्मृताभिनयं सर्वं यत् पुरा भरतोदितम्।  
 शशाप भरतः क्रोधाद् वियोगादस्य भूतले॥ ३०  
 पञ्चपञ्चाशदब्दानि लता सूक्ष्मा भविष्यसि।  
 पुरुरवाः पिशाचत्वं तत्रैवानुभविष्यति॥ ३१  
 ततस्तमुर्वशी गत्वा भर्तरमकरोच्चिरम्।  
 शापान्ते भरतस्याथ उर्वशी बुधसूनुतः॥ ३२  
 अजीजनत् सुतानष्टौ नामतस्तान् निबोधत।  
 आयुर्दृढायुरश्चायुर्धनायुर्धृतिमान् वसुः॥ ३३  
 शुचिविद्यः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः।  
 आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा तथैव च॥ ३४  
 रजिर्दध्भो विपाप्मा च वीरा: पञ्च महारथाः।  
 रजेः पुत्रशतं जज्ञे राजेयमिति विश्रुतम्॥ ३५  
 रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम्।  
 तपसा तोषितो विष्णुर्वरान् प्रादान्महीपतेः॥ ३६

राजराजेश्वर पुरुरवा प्रतिदिन देवराज इन्द्रको देखनेके लिये (अमरावतीपुरी) जाया करते थे। एक बार वे सूर्यके साथ रथपर चढ़कर गगनतलके दक्षिण भागमें विचरण कर रहे थे, उसी समय उन्होंने दानवराज केशिद्वारा चित्रलेखा और उर्वशी नामी अप्सराओंको आकाशमार्गसे ले जायी जाती हुई देखा। \* तब विविधास्त्रधारी यशोऽभिलाषी बुध-नन्दन पुरुरवाने समरभूमिमें वायव्यास्त्रका प्रयोग करके उस दानवराज केशिको पराजित कर दिया, जिसने संग्राममें इन्द्रको भी परास्त कर दिया था। तत्पश्चात् राजाने उर्वशीको ले जाकर इन्द्रको समर्पित कर दिया, जिससे उनकी देवोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। तभीसे इन्द्र भी राजाके मित्र हो गये। फिर इन्द्रने प्रसन्न होकर राजाको समस्त लोकोंमें श्रेष्ठता, अत्यधिक बल, पराक्रम, यश और सम्पत्ति प्रदान की। साथ ही भरत मुनिद्वारा उनके यशका गान भी कराया गया। उर्वशी पुरुरवाके प्रेमसे उनके महान् चरित्रका गान करती रहती थी। एक बार भरत मुनिद्वारा प्रवर्तित 'लक्ष्मीस्वयंवर' नाटकका अभिनय हुआ। उसमें इन्द्रने मेनका, उर्वशी और रम्भा-तीनोंको नाचनेका आदेश दिया। उनमें उर्वशी लक्ष्मीका रूप धारण करके लयपूर्वक नृत्य कर रही थी। (पर) नृत्यकालमें पुरुरवाको देखकर अनुरागसे सुधबुध खो जानेके कारण भरत मुनिने उसे पहले जो कुछ अभिनयका नियम बतलाया था, वह सारा-का-सारा उसे विस्मृत हो गया। तब भरत मुनिने क्रोधके वशीभूत हो उसे शाप देते हुए कहा—'तुम इसके वियोगसे भूतलपर पचपन वर्षतक सूक्ष्मलताके रूपमें उत्पन्न होकर रहोगी और पुरुरवा वहीं पिशाच-योनिका अनुभव करेगा॥ २२—३१॥

तत्पश्चात् उर्वशीने पुरुरवाके पास जाकर चिरकालके लिये उनका पतिरूपमें वरण कर लिया। भरत मुनिद्वारा दिये गये शापकी निवृत्तिके पश्चात् उर्वशीने बुधपुत्र पुरुरवाके संयोगसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम थे—आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य और शतायु। ये सभी दिव्य बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। इनमें आयुके नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाप्मा नामक पाँच महारथी वीर पुत्र उत्पन्न हुए। रजिके सौ पुत्र पैदा हुए, जो राजेय नामसे विष्णुता हुए। रजिने पापरहित भगवान् नारायणकी आराधना की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान् विष्णुने राजाको अनेकों वर

\* कालिदासके विक्रमोर्वशीय नाटकका यही कथानक आधार है। यह पद्मपुराणमें भी है। वैसे पुरुरवावृत्त वेदोंसे लेकर प्रायः सभी पुराणोंमें चर्चित है, पर वह थोड़ा भिन्नरूपमें है।

देवासुरमनुष्याणामभूत् स विजयी तदा ।  
 अथ देवासुरं युद्धमभूद् वर्षशतत्रयम् ॥ ३७  
 प्रहादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद् विजयी तयोः ।  
 ततो देवासुरैः पृष्ठः प्राह देवश्चतुर्मुखः ॥ ३८  
 अनयोर्विजयी कः स्याद् रजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत् ।  
 जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वं भवस्व नः ॥ ३९  
 दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम् ।  
 नासुरैः प्रतिपन्नं तत् प्रतिपन्नं सुरस्तथा ॥ ४०  
 स्वामी भव त्वमस्माकं संग्रामे नाशय द्विषः ।  
 ततो विनाशिताः सर्वे येऽवध्या वज्रपाणिना ॥ ४१  
 पुत्रत्वमगमत् तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः ।  
 दत्त्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसे रजिः ॥ ४२  
 रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वैभवम् ।  
 यज्ञभागं च राज्यं च तपोबलगुणान्वितैः ॥ ४३  
 राज्याद् भृष्टस्तदा शक्रो रजिपुत्रैर्निपीडितः ।  
 प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेः सुतैः ॥ ४४  
 न यज्ञभागो राज्यं मे निर्जितश्च बृहस्पते ।  
 राज्यलाभाय मे यत्रं विधत्स्व धिषणाधिप ॥ ४५  
 ततो बृहस्पतिः शक्रमकरोद् बलदर्पितम् ।  
 ग्रहशान्तिविधानेन पौष्टिकेन च कर्मणा ॥ ४६  
 गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः ।  
 जिनधर्मे समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित् ॥ ४७  
 वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्कार धिषणाधिपः ।  
 वेदबाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान् ॥ ४८  
 जघान शक्रो वज्रेण सर्वान् धर्मबहिष्कृतान् ।  
 नहुषस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रान् समैव धार्मिकान् ॥ ४९  
 यतिर्यातिः संयातिरुद्भवः पच्चिरेव च ।  
 शर्यातिर्मेघजातिश्च सप्तैते वंशवर्धनाः ॥ ५०

प्रदान किये, जिससे वे उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके विजेता हो गये । तदनन्तर प्रह्लाद और इन्द्रका भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ गया, जो तीन सौ वर्षोंका चलता रहा; परंतु उन दोनोंमें कोई किसीपर विजय नहीं पा रहा था । तब देवताओं और असुरोंने मिलकर देवाधिदेव ब्रह्मासे पूछा—‘ब्रह्मन्! इन दोनोंमें कौन (पक्ष) विजयी होगा?’ यह सुनकर ब्रह्माने उत्तर दिया—‘जिस पक्षमें राजा रजि रहेंगे (वही विजयी होगा)।’ तब दैत्योंने राजाके पास जाकर अपनी विजयके लिये उनसे प्रार्थना की कि ‘आप हमारे सहायक हो जायँ।’ उनकी प्रार्थना सुनकर रजिने कहा—‘यदि मैं आप लोगोंका स्वामी हो जाऊँ तभी उपयुक्त सहायता हो सकेगी।’ परंतु असुरोंने उस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, किंतु देवताओंने उसे स्वीकार करते हुए कहा—‘राजन्! आप हमलोगोंके स्वामी हो जायँ और संग्राममें शत्रुओंका संहार करें।’ तदनन्तर राजा रजिने उन सभी असुरोंको मौतके घाट उतार दिया, जो इन्द्रद्वारा अवध्य थे । इस कर्मसे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र राजाके पुत्र बन गये । तब राजा रजि इन्द्रको राज्य समर्पित कर स्वयं तपस्या करनेके लिये चले गये ॥ ३२—४२ ॥

तत्पश्चात् तपस्या, बल और गुणोंसे सम्पन्न रजिपुत्रोंने इन्द्रके वैभव, यज्ञभाग और राज्यको बलपूर्वक छीन लिया । इस प्रकार रजि-पुत्रोंद्वारा सताये गये एवं राज्यसे भ्रष्ट हुए दीन-दुःखी इन्द्र बृहस्पतिके पास जाकर बोले—‘गुरुदेव! मैं रजिके पुत्रोंद्वारा सताया जा रहा हूँ, मुझे अब यज्ञमें भाग नहीं मिलता तथा मेरा राज्य जीत लिया गया, अतः धिषणाधिप ! (बृहस्पते) पुनः मेरी राज्य-प्राप्तिके लिये किसी उपायका विधान कीजिये।’ तब बृहस्पतिने ग्रह-शान्तिके विधानसे तथा पौष्टिक कर्मद्वारा इन्द्रको बलसम्पन्न बना दिया और रजि-पुत्रोंके पास जाकर उन्हें मोहमें डाल दिया । उन वेदज्ञ बृहस्पतिने वेदोंद्वारा बहिष्कृत जिनधर्मका आश्रय लेकर उन्हें वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद)-से परिभ्रष्ट कर दिया । तदुपरान्त इन्द्रने उन्हें हेतुवाद (तर्कवाद-नास्तिक्य)-से समन्वित और वेदबाह्य जानकर अपने वज्रसे उन सभी धर्मबहिष्कृत रजि-पुत्रोंका संहार कर डाला । अब मैं नहुषके सात धार्मिक पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ । उनके नाम हैं—यति, यथाति, संयाति, उद्घव, पाचि, शर्याति और मेघजाति । ये सातों वंश-विस्तारक थे ॥ ४३—५० ॥

यतिः कुमारभावेऽपि योगी वैखानसोऽभवत्।  
 ययातिश्चाकरोद् राज्यं धर्मैकशरणः सदा ॥ ५१  
 शर्मिष्ठा तस्य भार्याभूद् दुहिता वृषपर्वणः।  
 भार्गवस्यात्मजा तद्वद्देवयानी च सुव्रता ॥ ५२  
 ययाते: पञ्च दायादास्तान् प्रवक्ष्यामि नामतः।  
 देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत् ॥ ५३  
 तथा द्वृह्युमनुं पूरुं शर्मिष्ठाजनयत् सुतान्।  
 यदुः पूरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ॥ ५४  
 ययातिर्नाहुषश्चासीद् राजा सत्यपराक्रमः।  
 पालयामास स महीभीजे च विधिवन्मखैः ॥ ५५  
 अतिभक्त्या पितृनर्च्य देवांश्च प्रयतः सदा।  
 अथाजयत् प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः ॥ ५६  
 स शाश्वतीः समा राजा प्रजा धर्मेण पालयन्।  
 जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम् ॥ ५७  
 जराभिभूतः पुत्रान् स राजा वचनमब्रवीत्।  
 यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्वृह्युं चानुं च पार्थिवः ॥ ५८  
 यौवनेन चलान् कामान् युवा युवतिभिः सह।  
 विहर्तुमहमिच्छामि सहायं कुरुतात्मजाः ॥ ५९  
 तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्।  
 साहाय्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेन किम् ॥ ६०  
 ययातिरब्रवीत् पुत्रा जरा मे प्रतिगृह्यताम्।  
 यौवनेनाथ भवतां चरेयं विषयानहम् ॥ ६१  
 यजतो दीर्घसत्रैर्मै शापाच्चोशनसो मुनेः।  
 कामार्थः परिहीनो मेऽतृप्तोऽहं तेन पुत्रकाः ॥ ६२  
 स्वकीयेन शरीरेण जरामेनां प्रशास्तु वः।  
 अहं तन्वाभिनवया युवा कामानवाप्याम् ॥ ६३  
 न तेऽस्य प्रत्यगृह्णन्त यदुप्रभृतयो जराम्।  
 चतुरस्तान् स राजर्षिरशपच्चेति नः श्रुतम् ॥ ६४  
 तमब्रवीत् ततः पूरुः कनीयान् सत्यविक्रमः।  
 जरां मां देहि नवया तन्वा मे यौवनात् सुखी ॥ ६५

(इनमें सबसे) ज्येष्ठ यति जब अपनी कुमारावस्थामें ही वैखानसका रूप धारण करके योगी हो गये, तब दूसरे पुत्र ययाति सदा एकमात्र धर्मका ही आश्रय लेकर राज्यभार सँभालने लगे। उस समय दानवराज वृषपर्वणी पुत्री शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी कन्या व्रतपरायणा देवयानी—ये दोनों ययातिकी पत्नियाँ हुईं। इनके गर्भसे राजा ययातिके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका मैं नाम-निर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्वृह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको पैदा किया। इनमें यदु और पूरु—ये दोनों वंशका विस्तार करनेवाले हुए। नहुषनन्दन राजा ययाति सत्यपराक्रमी एवं अजेय थे। उन्होंने (धर्मपूर्वक) पृथ्वीका पालन किया और विधिपूर्वक अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवों और पितरोंकी अर्चना करके सारी प्रजाओंपर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार नहुष-पुत्र राजा ययाति अनेकों वर्षोंतक धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे। इसी बीच वे रूपको विकृत कर देनेवाली महान् भयंकर वृद्धावस्थासे ग्रस्त हो गये। बुढ़ापाके वशीभूत हुए राजा ययातिने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्वृह्यु और अनु नामक पुत्रोंसे ऐसी बात कही—‘पुत्रो! यद्यपि युवावस्थाके साथ-साथ मेरी कामनाएँ भी चली गयीं, तथापि मैं पुनः युवा होकर युवतियोंके साथ विहार करना चाहता हूँ। इस विषयमें तुमलोग मेरी सहायता करो ॥ ५१—५९॥

यह सुनकर देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुने राजासे कहा—‘पिताजी! हमलोगोंको अपनी युवावस्थाद्वारा आपकी कौन-सी सहायता करनी है।’ तब ययातिने अपने पुत्रोंसे कहा—‘तुमलोग मेरा बुढ़ापा ले लेना, तत्पश्चात् मैं तुमलोगोंकी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा। पुत्रो! दीर्घकालव्यापी अनेकों यज्ञोंके अनुष्ठान तथा महर्षि शुक्राचार्यके शापसे मेरे काम और अर्थ नष्ट हो गये हैं, इसी कारण मैं उनसे तृप्त नहीं हो सका हूँ। इसलिये तुमलोगोंमेंसे कोई अपने शरीरद्वारा इस बुढ़ापेको स्वीकार करे और मैं उसके अभिनव शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर विषयोंका उपभोग करूँ।’ परंतु जब यदु आदि चार पुत्रोंने पिताजीकी वृद्धावस्थाको ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया, तब राजर्षि ययातिने उन्हें शाप दे दिया—ऐसा हमलोगोंने सुन रखा है। तत्पश्चात् सबसे कनिष्ठ पुत्र सत्यपराक्रमी पूरुने राजासे कहा—‘पिताजी! आप अपना बुढ़ापा मुझे दे दीजिये और मेरे नूतन शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर सुखोंका उपभोग कीजिये।

अहं जरां तवादाय राज्ये स्थास्यामि चाज्ञया ।  
 एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात् ॥ ६६  
 संस्थापयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ।  
 पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः ॥ ६७  
 ययातेश्वाथ वयसा राज्यं पूरुरकारयत् ।  
 ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः ॥ ६८  
 अतृप्त इव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह ।  
 त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः ॥ ६९  
 पौरवो वंश इत्येष ख्यातिं लोके गमिष्यति ।  
 ततः स नृपशार्दूलः पूरुं राज्येऽभिषिद्य च ॥ ७०  
 कालेन महता पश्चात् कालधर्ममुपेयिवान् ।  
 पूरुवंशं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ।  
 यत्र ते भारता जाता भरतान्वयवर्धनाः ॥ ७१

मैं आपकी वृद्धावस्था स्वीकार करके आपके आज्ञानुसार राजकार्य संभालूँगा ।' पूरुके यों कहनेपर राजर्षि ययाति ने अपने तपोबलका आश्रय लेकर उस महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपने बुद्धापेको स्थापित किया और वे स्वयं पूरुकी युवावस्थाको लेकर तरुण हो गये । तदनन्तर ययातिकी वृद्धावस्थासे युक्त हुए पूरु राजकाजका संचालन करने लगे । इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर भी अजेय ययाति कामोपभोगसे अतृप्त-से ही बने रहे । तब उन्होंने अपने पुत्र पूरुसे कहा—‘बेटा ! अकेले तुम्हींसेमें पुत्रवान् हूँ और तुम्हीं मेरे वंशविस्तारक पुत्र हो । आजसे यह वंश पूरुवंशके नामसे लोकमें विख्यात होगा ।’ तदनन्तर राजसिंह ययाति पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं उससे उपराम हो गये और बहुत समय बीतनेके पश्चात् कालधर्म—मृत्युको प्राप्त हो गये । श्रेष्ठ ऋषियो ! अब मैं जिस वंशमें भरत-वंशकी वृद्धि करनेवाले भारत नामसे प्रसिद्ध नरेश हो चुके हैं, उस पूरुवंशका वर्णन करने जा रहा हूँ, आपलोग समाहितचित्त होकर श्रवण कीजिये ॥ ६०—७१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

## पचीसवाँ अध्याय

कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानीकी सेवामें संलग्न होना  
 और अनेक कष्ट सहनेके पश्चात् मृतसंजीविनी-विद्या प्राप्त करना

ऋष्य ऊचुः

किमर्थं पौरवो वंशः श्रेष्ठत्वं प्राप्त भूतले ।  
 ज्येष्ठस्यापि यदोर्वशः किमर्थं हीयते श्रिया ॥ १  
 अन्यद् ययातिचरितं सूत विस्तरतो वद ।  
 यस्मात् तत्पुण्यमायुष्यमभिनन्द्यं सुरैरपि ॥ २

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्ठः शतानीकेन शौनकः ।  
 पुण्यं पवित्रमायुष्यं ययातिचरितं महत् ॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! (अनुज होकर भी) पूरुका वंश भूतलपर श्रेष्ठताको क्यों प्राप्त हुआ और ज्येष्ठ होते हुए भी यदुका वंश (राज्य-)लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गया ? इसका तथा ययातिके चरितका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि यह पुण्यप्रद, आयुवर्धक और देवताओंद्वारा भी अभिनन्दनीय है ॥ १-२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें शतानीकने (भी) महर्षि शौनकसे ययातिके इसी पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुवर्धक एवं महत्वशाली चरितके विषयमें (इस प्रकार) प्रश्न किया था ॥ ३ ॥

## शतानीक उवाच

यथातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः ।  
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥ ४  
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन ।  
आनुपूर्वाच्च मे शंस पूरोर्वशधरान् नृपान् ॥ ५

शौनक उवाच

यथातिरासीद् राजर्षिर्देवराजसमद्युतिः ।  
तं शुक्रवृषपर्वाणौ वब्राते वै यथा पुरा ॥ ६  
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो राजसत्तम ।  
देवयान्याश्च संयोगं यथातेर्नाहुषस्य च ॥ ७  
सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः ।  
ऐश्वर्यं प्रति सङ्घर्षस्त्रैलोक्ये सच्चराचरे ॥ ८  
जिगीषया ततो देवा बबुराङ्गिरसं मुनिम् ।  
पौरोहित्ये च यज्ञार्थे काव्यं तूशनसं परे ॥ ९  
ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यं स्पर्धिनौ भृशाम् ।  
तत्र देवा निजघ्नुर्यान् दानवान् युधि संगतान् ॥ १०  
तान् पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात् ।  
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाङ्गिक्रिरे सुरान् ॥ ११  
असुरास्तु निजघ्नुर्यान् सुरान् समरमूर्धनि ।  
न तान् स जीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः ॥ १२  
न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेद वीर्यवान् ।  
सञ्जीवनीं ततो देवा विषादमगमन् परम् ॥ १३  
अथ देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा ।  
ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः ॥ १४  
भजमानान् भजस्वास्मान् कुरु साहाय्यमुत्तमम् ।  
यासौ विद्या निवसति ब्राह्मणोऽमिततेजसि ॥ १५  
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागमग्नौ भविष्यसि ।  
वृषपर्वणः समीपेऽसौ शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः ॥ १६  
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान् ।  
तपाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चिद्दृते त्वया ॥ १७  
देवयानी च दयिता सुता तस्य महात्मनः ।  
तामाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते ॥ १८

शतानीकने पूछा—तपोधन ! हमारे पूर्वज महाराज ययातिने, जो प्रजापतिसे दसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे, शुक्राचार्यकी अत्यन्त दुर्लभ पुत्री देवयानीको पतीरूपमें कैसे प्राप्त किया ? मैं इस वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ । आप मुझसे पूरुके सभी वंश-प्रवर्तक राजाओंका क्रमशः पृथक्-पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ४-५ ॥

शौनकजीने कहा—राजसत्तम ! राजर्षि ययाति देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी थे । पूर्वकालमें शुक्राचार्य और वृषपर्वने ययातिका अपनी-अपनी कन्याके पतिरूपमें जिस प्रकार वरण किया था, वह सब प्रसङ्ग तुम्हरे पूछनेपर मैं तुमसे कहूँगा । साथ ही यह भी बताऊँगा कि नहुषनन्दन ययाति तथा देवयानीका संयोग किस प्रकार हुआ । एक समय चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीके ऐश्वर्यके लिये देवताओं और असुरोंमें परस्पर बड़ा भारी संघर्ष हुआ, उसमें विजय पानेकी इच्छासे देवताओंने यज्ञ-कार्यके लिये अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पतिका पुरोहितके पदपर वरण किया और दैत्योंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाया । वे दोनों ब्राह्मण सदा आपसमें बहुत लाग-डाँट रखते थे । देवता उस युद्धमें आये हुए जिन दानवोंको मारते थे, उन्हें शुक्राचार्य अपनी संजीविनी-विद्याके बलसे पुनः जीवित कर देते थे । वे पुनः उठकर देवताओंसे युद्ध करने लगते; परंतु असुरगण युद्धके मुहानेपर जिन देवताओंको मारते, उन्हें उदारबुद्धि बृहस्पति जीवित नहीं कर पाते; क्योंकि शक्तिशाली शुक्राचार्य जिस संजीविनी-विद्याको जानते थे, उसका ज्ञान बृहस्पतिको न था । इससे देवताओंको बड़ा विषाद हुआ ॥ ६-१३ ॥

देवता शुक्राचार्यके भयसे उद्धिग्र हो गये । तब वे बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र कचके पास जाकर बोले—‘ब्रह्मन् ! हम तुम्हारी शरणमें हैं । तुम हमें अपनाओ और हमारी उत्तम सहायता करो । अमित तेजस्वी ब्राह्मण शुक्राचार्यके पास जो मृतसंजीविनी-विद्या है, उसे तुम शीघ्र सीख लो, इससे तुम हम देवताओंके साथ यज्ञमें भाग प्राप्त कर सकोगे । राजा वृषपर्वके समीप तुम्हें विप्रवर शुक्राचार्यका दर्शन हो सकता है । वहाँ रहकर वे दानवोंकी रक्षा करते हैं; किंतु जो दानव नहीं हैं, उनकी रक्षा नहीं करते । उनकी आराधना करनेके लिये तुम्हरे अतिरिक्त दूसरा कोई समर्थ नहीं है । उन महात्माकी प्यारी पुत्रीका नाम देवयानी है, उसे अपनी सेवाओंद्वारा तुम्हीं प्रसन्न कर सकते हो । दूसरा कोई इसमें समर्थ नहीं है ।

शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दयेन च।  
देवयान्यां तु तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि धुवम्॥ १९  
तदा हि प्रेषितो देवैः समीपे वृषपर्वणः।  
तथेत्युक्त्वा तु स प्रायाद् बृहस्पतिसुतः कचः॥ २०  
स गत्वा त्वरितो राजन् देवैः सम्पूजितः कचः।  
असुरेन्द्रपुरे शुक्रं प्रणम्येदमुवाच ह॥ २१  
ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद् बृहस्पतेः।  
नामा कचेति विष्ण्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान्॥ २२  
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरो।  
अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन् सहस्रपरिवत्सरान्॥ २३

शुक्र उवाच

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः।  
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः॥ २४

शौनक उवाच

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद् ब्रतम्।  
आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम्॥ २५  
ब्रतं च ब्रतकालं च यथोक्तं प्रत्यगृह्णत।  
आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत॥ २६  
नित्यमाराधयिष्यन्तां युवा यौवनगोचराम्।  
गायन् नृत्यन् वादयन्श्च देवयानीमतोषयत्॥ २७  
संशीलयन् देवयानीं कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्।  
पुष्यैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भार्गवीम्॥ २८  
देवयान्यपि तं विग्रं नियमब्रतचारिणम्।  
अनुगायन्ती ललना रहः पर्यचरत् तदा॥ २९  
पञ्चवर्षशतान्येवं कचस्य चरतो भृशम्।  
तत्तत्तीव्रं ब्रतं बुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम्॥ ३०  
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येनमर्घिताः।  
जगृबृहस्पतेद्वेषान्निजरक्षार्थमेव च॥ ३१  
हत्वा सालावृकेभ्यश्च प्रायच्छंस्तिलशः कृतम्।  
ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वनिवेशनम्॥ ३२

अपने शील-स्वभाव, उदारता, मधुर व्यवहार, सदाचार तथा इन्द्रियसंयमद्वारा देवयानीको संतुष्ट कर लेनेपर तुम निश्चय ही उस विद्याको प्राप्त कर लोगे।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर बृहस्पति-पुत्र कच देवताओंसे सम्मानित हो वहाँसे वृषपर्वणके समीप गया। राजन्! देवताओंद्वारा भेजा गया कच तुरंत दानवराज वृषपर्वणके नगरमें जाकर शुक्राचार्यसे मिला और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—'भगवन्! मैं अङ्गिरा ऋषिका पौत्र तथा साक्षात् बृहस्पतिका पुत्र हूँ। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपने शिष्यके रूपमें ग्रहण करें। ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु हैं। मैं आपके समीप रहकर एक हजार वर्षोंतक उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। इसके लिये आप मुझे अनुमति दें'॥ १४—२३॥

शुक्राचार्यने कहा—कच! तुम्हारा भलीभाँति स्वागत है, मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ। तुम मेरे लिये आदरके पात्र हो, अतः मैं तुम्हारा सम्मान एवं सत्कार करूँगा। तुम्हारे आदर-सत्कारसे मेरे द्वारा बृहस्पतिका (ही) आदर-सत्कार होगा॥ २४॥

शौनकजी कहते हैं—तब कचने 'बहुत अच्छा' कहकर महाकान्तिमान् कविपुत्र शुक्राचार्यके आदेशके अनुसार स्वयं ब्रह्मचर्य-ब्रत ग्रहण किया। राजन्! नियत समयतकके लिये ब्रतकी दीक्षा लेनेवाले कचको शुक्राचार्यने भलीभाँति अपना लिया। कच आचार्य शुक्र तथा उनकी पुत्री देवयानी—दोनोंकी नित्य आराधना करने लगा। वह नवयुवक था और जवानीमें प्रिय लगनेवाले कार्य—गायन और नृत्य करके भाँति-भाँतिके बाजे बजाकर देवयानीको संतुष्ट रखता था। आचार्यकन्या देवयानी भी युवावस्थामें पदार्पण कर चुकी थी। कच उसके लिये फूल और फल ले आता तथा उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करता। (इस प्रकार उसकी सेवामें संलग्न रहकर वह सदा उसे प्रसन्न रखता था।) देवयानी भी नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले कचके ही समीप रहकर गाती और आपोद-प्रपोद करती हुई एकान्तमें उसकी सेवा करती थी। इस प्रकार वहाँ रहकर ब्रह्मचर्य-ब्रतका पालन करते हुए कचके पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब दानवोंको यह बात मालूम हुई। तदनन्तर कचको वनके एकान्त प्रदेशमें अकेले गौएँ चरते देख बृहस्पतिके द्वेषसे और संजीविनी-विद्याकी रक्षाके लिये क्रोधमें भरे हुए दानवोंने कचको मार डाला। उन्होंने मारनेके बाद उसके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों और सियारोंको बाँट दिया। उस दिन गौएँ बिना रक्षकके ही अपने स्थानपर लौटी। जब

ता दृष्ट्वा रहिता गास्तु कचो नाभ्यागतो वनात्।  
 उवाच वचनं काले देवयान्यथ भार्गवम्॥ ३३  
 हुतं चैवाग्निहोत्रं ते सूर्यश्वास्तं गतः प्रभो।  
 अगोपाश्वागता गावः कचस्तात न दृश्यते॥ ३४  
 व्यक्तं हतो धृतो वापि कचस्तात भविष्यति।  
 तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ३५

शुक्र उवाच

अथोद्योहीति शब्देन भृतं संजीवयाम्यहम्।  
 ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुक्त्वा कचमाह्यत्॥ ३६  
 आहूतः प्राद्रवद् दूरात् कचः शुक्रं ननाम सः।  
 हतोऽहमिति चाचख्यौ राक्षसैर्धिषणात्मजः॥ ३७  
 स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहोरे यदृच्छ्या।  
 वनं ययौ कचो विप्रः पठन् ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ३८  
 वने पुष्पाणि चिन्वन्तं ददृशुर्दानवाश्च तम्।  
 ततो द्वितीये तं हत्वा दग्धं कृत्वा च चूर्णवत्।  
 प्रायच्छन् ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा॥ ३९  
 देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत्।  
 पुष्पाहारप्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते॥ ४०  
 व्यक्तं हतो भृतो वापि कचस्तात भविष्यति।  
 तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीमि ते॥ ४१

शुक्र उवाच

बृहस्पते: सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः।  
 विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्ते करवाणि किम्॥ ४२  
 मैवं शुचो मा रुद देवयानि  
 न त्वादृशी मर्त्यमनु प्रशोचेत्।  
 यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च  
 सेन्द्रा देवा वसवोऽश्विनौ च॥ ४३  
 सुरद्विषश्वैव जगच्च सर्व-  
 मुपस्थितं मत्तपसः प्रभावात्।  
 अशक्योऽयं जीवयितुं द्विजातिः  
 स जीवितो यो वध्यते चैव भूयः॥ ४४

देवयानीने देखा, गौएँ तो वनसे लौट आयों, पर उनके साथ कच नहीं है, तब उसने उस समय अपने पितासे इस प्रकार कहा—‘प्रभो! आपने अग्निहोत्र कर लिया और सूर्यदेव भी अस्ताचलको चले गये। गौएँ भी आज बिना रक्षकके ही लौट आयी हैं। तात! तो भी कच नहीं दिखायी देता। पिताजी! अवश्य ही कच या तो मारा गया है या पकड़ लिया गया है। मैं आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी’॥ २५—३५॥

शुक्राचार्यने कहा—(बेटी! चिन्ता न करो।) मैं मरे हुए कचको अभी ‘आओ, आओ’—इस प्रकार बुलाकर जीवित किये देता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने संजीविनी-विद्याका प्रयोग किया और कचको पुकारा। फिर तो गुरुके पुकारनेपर सरस्वतीनन्दन कच दूरसे ही दौड़ पड़ा और शुक्राचार्यके निकट आकर उन्हें प्रणाम कर बोला—‘गुरो! राक्षसोंने मुझे मार डाला था।’ पुनः देवयानीने स्वेच्छानुसार वनसे पुष्प लानेके लिये कचको आज्ञा दी, तब ब्राह्मण कच सनातन ब्रह्म (वेद)-का पाठ करते हुए वनमें गया। दानवोंने वनमें उसे पुष्पोंका चयन करते हुए देख लिया। तत्पश्चात् असुरोंने दूसरी बार मारकर आगमें जलाया और उसकी जली हुई लाशका चूर्ण बनाकर मदिरामें मिला दिया तथा उसे शुक्राचार्यको ही पिला दिया। अब देवयानी पुनः अपने पितासे यह बात बोली—‘पिताजी! आज मैंने उसे फूल लानेके लिये भेजा था, परंतु अभीतक वह दिखायी नहीं दिया। तात! जान पड़ता है कि वह मार दिया गया या मर गया। मैं आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती’॥ ३६—४१॥

शुक्राचार्यने कहा—बेटी! बृहस्पतिका पुत्र कच मर गया। मैंने विद्यासे उसे कई बार जिलाया तो भी वह इस प्रकार मार दिया जाता है, अब मैं क्या करूँ। देवयानि! तुम इस प्रकार शोक न करो, रोओ मत। तुम-जैसी शक्तिशालिनी स्त्री किसी मरनेवालेके लिये शोक नहीं करती। तुम्हें तो वेद, ब्राह्मण, इन्द्रसहित सब देवता, वसुण, अश्विनीकुमार, दैत्य तथा सम्पूर्ण जगत्के प्राणी मेरे प्रभावसे तीनों संध्याओंके समय मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। अब उस ब्राह्मणको जिलाना असम्भव है। यदि जीवित हो जाय तो फिर दैत्योंद्वारा मार डाला जायगा (अतः उसे जिलानेसे कोई लाभ नहीं है।)॥४२—४४॥

देवयान्युवाच

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो  
बृहस्पतिश्शापि पिता तपोनिधिः ।  
ऋषे: सुपुत्रं तमथापि पौत्रं  
कथं न शोचे यमहं न रुद्याम् ॥ ४५  
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च  
सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः ।  
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये  
प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः ॥ ४६

शौनक उवाच

स त्वेवमुक्तो देवयान्या महर्षिः  
संरम्भेण व्याजहाराथ काव्यः ।  
असंशयं मामसुरा द्विष्टन्ति  
ये मे शिष्यानागतान् सूदयन्ति ॥ ४७  
अग्राह्यणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा  
एभिर्वर्थं प्रस्तुतो दानवैर्हि ।  
तत्कर्मणाप्यस्य भवेदिहान्तः  
कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम् ॥ ४८  
स तेनापृष्ठे विद्यया चोपहूतो  
शनैर्वाचं जठरे व्याजहार ।  
तमब्रवीत् केन चेहोपनीतो  
ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि वत्स ॥ ४९

कच उवाच

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः  
सर्वं स्मरेयं यच्च यथा च वृत्तम् ।  
न त्वेवं स्यात् तपसः क्षयो मे  
ततः क्लेशं घोरतरं स्मरामि ॥ ५०  
असुरः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो  
हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य ।  
ब्राह्मीं मायां त्वासुरीं त्वत्र माया  
त्वयि स्थिते कथमेवाभिबाधते ॥ ५१

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से  
विनैव मे जीवितं स्यात् कचस्य ।  
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनाच्च  
दृश्येत् कचो मद्रतो देवयानि ॥ ५२

देवयानी बोली—पिताजी! अत्यन्त वृद्ध महर्षि अङ्गिरा जिसके पितामह हैं, तपस्याके भण्डार बृहस्पति जिसके पिता हैं, जो ऋषिका पुत्र और ऋषिका ही पौत्र है, उस ब्रह्मचारी कचके लिये मैं कैसे शोक न करूँ और कैसे न रोऊँ? तात! वह ब्रह्मचर्यपालनमें रत था, तपस्या ही उसका धन था। वह सदा ही सजग रहनेवाला और कार्य करनेमें कुशल था। इसलिये कच मुझे बहुत प्रिय था। वह सदा मेरे मनके अनुरूप चलता था। अब मैं भोजनका त्याग कर दूँगी और कच जिस मार्गपर गया है, वहाँ मैं भी चली जाऊँगी ॥ ४५-४६ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! देवयानीके कहनेसे उसके दुःखसे दुःखी महर्षि शुक्राचार्यने कचको पुकारा और दैत्योंके प्रति कुपित होकर बोले—‘इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि असुरलोग मुझसे द्वेष करते हैं। तभी तो यहाँ आये हुए मेरे शिष्योंको ये लोग मार डालते हैं। ये भयंकर स्वभाववाले दैत्य मुझे ब्राह्मणत्वसे गिराना चाहते हैं। इसीलिये प्रतिदिन मेरे विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। इस पापका परिणाम यहाँ अवश्य प्रकट होगा। ब्रह्महत्या किसे नहीं जला देगी, चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हों?’ जब गुरुने विद्याका प्रयोग करके बुलाया, तब उनके पेटमें बैठा हुआ कच भयभीत हो धीरेसे बोला। (उसकी आवाज सुनकर) शुक्राचार्यने पूछा—‘वत्स! किस मार्गसे जाकर तुम मेरे उदरमें स्थित हो गये। ठीक-ठीक बताओ’ ॥ ४७-४९ ॥

कचने कहा—गुरुदेव! आपके प्रसादसे मेरी स्मरणशक्तिने साथ नहीं छोड़ा है। जो बात जैसे हुई, वह सब मुझे स्मरण है। इस प्रकार पेट फाड़कर निकल जानेसे मेरी तपस्याका नाश होगा। वह न हो, इसलिये मैं यहाँ घोर क्लेश सहन करता हूँ। आचार्यपाद! असुरोंने मुझे मारकर मेरे शरीरको जलाया और चूर्ण बना दिया। फिर उसे मदिरामें मिलाकर आपको पिला दिया। विप्रवर! आप ब्राह्मी, आसुरी और दैवी—तीनों प्रकारकी मायाओंको जानते हैं। आपके होते हुए कोई इन मायाओंका उल्लङ्घन कैसे कर सकता है? ॥ ५०-५१ ॥

शुक्राचार्य बोले—बेटी देवयानि! अब तुम्हरे लिये कौन-सा प्रिय कार्य करूँ! मेरे वधसे ही कचका जीवित होना सम्भव है। मेरे उदरको विदीर्ण करनेके अतिरिक्त और कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मेरे शरीरमें बैठा हुआ कच बाहर दिखायी दे ॥ ५२ ॥

देवयान्युवाच  
द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां  
कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः।  
कचस्य नाशे मम नास्ति शर्म  
तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥ ५३

शुक्र उवाच  
संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पते: सुत  
यत् त्वां भक्तं भजते देवयानी।  
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं  
न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥ ५४  
न निवर्तेत पुनर्जीवन् कश्चिदन्यो ममोदरात्।  
ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद् विद्यामवाप्नुहि ॥ ५५  
पुत्रो भूत्वा निष्क्रमस्वोदरान्मे  
भित्त्वा कुर्क्षिं जीवय मां च तात ।  
अवेक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां  
गुरोः सकाशात् प्राप्तविद्यां सविद्याः ॥ ५६

शौनक उवाच

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्यां  
भित्त्वा कुर्क्षिं निर्विचक्राम विप्रः।  
प्रालेयाद्रेः शुक्लमुद्दिद्य शृङ्गं  
रात्र्यागमे पौर्णमास्यामिवेन्दुः ॥ ५७  
दृष्ट्वा च तं पतितं वेदराशि-  
मुत्थापयामास ततः कचोऽपि।  
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य  
ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच ॥ ५८  
निधिं निधीनां वरदं वराणां  
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयम्।  
प्रालेयाद्रिप्रोज्ज्वलद्वालसंस्थं  
पापाल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः ॥ ५९

शौनक उवाच

सुरापानाद् वञ्जनात् प्रापयित्वा  
संज्ञानाशं चेतसश्चापि घोरम्।  
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं  
पीतं तथा सुरया मोहितेन ॥ ६०  
समन्युरुत्थाय महानुभाव-  
स्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः।  
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद  
सुरापानं प्रत्यसौ जातशङ्कः ॥ ६१

देवयानीने कहा—पिताजी! कचका नाश और आपका वध—ये दोनों ही शोक अग्निके समान मुझे जला देंगे। कचके नष्ट होनेपर मुझे शान्ति नहीं मिलेगी और आपके मरनेपर मैं जीवित न रह सकूँगी ॥ ५३॥

शुक्राचार्य बोले—बृहस्पतिके पुत्र कच! अब तुम सिद्ध हो गये; क्योंकि तुम देवयानीके भक्त हो और वह तुम्हें चाहती है। यदि कचके रूपमें तुम इन्द्र नहीं हो तो मुझसे मृतसंजीविनी-विद्या ग्रहण करो। केवल एक ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो मेरे पेटसे पुनः जीवित निकल सके। इसलिये तुम विद्या ग्रहण करो। तात! मेरे इस शरीरसे जीवित निकलकर मेरे लिये पुत्रके तुल्य हो मुझे पुनः जिला देना। मुझ गुरुसे विद्या प्राप्त करके विद्वान् हो जानेपर भी मेरे प्रति धर्मयुक्त दृष्टिसे ही देखना ॥ ५४—५६॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! गुरुसे संजीविनी-विद्या प्राप्त करके विप्रवर कच तत्काल ही महर्षि शुक्राचार्यका पेट फाड़कर ठीक उसी तरह निकल आया, जैसे दिन बीतनेपर पूर्णिमाकी संध्याके समय हिमालय पर्वतके श्वेत शिखरको भेदकर चन्द्रमा प्रकट हो जाते हैं। मूर्तिमान् वेदराशिके तुल्य शुक्राचार्यको भूमिपर पड़ा देख कचने भी अपने मेरे हुए गुरुको (संजीविनी)-विद्याको प्राप्त कर लेनेपर गुरुको प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला—‘जो लोग निधियोंके भी निधि, श्रेष्ठ लोगोंको भी वरदान देनेवाले, मस्तकपर हिमालय पर्वतके समान श्वेत केशधारी पूजनीय गुरुदेवका (उनसे विद्या प्राप्त करके भी) आदर नहीं करते, वे प्रतिष्ठारहित होकर पापपूर्ण लोकों—नरकोंमें जाते हैं’ ॥ ५७—५९॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! विद्वान् शुक्राचार्य मदिरापानसे ठगे गये थे और उस अत्यन्त भयानक परिस्थितिको पहुँच गये थे, जिसमें तनिक भी चेत नहीं रह जाता। मदिरासे मोहित होनेके कारण ही वे उस समय अपने मनके अनुकूल चलनेवाले प्रिय शिष्य ब्राह्मणकुमार कचको भी पी गये थे। यह सब देख और सोचकर वे महानुभाव कविपुत्र शुक्र कुपित हो उठे। मदिरा-पानके प्रति उनके मनमें क्रोध और धृणाका भाव जाग उठा और उन्होंने ब्राह्मणोंका हित करनेकी इच्छासे स्वयं इस प्रकार घोषणा की ॥ ६०-६१॥

शुक्र उवाच

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभूतीह कश्चि-  
मोहात् सुरं पास्यति मन्दबुद्धिः ।  
अपेतर्थमा ब्रह्महा चैव स स्या-

दस्मिल्लोके गर्हितः स्यात् परे च ॥ ६२

मया चेमां विप्रधर्मोक्तसीमां  
मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।  
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरुणां  
देवा दैत्याश्रोपशृण्वन्तु सर्वे ॥ ६३

शौनक उवाच

इतीदमुक्त्वा स महाप्रभाव-  
स्तो निधीनां निधिरप्रमेयः ।  
तान् दानवांश्चैव निगूढबुद्धी-  
निदं समाहूय वचोऽभ्युवाच ॥ ६४

शुक्र उवाच

आचक्षे वो दानवा बालिशाः स्थ  
शिष्यः कचो वत्स्यति मत्समीपे ।  
संजीवनीं प्राप्य विद्यां मयायं  
तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः ॥ ६५

शौनक उवाच

गुरोरुष्य सकाशे च दशवर्षशतानि सः ।  
अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥ ६६

॥ इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५ ॥

शुक्राचार्यने कहा—आजसे (इस जगत्का) जो कोई भी मन्दबुद्धि ब्राह्मण अज्ञानसे भी मदिरापान करेगा, वह धर्मसे भ्रष्ट हो ब्रह्महत्याके पापका भागी होगा तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें निन्दित होगा । धर्मशास्त्रोंमें ब्राह्मण-धर्मकी जो सीमा निर्धारित की गयी है, उसीमें मेरे द्वारा स्थापित की हुई यह मर्यादा भी रहे और सम्पूर्ण लोकमें मान्य हो । साधु पुरुष, ब्राह्मण, गुरुओंके समीप अध्ययन करनेवाले शिष्य, देवता और समस्त जगत्के मनुष्य मेरी बाँधी हुई इस मर्यादाको अच्छी तरह सुन लें ॥ ६२-६३ ॥

शौनकजी कहते हैं—ऐसा कहकर तपस्याकी निधियोंकी निधि, अप्रमेय शक्तिशाली महानुभाव शुक्राचार्यने, दैवने जिनकी बुद्धिको मोहित कर दिया था, उन दानवोंको बुलाया और इस प्रकार कहा ॥ ६४ ॥

शुक्राचार्यने कहा—‘दानवो! तुम सब (बड़े) मूर्ख हो । मैं तुम्हें बताये देता हूँ—(महात्मा) कच मुझसे संजीवनी-विद्या पाकर सिद्ध हो गया है । इसका प्रभाव मेरे ही समान है । यह ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप है ॥ ६५ ॥

शौनकजी कहते हैं—कचने (इस प्रकार) एक हजार वर्षोंतक गुरुके समीप रहकर अपना व्रत पूरा कर लिया । तब (गुरुसे) घर जानेकी अनुमति मिल जानेपर उसने देवलोकमें जानेका विचार किया ॥ ६६ ॥

## छब्बीसवाँ अध्याय

देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति  
तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना

शौनक उवाच

समापितव्रतं तं तु विसृष्टं गुरुणा तदा ।

प्रस्थितं त्रिदशावास देवयानीदमब्रवीत् ॥ १

शौनकजी कहते हैं—जब कचका व्रत समाप्त हो गया और गुरु (शुक्राचार्य)—ने उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह देवलोक जानेको उद्यत हुआ । उस समय देवयानीने उससे इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

## देवयान्युवाच

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च।  
भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च॥ २  
ऋषिर्यथाङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः।  
तथा मान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः॥ ३  
एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद् ब्रवीमि तपोधन।  
ब्रतस्थे नियमोपेते यथा वर्तम्यहं त्वयि॥ ४  
स समापितविद्यो मां भक्तां न त्यक्तुमर्हसि।  
गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम्॥ ५

## कच उवाच

पूज्यो मान्यश्च भगवान् यथा मम पिता तव।  
तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतमा मता॥ ६  
आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः।  
त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम॥ ७  
यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव।  
देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि॥ ८

## देवयान्युवाच

गुरुपुत्रस्य पुत्रो मे न तु त्वमसि मे पितुः।  
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम॥ ९  
असुरैर्हन्यमाने तु कच त्वयि पुनः पुनः।  
तदाप्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे॥ १०  
सौहार्द्ये चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम्।  
न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसाम्॥ ११

## कच उवाच

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते।  
प्रसीद सुभु मह्यं त्वं गुरोर्गुरुतरा शुभे॥ १२  
यत्रोषितं विशालाक्षित्वया चन्द्रनिभानने।  
तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भामिनि॥ १३  
भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने।  
सुखेनाध्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम॥ १४

देवयानी बोली—महर्षि अङ्गिराके पौत्र! तुम सदाचार, उत्तम कुल, विद्या, तपस्या तथा इन्द्रियसंयम आदिसे बड़ी शोभा पा रहे हो। महायशस्वी महर्षि अङ्गिरा जिस प्रकार मेरे पिताजीके लिये माननीय हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पिता बृहस्पतिजी मेरे लिये आदरणीय तथा पूज्य हैं। तपोधन! ऐसा जानकर मैं जो कहती हूँ, उसपर विचार करो। तुम जब ब्रत और नियमोंके पालनमें लगे थे, उन दिनों मैंने तुम्हारे साथ जो बर्ताव किया है, (आशा है,) उसे तुम भूले नहीं होगे। अब तुम ब्रत समाप्त करके अपनी अभीष्ट विद्या प्राप्त कर चुके हो। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ; तुम मुझे स्वीकार करो; अतः वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिवत् मेरा पाणिग्रहण करो॥ २—५॥

कचने कहा—निर्दोष अङ्गोंवाली देवयानी! जैसे तुम्हारे पिता शुक्राचार्य मेरे लिये पूजनीय और माननीय हैं, वैसे ही तुम हो; बल्कि उनसे भी बढ़कर मेरी पूजनीया हो। भद्रे! महात्मा भार्गवको तुम प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। गुरुपुत्री होनेके कारण धर्मकी दृष्टिसे मेरी सदा पूजनीया हो। देवयानी! जैसे मेरे गुरुदेव तुम्हारे पिता शुक्राचार्य सदा मेरे माननीय हैं, उसी प्रकार तुम हो; अतः तुम्हें मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ६—८॥

देवयानी बोली—द्विजोत्तम! तुम मेरे गुरुके पुत्र हो, मेरे पिताके नहीं; (अतः मेरे भाई नहीं लगते, पर) मेरे पूजनीय और माननीय हो। कच! जब असुर तुम्हें बार-बार मार डालते थे, तबसे लेकर आजतक तुम्हारे प्रति मेरा जो प्रेम रहा है, उसे तुम्हीं स्मरण करो। तुम्हें मेरे सौहार्द और अनुराग तथा मेरी उत्तम भक्तिका परिचय मिल चुका है। तुम धर्मके ज्ञाता भी हो। मैं तुम्हारे प्रति भक्ति रखनेवाली निरपराध अबला हूँ। तुम्हें मेरा त्याग करना (कदापि) उचित नहीं है॥ ९—११॥

कचने कहा—उत्तम ब्रतका आचरण करनेवाली सुन्दरि! तुम मुझे ऐसे कार्यमें प्रवृत्त कर रही हो, जो कदापि उचित नहीं है। शुभे! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। तुम मेरे लिये गुरुसे भी बढ़कर श्रेष्ठ हो। विशाल नेत्र तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली भामिनि! शुक्राचार्यके जिस उदरमें तुम रह चुकी हो, उसीमें मैं भी रहा हूँ। इसलिये भद्रे! धर्मकी दृष्टिसे तुम मेरी बहन हो; अतः शुभानने! मुझसे ऐसी बात न कहो। कल्याणि! मैं तुम्हारे यहाँ बड़े सुखसे रहा हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी रोष नहीं है।

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमस्त्वथ मे पथि ।  
अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ॥ १५  
अप्रमत्तोद्यता नित्यमाराधय गुरुं मम ।

देवयान्युवाच

दैत्यैर्हतस्त्वं यद्भृत्युद्ध्या त्वं रक्षितो मया ॥ १६  
यदि मां धर्मकामार्था प्रत्याख्यास्यसि धर्मतः ।  
ततः कच न ते विद्या सिद्धिरेषा गमिष्यति ॥ १७

कच उवाच

गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याख्यास्ये न दोषतः ।  
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्व माम् ॥ १८  
आर्ष धर्म ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया ।  
शसुं नाहेऽस्मि कल्याणि कामतोऽद्य च धर्मतः ॥ १९  
तस्माद् भवत्या यः कामो न तथा सम्भविष्यति ।  
ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति ॥ २०  
फलिष्यति न मे विद्या त्वद्वचश्चेति तत् तथा ।  
अध्यापयिष्यामि च यं तस्य विद्या फलिष्यति ॥ २१

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठ देवयानीं कचस्तदा ।  
त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः ॥ २२  
तमागतमभिप्रेक्ष्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ।  
बृहस्पतिं सभाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः ॥ २३

देवा ऊचुः

त्वं कचास्मद्वितं कर्म कृतवान् महदद्धुतम् ।  
न ते यशः प्रणशिता भागभाक् च भविष्यसि ॥ २४

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे यथातिचरिते षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें यथाति-चरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

अब मैं जाऊँगा, इसलिये तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ; आशीर्वाद दो कि मार्गमें मेरा मङ्गल हो। धर्मकी अनुकूलता रखते हुए बातचीतके प्रसङ्गमें कभी मेरा भी स्मरण कर लेना और सदा सावधान एवं सजग रहकर मेरे गुरुदेव (अपने पिता शुक्राचार्य) की सेवामें लगी रहना ॥ १२—१५ १२ ॥

देवयानी बोली—कच ! दैत्योंद्वारा बार-बार तुम्हारे मारे जानेपर मैंने पति-बुद्धिसे ही तुम्हारी रक्षा की है (अर्थात् पिताद्वारा जीवनदान दिलाया है, इसीलिये) मैंने धर्मानुकूल कामके लिये तुमसे प्रार्थना की है। यदि तुम मुझे डुकरा दोगे तो यह संजीविनी-विद्या तुम्हारे कोई काम न आयेगी ॥ १६—१७ ॥

कचने कहा—देवयानी ! गुरुपुत्री समझकर ही मैंने तुम्हारे अनुरोधको टाल दिया है, तुममें कोई दोष देखकर नहीं। गुरुजी भी इसे जानते-मानते हैं। स्वेच्छासे मुझे शाप भी दे दो। बहन ! मैं आर्ष-धर्मकी बात कर रहा था। इस दशामें तुम्हारे द्वारा शाप पानेके योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्मके अनुसार नहीं, कामके वशीभूत होकर आज शाप दिया है, इसलिये तुम्हारे मनमें जो कामना है, वह पूरी नहीं होगी। कोई भी ऋषिपुत्र (ब्राह्मणकुमार) कभी तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा। तुमने जो मुझे यह कहा कि तुम्हारी विद्या सफल नहीं होगी, सो ठीक है; किंतु मैं जिसे यह पढ़ा दूँगा, उसकी विद्या तो सफल होगी ही ॥ १८—२१ ॥

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ शतानीक ! द्विजश्रेष्ठ कच देवयानीसे ऐसा कहकर तत्काल बड़ी उतावलीके साथ इन्द्रलोकको चला गया। उसे आया देख इन्द्रादि देवता बृहस्पतिजीकी सेवामें उपस्थित हो उन्हें साथ ले आगे बढ़कर बड़ी प्रसन्नतासे कचसे इस प्रकार बोले ॥ २२—२३ ॥

देवता बोले—कच ! तुमने हमारे हितके लिये यह बड़ा अद्भुत कार्य किया है, अतः तुम्हारे यशका कभी लोप नहीं होगा और तुम यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी होओगे ॥ २४ ॥

## सत्ताईसवाँ अध्याय

देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको यातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यके साथ वार्तालाप

शौनक उवाच

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः।  
कचादवेत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ् ॥ १  
सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाबुवन्।  
कालस्त्वद्विक्रमस्याद्य जहि शत्रून् पुरंदर ॥ २  
एवमुक्तस्तु सह तैस्त्रिदशैर्मधवांस्तदा।  
तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यद् विपिने स्त्रियः ॥ ३  
क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे।  
वायुर्भूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत् ॥ ४  
ततो जलात् समुत्तीर्य ताः कन्याः सहितास्तदा।  
वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथा संस्थान्यनेकशः ॥ ५  
तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा।  
व्यतिक्रममजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः ॥ ६  
ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत।  
देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते ॥ ७

देवयान्युवाच

कस्माद् गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि।  
समुदाचारहीनाया न ते श्रेयो भविष्यति ॥ ८

शर्मिष्ठोवाच

आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम।  
स्तौति पृच्छति चाभीक्षणं नीचस्थः सुविनीतवत् ॥ ९  
याचतस्त्वं च दुहिता स्तुवतः प्रतिगृहतः।  
सुताहं स्तूयमानस्य ददतो न तु गृहतः ॥ १०

शौनकजी कहते हैं—भरतर्षभ! जब कच मृतसंजीविनी-विद्या सीखकर आ गये, तब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कचसे उस विद्याको पढ़कर कृतार्थ हो गये। फिर सबने मिलकर इन्द्रसे कहा—‘पुरंदर! अब आपके लिये पराक्रम करनेका समय आ गया है, अपने शत्रुओंका संहार कीजिये।’ संगठित होकर आये हुए देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्र ‘बहुत अच्छा’ कहकर भूलोकमें आये। वहीं एक वनमें उन्होंने बहुत-सी स्त्रियोंको देखा। वह वन चैत्ररथ\* नामक देवोद्यानके समान मनोहर था। उसमें वे कन्याएँ जलक्रीडा कर रही थीं। इन्द्रने वायुका रूप धारण करके उनके सारे कपड़े परस्पर मिला दिये। तब वे सभी कन्याएँ एक साथ जलसे निकलकर अपने-अपने अनेक प्रकारके वस्त्र, जो निकट ही रखे हुए थे, लेने लगीं। उस सम्मिश्रणमें शर्मिष्ठाने देवयानीका वस्त्र ले लिया। शर्मिष्ठा वृषपर्वकी पुत्री थी। दोनोंके वस्त्र मिल गये हैं, इस बातका उसे पता न था। राजेन्द्र! वस्त्रोंकी उस अदला-बदलीको लेकर देवयानी और शर्मिष्ठा—दोनोंमें वहाँ परस्पर बड़ा भारी विरोध खड़ा हो गया ॥ १—७ ॥

देवयानी बोली—अरी दानवकी बेटी! मेरी शिष्या होकर तू मेरा वस्त्र कैसे ले रही है? तू सज्जनोंके उत्तम आचारसे शून्य है, अतः तेरा भला न होगा ॥ ८ ॥

शर्मिष्ठाने कहा—अरी! मेरे पिता बैठे हों या सो रहे हों, उस समय तेरा पिता विनयशील सेवकके समान नीचे खड़ा होकर बार-बार वन्दीजनोंकी भाँति उनकी स्तुति करता है। तू भिखमंगेकी बेटी है, तेरा बाप स्तुति करता और दान लेता है। मैं उनकी बेटी हूँ, जिनकी स्तुति की जाती है, जो दूसरोंको दान देते हैं और स्वयं किसीसे कुछ भी नहीं लेते।

\* जैसे इन्द्रके वनका नाम नन्दन है, वैसे वरुणका उद्यान चैत्ररथ है।

अनायुधा सायुधायाः किं त्वं कुप्यसि भिक्षुकिः ।  
लप्यसे प्रतियोद्धारं न च त्वां गणयाम्यहम् ॥ ११

शौनक उवाच

सा विस्मयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि ।  
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे ततः स्वपुरमाविशत् ॥ १२  
हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्रया ।  
अनवेक्ष्य यथौ तस्मात् क्रोधवेगपरायणा ॥ १३  
अथ तं देशमध्यागाद् ययातिर्नहुषात्मजः ।  
श्रान्तयुग्यः श्रान्तरूपो मृगलिप्सुः पिपासितः ॥ १४  
नाहुषिः प्रेक्षमाणो हि स निपाते गतोदके ।  
ददर्श कन्यां तां तत्र दीपामग्निशिखामिव ॥ १५  
तामपृच्छत् स दृष्टैव कन्यामरवर्णिनीम् ।  
सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्मुना ॥ १६  
का त्वं चारुमुखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला ।  
दीर्घ ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छ्रवसिषि चातुरा ॥ १७  
कथं च पतिता ह्यस्मिन् कूपे वीरुत्तणावृते ।  
दुहिता चैव कस्य त्वं वद सर्वं सुमध्यमे ॥ १८

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान् दैत्यानुत्थापयति विद्यया ।  
तस्य शुक्रस्य कन्याहं त्वं मां नूनं न बुध्यसे ॥ १९  
एष मे दक्षिणो राजन् पाणिस्ताप्ननखाङ्गुलिः ।  
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः ॥ २०  
जानामि त्वां च संशानं वीर्यवनं यशस्विनम् ।  
तस्मान्मां पतितामस्मात्कूपादुद्धर्तुर्मर्हसि ॥ २१

शौनक उवाच

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः ।  
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुजहार ततोऽवटात् ॥ २२  
उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात् कूपान्नराधिपः ।  
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं यथौ ॥ २३

अरी भिक्षुकि ! तू खाली हाथ है, तेरे पास कोई अस्त्र-शस्त्र भी नहीं है। और देख ले, मेरे पास हथियार है। इसलिये तू मेरे ऊपर व्यर्थ ही क्रोध कर रही है। यदि लड़ना ही चाहती है तो इधरसे भी डटकर सामना करनेवाली मुझ-जैसी योद्धी तुझे मिल जायगी। मैं तुझे कुछ भी नहीं गिनती ॥९—११॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! यह सुनकर देवयानी आश्वर्यचकित हो गयी और शर्मिष्ठाके शरीरसे अपने वस्त्रको खींचने लगी। यह देख शर्मिष्ठाने उसे कुएँमें ढकेल दिया और अब वह (झूबकर) मर गयी होगी—ऐसा समझकर पापमय विचारवाली शर्मिष्ठा नगरको लौट आयी। वह क्रोधके आवेशमें थी, अतः देवयानीकी ओर देखे बिना घर लौट गयी। तदनन्तर नहुषपुत्र ययाति उस स्थानपर आये। उनके रथके वाहन तथा अन्य घोड़े भी थक गये थे। वे भी थकावटसे चूर हो गये थे। वे एक हिंसक पशुको पकड़नेके लिये उसके पीछे-पीछे आये थे और प्याससे कष पा रहे थे। ययाति उस जलशून्य कूपको देखने लगे। वहाँ उन्हें अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एक कन्या दिखायी दी, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही नृपश्रेष्ठ ययातिने पहले परम मधुर वचनोंद्वारा शान्तभावसे उसे आश्वासन दिया और पूछा—‘सुमध्यमे ! तुम कौन हो ? तुम्हारा मुख परम मनोहर है। तुम्हारी अवस्था भी अभी बहुत अधिक नहीं दीखती। तुम्हारे कानोंके मणिमय कुण्डल अत्यन्त सुन्दर और चमकीले हैं। तुम किसी अत्यन्त घोर चिन्तामें पड़ी हो ? आतुर होकर लम्बी साँस क्यों ले रही हो ? तृण और लताओंसे ढके हुए इस कुएँमें कैसे गिर पड़ी ? तुम किसकी पुत्री हो ? सब ठीक-ठीक बताओ’॥ १२—१८॥

देवयानी बोली—जो देवताओंद्वारा मारे गये दैत्योंको अपनी विद्याके बलसे जिलाया करते हैं, उन्हीं शुक्राचार्यकी मैं पुत्री हूँ। निश्चय ही आप मुझे पहचानते नहीं हैं। महाराज ! लाल नख और अङ्गुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ है। इसे पकड़कर आप इस कुएँसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं जानती हूँ, आप उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए नरेश हैं। मुझे यह भी ज्ञात है कि आप परम शान्त स्वभाववाले, पराक्रमी तथा यशस्वी वीर हैं। इसलिये इस कुएँमें गिरी हुई मुझ अबलाका आप यहाँसे उद्धार कीजिये ॥१९—२१॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर नहुषपुत्र राजा ययातिने देवयानीको ब्राह्मण-कन्या जानकर उसका दाहिना हाथ अपने हाथमें ले उसे उसे कुएँसे बाहर निकाला। इस प्रकार वेगपूर्वक उसे कुएँसे बाहर निकालकर राजा ययाति सुन्दरी देवयानीकी अनुमति लेकर अपने

गते तु नाहुषे तस्मिन् देवयान्यप्यनिन्दिता ।  
उवाच शोकसंतसा घूर्णिकामागतां पुनः ॥ २४  
देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्षव मे पितुः ।  
नेदार्नीं तु प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ॥ २५  
शौनक उवाच

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिकासुरमन्दिरम् ।  
दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं कम्पमाना विचेतना ॥ २६  
आचख्यौ च महाभागा देवयानी वने हता ।  
शर्मिष्ठ्या महाप्राज्ञ दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ २७  
श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तदा शर्मिष्ठ्या हताम् ।  
त्वरया निर्वयौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने ॥ २८  
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने ।  
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २९  
आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जनाः ।  
मन्ये दुश्चरितं तस्मिंस्तस्येयं निष्कृतिः कृता ॥ ३०

देवयान्युवाच

निष्कृतिवास्तु वा मास्तु शृणुष्वावहितो मम ।  
शर्मिष्ठ्या यदुक्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ३१  
सत्यं किलैतत् सा प्राह दैत्यानामस्मि गायना ।  
एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३२  
वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम् ।  
स्तुवतो दुहितासि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः ॥ ३३  
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ।  
इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः ।  
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णानना ततः ॥ ३४  
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः ।  
प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखी मया ॥ ३५

नगरको चले गये । नहुषनन्दन ययातिके चले जानेपर सती-साध्वी देवयानी शोकसे संतस हो अपने सामने आयी हुई धाय घूर्णिकासे बोली ॥ २२—२४ ॥

देवयानीने कहा—घूर्णिके ! तुम तुरंत वेगपूर्वक यहाँसे जाओ और शीघ्र मेरे पिताजीसे सब वृत्तान्त कह दो । अब मैं (राजा) वृषपर्वाके नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी—उस नगरमें पैर नहीं रखूँगी ॥ २५ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! देवयानीकी बात सुनकर घूर्णिका तुरंत असुरराजके महलमें गयी और वहाँ शुक्राचार्यको देखकर काँपती हुई उसने सम्भ्रमपूर्ण चित्तसे वह बात बतला दी । उसने कहा—‘महाप्राज्ञ ! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके द्वारा देवयानी वनमें मार डाली (मृततुल्य कर दी) गयी है ।’ अपनी पुत्रीको शर्मिष्ठाद्वारा मृततुल्य की गयी सुनकर शुक्राचार्य बड़ी उतावलीके साथ निकले और दुःखी होकर उसे वनमें ढूँढ़ने लगे । तदनन्तर वनमें अपनी बेटी देवयानीको देखकर शुक्राचार्यने दोनों भुजाओंसे उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया और दुःखी होकर कहा—‘बेटी ! सब लोग अपने ही दोष और गुणोंसे—अशुभ या शुभ कर्मोंसे दुःख एवं सुखमें पड़ते हैं । मालूम होता है, तुमसे कोई बुरा कर्म बन गया था, जिसका तुमने इस रूपमें प्रायश्चित्त किया है’ ॥ २६—३० ॥

देवयानी बोली—पिताजी ! मुझे अपने कर्मोंके फलसे निस्तार हो या न हो, आप मेरी बात ध्यान देकर सुनिये । वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने आज मुझसे जो कुछ कहा है, क्या यह सच है ? वह कहती है—मैं भाटोंकी तरह दैत्योंके गुण गाया करती हूँ । वृषपर्वाकी लाडिली शर्मिष्ठा क्रोधसे लाल आँखें करके आज मुझसे इस प्रकार अत्यन्त तीखे और कठोर वचन कह रही थी । ‘देवयानी ! तू स्तुति करनेवाले, नित्य भीख माँगनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी है और मैं तो उन महाराजकी पुत्री हूँ, जिनकी तुम्हारे पिता स्तुति करते हैं, जो स्वयं दान देते हैं और लेते (किसीसे) एक अधेला भी नहीं हैं ।’ वृषपर्वाकी बेटी शर्मिष्ठाने आज मुझसे ऐसी बात कही है । कहते समय उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं । वह भारी घमंडसे भरी हुई थी । तात ! यदि सचमुच मैं स्तुति करनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी हूँ तो मैं शर्मिष्ठाको अपनी सेवाओंद्वारा प्रसन्न करूँगी । यह बात मैंने अपनी सखीसे कह दी थी । (मेरे ऐसा कहनेपर भी अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई शर्मिष्ठाने उस निर्जन वनमें मुझे पकड़कर कुएँमें ढकेल दिया । उसके बाद वह अपने घर चली गयी) ॥ ३१—३५ ॥

शुक्र उवाच

स्तुवतो दुहिता न त्वं भद्रे न प्रतिगृह्णतः ।  
 अतस्त्वं स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि ॥ ३६  
 वृषपर्वैव तद् वेद शक्रो राजा च नाहृषः ।  
 अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम ॥ ३७

शुक्राचार्यने कहा—देवयानी ! तू स्तुति करनेवाले, भीख माँगनेवाले या दान लेनेवालेकी बेटी नहीं है । तू उस पवित्र ब्राह्मणकी पुत्री है, जो किसीकी स्तुति नहीं करता और जिसकी सब लोग स्तुति करते हैं । इस बातको वृषपर्वा, देवराज इन्द्र तथा राजा ययाति जानते हैं । निर्द्वन्द्व अचिन्त्य ब्रह्म ही मेरा ऐश्वर्ययुक्त बल है ॥ ३६-३७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥  
 इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययातिचरित नामक सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

## अट्टाईसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष

शुक्र उवाच

यः परेषां नरो नित्यमतिवादांस्तितिक्षति ।  
 देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ १  
 यः समुत्पतिं क्रोधं निगृह्णति हयं यथा ।  
 स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते ॥ २  
 यः समुत्पतिं क्रोधमक्रोधेन नियच्छति ।  
 देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ॥ ३  
 यः समुत्पतिं कोपं क्षमयैव निरस्यति ।  
 यथोरगस्त्वचं जीर्णा स वै पुरुष उच्यते ॥ ४  
 यस्तु भावयते धर्म योऽतिमात्रं तितिक्षति ।  
 यस्य तसो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम् ॥ ५  
 यो यजेदश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः ।  
 यस्तु कुप्येन्न सर्वस्य तयोरक्रोधनो वरः ॥ ६  
 ये कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः ।  
 नैतत् प्राज्ञस्तु कुर्वीत विदुस्ते न बलाबलम् ॥ ७

शुक्राचार्यने कहा—बेटी देवयानी ! तुम इसे निश्चय जानो, जो मनुष्य सदा दूसरोंके कठोर वचन (दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा) -को सह लेता है, उसने मानो इस सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त कर ली । जो उभरे हुए क्रोधको घोड़ेके समान वशमें कर लेता है, वही सत्पुरुषोंद्वारा सच्चा सारथि कहा गया है; जो केवल बागडोर या लगाम पकड़कर लटकता रहता है, वह नहीं । देवयानी ! जो उत्पन्न हुए क्रोधको अक्रोध (क्षमाभाव) -द्वारा मनसे निकाल देता है, समझ लो, उसने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया । जैसे साँप पुरानी केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार जो मनुष्य उभड़नेवाले क्रोधको वहीं क्षमाद्वारा त्याग देता है, वही श्रेष्ठ पुरुष कहा गया है । जो श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करता है, कड़ी-से-कड़ी निन्दा सह लेता है और दूसरेके सतानेपर भी दुःखी नहीं होता, वही सब पुरुषार्थीका सुदृढ़ पात्र है । एक व्यक्ति, जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक मासमें अश्वमेधयज्ञ करता जाता है और दूसरा जो किसीपर भी क्रोध नहीं करता, उन दोनोंमें क्रोध न करनेवाला ही श्रेष्ठ है । अबोध बालक और बालिकाएँ अज्ञानवश आपसमें जो वैर-विरोध करते हैं, उसका अनुकरण समझदार मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे नादान बालक दूसरोंके बलाबलको नहीं जानते ॥ १-७ ॥

## देवयान्युवाच

वेदाहं तात बालापि कार्याणां तु गतागतम्।  
 क्रोधे चैवातिवादे वा कार्यस्यापि बलाबले ॥ ८  
 शिष्यस्याशिष्यवृत्तं हि न क्षन्तव्यं बुभूषणा।  
 असत्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते ॥ ९  
 पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।  
 न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थीं पापबुद्धिषु ॥ १०  
 ये नैनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।  
 तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ११  
 तन्मे मथ्नाति हृदयमग्निकल्पमिवारणिम्।  
 वागदुरुक्तं महाधोरं दुहितुर्वृषपर्वणः ॥ १२  
 न ह्यतो दुष्करं मन्ये तात लोकेष्वपि त्रिषु।  
 यः सपलश्रियं दीसां हीनश्रीः पर्युपासते ॥ १३

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरितेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययातिचरितविषयक अट्टाइसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

## उन्तीसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना

## शौनक उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह।  
 वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥ १  
 नाधर्मश्श्रितो राजन् सद्यः फलति गौरिव।  
 शनैरावर्त्यमानस्तु मूलान्यपि निकृन्तति ॥ २  
 यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पश्यति नमृषु।  
 पापमाचरितं कर्म त्रिवर्गमतिवर्तते ॥ ३

देवयानी बोली—पिताजी ! यद्यपि मैं अभी (नादान) बालिका हूँ, फिर भी धर्म-अधर्मका अन्तर समझती हूँ। क्षमा और निन्दाकी सबलता और निर्बलताका भी मुझे ज्ञान है; परंतु जो शिष्य होकर भी शिष्योचित बर्ताव नहीं करता, अपना हित चाहनेवाले गुरुको उसकी धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इन संकीर्ण आचार-विचारवाले दानवोंके बीच निवास करना अब मुझे अच्छा नहीं लगता। जो पुरुष दूसरोंके सदाचार और कुलकी निन्दा करते हैं, उन पापपूर्ण विचारवाले मनुष्योंमें कल्याणकी इच्छावाले विद्वान् पुरुषको नहीं रहना चाहिये। जो लोग आचार, व्यवहार अथवा कुलीनताकी प्रशंसा करते हों, उन साधु पुरुषोंमें ही निवास करना चाहिये और वही निवास श्रेष्ठ कहा जाता है। तात ! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने जो अत्यन्त भयंकर दुर्वचन कहा है, वह मेरे हृदयको ठीक उसी तरह मथ रहा है, जैसे अग्नि प्रकट करनेकी इच्छावाला पुरुष अरणीकाष्ठका मन्थन करता है। इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात मैं तीनों लोकोंमें और कुछ नहीं मानती, जो स्वयं श्रीहीन होकर शत्रुओंकी चमकती हुई (सातिशय) लक्ष्मीकी उपासना करता है (उस दुःखी मनुष्यका तो मर जाना ही अच्छा है) ॥ ८—१३ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! देवयानीकी बात सुनकर भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्य बड़े क्रोधमें भरकर वृषपर्वाके समीप गये। वह राजसिंहासनपर बैठा हुआ था। शुक्राचार्यजीने बिना कुछ सोचे-विचारे उससे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—‘राजन् ! जो (लोकमें) अधर्म किया जाता है, उसका फल तुरंत नहीं मिलता। जैसे गायकी सेवा करनेपर धीरे-धीरे कुछ कालके बाद वह व्याती और दूध देती है अथवा धरतीको जोत-बोकर बीज डालनेसे कुछ कालके बाद पौधा उगता और यथासमय फल देता है, उसी प्रकार किया जानेवाला अधर्म धीरे-धीरे जड़ काट देता है। यदि वह (पापसे उपार्जित द्रव्यका) दुष्परिणाम न अपने ऊपर दिखायी देता है, न पुत्रों अथवा नाती-पोतोंपर ही तो वह इस त्रिवर्गका अतिक्रमण करके आगेकी पीढ़ियोंपर अवश्य प्रकट होता है।

फलत्येवं धुवं पापं गुरुभुक्तमिवादरे।  
यदा घातयसे विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा॥ ४

अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषं मदगृहे रतम्।  
वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम्॥ ५

वृषपर्वन् निबोध त्वं त्यक्ष्यामि त्वां सबास्थवम्।  
स्थातुं त्वद्विषये राजन् न शक्नोमि त्वया सह॥ ६

अद्यैवमभिजानामि दैत्यं मिथ्याप्रलापिनम्।  
यतस्त्वमात्मनोदीर्णा दुहितां किमुपेक्षसे॥ ७

वृषपर्वोवाच

नावद्यं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव।  
त्वयि सत्यं च धर्मश्च तत् प्रसीदतु मां भवान्॥ ८  
अद्यास्मानपहाय त्वमितो यास्यसि भार्गव।  
समुद्रं सम्प्रवेक्ष्यामि नान्यदस्ति परायणम्॥ ९

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशाध्वं वा दिशो वा व्रजतासुराः।  
दुहितुर्नाप्रियं सोदुं शक्तोऽहं दयिता हि मे॥ १०

प्रसाद्यतां देवयानीं जीवितं यत्र मे स्थितम्।  
योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः॥ ११

वृषपर्वोवाच

यत्किञ्चिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव।  
भुवि हस्तिरथाश्वं वा तस्य त्वं मम चेश्वरः॥ १२

शुक्र उवाच

यत्किञ्चिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर।  
तस्येश्वरोऽस्मि यद्येतद् देवयानी प्रसाद्यताम्॥ १३

जैसे खाया हुआ गरिष्ठ अन्न तुरंत नहीं तो कुछ देर बाद अवश्य ही पेटमें उपद्रव करता है, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी निश्चय ही अपना फल देता है। राजन्! अङ्गिराका पौत्र कच विशुद्ध ब्राह्मण है। वह स्वभावसे ही निष्पाप और धर्मज्ञ है तथा उन दिनों मेरे घरमें रहकर निरन्तर मेरी सेवामें संलग्न था, परंतु तुमने उसका बार-बार वध करवाया था। वृषपर्वन्! ध्यान देकर मेरी यह बात सुन लो, तुम्हारे द्वारा पहले वधके अयोग्य ब्राह्मणका वध किया गया है और अब मेरी पुत्री देवयानीका भी वध करनेके लिये उसे कुएँमें ढकेला गया है। इन दोनों हत्याओंके कारण मैं तुमको और तुम्हारे भाई-बन्धुओंको त्याग दूँगा। राजन्! तुम्हारे राज्यमें और तुम्हारे साथ मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। दैत्यराज! आज मैं तुम-जैसे मिथ्याप्रलापी दैत्यको भलीभाँति समझ सका हूँ। तुम अपनी पुत्रीके उद्धत स्वभावकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो?'॥ १-७॥

वृषपर्वा बोले—भृगुनन्दन! आपने मेरे जानते कभी अनुचित या मिथ्या भाषण नहीं किया। आपमें धर्म और सत्य सदा प्रतिष्ठित हैं। अतः आप हमलोगोंपर कृपा करके प्रसन्न होइये! भार्गव! यदि आप हमें छोड़कर चले जाते हैं तो मैं (तुरन्त) समुद्रमें प्रवेश कर जाऊँगा; क्योंकि हमारे लिये फिर दूसरी कोई गति नहीं है॥ ८-९॥

शुक्राचार्यने कहा—असुरो! तुम लोग समुद्रमें घुस जाओ अथवा चारों दिशाओंमें भाग जाओ, मैं अपनी पुत्रीके प्रति किया गया अप्रिय बर्ताव नहीं सह सकता; क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। तुम देवयानीको प्रसन्न करो; क्योंकि उसीमें मेरे प्राण बसते हैं। उसके प्रसन्न हो जानेपर इन्द्रके पुरोहित बृहस्पतिकी भाँति मैं तुम्हारे योगक्षेमका वहन करता रहूँगा॥ १०-११॥

वृषपर्वा बोले—भृगुनन्दन! असुरेश्वरोंके पास इस भूतलपर जो कुछ भी सम्पत्ति तथा हाथी-घोड़े आदि पशुधन है, उसके और मेरे भी आप ही स्वामी हैं॥ १२॥

शुक्राचार्यने कहा—महान् असुर! दैत्यराजोंका जो कुछ भी धन-वैभव है, यदि उसका स्वामी मैं ही हूँ तो उसके द्वारा इस देवयानीको प्रसन्न करो॥ १३॥

शौनक उवाच

ततस्तु त्वरितः शुक्रस्तेन राजा समं ययौ।  
उवाच चैनां सुभगे प्रतिपन्नं वचस्तव ॥ १४

देवयान्युवाच

यदि त्वमीश्वरस्तात् राजो वित्तस्य भार्गव ।  
नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा वदतु मां स्वयम् ॥ १५

वृषपर्वोवाच

यं काममभिजानासि देवयानि शुचिस्मिते ।  
तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ १६

देवयान्युवाच

दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये ।  
अनुयास्यति मां तत्र यत्र दास्यति मे पिता ॥ १७

वृषपर्वोवाच

उत्तिष्ठ धात्रि गच्छ त्वं शर्मिष्ठां शीघ्रमानय ।  
यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम् ॥ १८

शौनक उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ।  
उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह ॥ १९  
यं सा कामयते कामं स कार्योऽत्र त्वयानघे ।  
दासी त्वमभिजातासि देवयान्याः सुशोभने ॥ २०  
त्वज्जिति ब्राह्मणः शिष्यान् देवयान्या प्रचोदितः ।

शर्मिष्ठोवाच

यं च कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम् ।  
मा गान्मन्युवशं शुक्रो देवयानी च मत्कृते ॥ २१

शौनक उवाच

ततः कन्यासहस्रेण वृता शिविकया तदा ।  
पितुर्निदेशात् त्वरिता निश्क्राम पुरोत्तमात् ॥ २२

शर्मिष्ठोवाच

अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका ।  
धूवं त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥ २३

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर शुक्राचार्य तुरंत ही राजा वृषपर्वाके साथ अपनी पुत्री देवयानीके पास पहुँचे और उससे बोले—‘सुभगे ! तुम्हारी बात पूरी हो गयी’ ॥ १४ ॥

तब देवयानीने कहा—तात भार्गव ! ‘आप राजाके धनके स्वामी हैं’ मैं इस बातको आपके कहनेसे नहीं मानूँगी । राजा स्वयं कहें तो हमें विश्वास होगा ॥ १५ ॥

वृषपर्वा बोले—पवित्र मुसकानवाली देवयानी ! तुम जिस वस्तुको पाना चाहती हो, वह यदि अत्यन्त दुर्लभ हो तो भी मैं उसे तुम्हें अवश्य दूँगा (यह तुम विश्वास करो) ॥ १६ ॥

देवयानीने कहा—मैं चाहती हूँ, शर्मिष्ठा एक हजार कन्याओंके साथ मेरी दासी बनकर रहे और पिताजी जहाँ मेरा विवाह करें, वहाँ भी वह मेरे साथ जाय ॥ १७ ॥

यह सुनकर वृषपर्वाने धायसे कहा—धात्रि ! तुम उठो, जाओ और शर्मिष्ठाको (यहाँ) शीघ्र बुला लाओ एवं देवयानीकी जिस वस्तुकी कामना हो, उसे वह पूर्ण करे ॥ १८ ॥

शौनकजी कहते हैं—तब धायने शर्मिष्ठाके पास जाकर कहा—‘भद्रे शर्मिष्ठे ! उठो और अपने जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाओ । पापरहित राजकुमारी ! आज शुक्राचार्य देवयानीके कहनेसे अपने शिष्यों—यजमानोंको त्याग रहे हैं । अतः देवयानीकी जो कामना हो, वह तुम्हें पूर्ण करनी चाहिये । सुशोभने ! तुम देवयानीकी दासी बनायी गयी हो’ ॥ १९-२० ॥

शर्मिष्ठा बोली—यदि इस प्रकार देवयानीके लिये ही शुक्राचार्यजी मुझे बुला रहे हैं तो देवयानी जो कुछ चाहती हैं, वह सब आजसे मैं करूँगी । मेरे अपराधसे न शुक्राचार्यजी कहीं जायें और न देवयानी ही । मेरे कारण ये अन्यत्र जानेका विचार न करें ॥ २१ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर पिताकी आज्ञासे राजकुमारी शर्मिष्ठा शिविकापर आरूढ़ हो तुरन्त राजधानीसे बाहर निकली । उस समय वह एक सहस्र कन्याओंसे घिरी हुई थी ॥ २२ ॥

शर्मिष्ठा बोली—देवयानी ! मैं एक सहस्र दासियोंके साथ तुम्हारी दासी बनकर सेवा करूँगी और तुम्हारे पिता जहाँ भी तुम्हारा ब्याह करेंगे, निश्चय ही वहाँ तुम्हारे साथ चलूँगी ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच

स्तुवतो दुहिता चाहं याचतः प्रतिगृह्णतः।  
स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि॥ २४  
शर्मिष्ठोवाच

येन केनचिदार्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत्।  
अनुयास्याम्यहं तत्र यत्र दास्यति ते पिता॥ २५

शौनक उवाच

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः।  
देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत्॥ २६

देवयान्युवाच

प्रविशामि पुरं तात तुष्टस्मि द्विजसत्तम्।  
अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते॥ २७

शौनक उवाच

एवमुक्तो द्विजश्रेष्ठो दुहित्रा सुमहायशाः।  
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः॥ २८

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरितवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २९॥

देवयानीने कहा—अरी! मैं तो स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले भिक्षुककी पुत्री हूँ और तुम उस बड़े बापकी बेटी हो, जिसकी मेरे पिता स्तुति करते हैं, फिर मेरी दासी बनकर कैसे रहोगी?॥ २४॥

शर्मिष्ठा बोली—जिस-किसी उपायसे भी सम्भव हो, अपने विपद्ग्रस्त जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाना चाहिये। (इसलिये) तुम्हारे पिता जहाँ तुम्हें देंगे, वहाँ भी मैं तुम्हारे साथ चलूँगी॥ २५॥

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! जब वृषपर्वाकी पुत्रीने दासी होनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब देवयानीने अपने पितासे कहा॥ २६॥

देवयानी बोली—पिताजी! अब मैं नगरमें प्रवेश करूँगी। द्विजश्रेष्ठ! अब मुझे विश्वास हो गया कि आपका विज्ञान और आपकी विद्याका बल अमोघ है॥ २७॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! अपनी पुत्री देवयानीके ऐसा कहनेपर महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने समस्त दानवोंसे पूजित एवं प्रसन्न होकर नगरमें प्रवेश किया॥ २८॥

## तीसवाँ अध्याय

सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वनविहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीके साथ बातचीत तथा विवाह

शौनक उवाच

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम्।  
वनं तदैव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी॥ १  
तेन दासीसहस्रेण सार्थं शर्मिष्ठ्या तदा।  
तमेव देशं सम्प्राप्ता यथाकामं चचार सा॥ २  
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम्।  
क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम्॥ ३  
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च।  
पुनश्च नाहृषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया॥ ४

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उत्तम वर्णवाली देवयानी फिर उसी वनमें विहारके लिये गयी। उस समय उसके साथ एक हजार दासियोंसहित शर्मिष्ठा भी सेवामें उपस्थित थी। वनमें उसी प्रदेशमें जाकर वह उन समस्त सखियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार विचरने लगी। वे सब वहाँ भाँति-भाँतिके खेल खेलती हुई आनन्दमें मग्न हो गयीं। वे कभी वासन्तिक पुष्पोंके मकरन्दका पान करतीं, कभी नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंका स्वाद लेतीं और कभी फल खाती थीं। इसी समय दैवेच्छासे नहुषपुत्र राजा ययाति पुनः शिकार खेलनेके लिये

तमेव देशं सम्प्रासो जललिप्सुः प्रतर्षितः ।  
ददर्श देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः ॥ ५  
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः ।  
उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम् ॥ ६  
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम् ।  
शर्मिष्ठाया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः ॥ ७

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते ।  
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाप्यतो ह्यहम् ॥ ८

देवयान्युवाच

आख्यास्याप्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप ।  
शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ॥ ९  
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी ।  
दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥ १०

ययातिरुवाच

कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी ।  
असुरेन्द्रसुता सुभूः परं कौतूहलं हि मे ॥ ११

देवयान्युवाच

सर्वमेव नरव्याघ विधानमनुवर्तते ।  
विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विचित्रं मनः कृथाः ॥ १२  
राजवद् रूपवेशौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च ।  
किं नामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥ १३

ययातिरुवाच

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः ।  
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥ १४

देवयान्युवाच

केन चार्थेन नृपते होनं देशं समागतः ।  
जिघृक्षुर्वारि यत् किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ॥ १५

ययातिरुवाच

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमिहागतः ।  
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ १६

उसी स्थानपर आ गये । वे परिश्रम करनेके कारण अधिक थक गये थे और जल पीना चाहते थे । उन्होंने देवयानी, शर्मिष्ठा तथा अन्य युवतियोंको भी देखा । वे सभी पीनेयोग्य रसका पान कर रही थीं । राजाने पवित्र मुसकानवाली देवयानीको वहाँ परम सुन्दर आसनपर बैठी हुई देखा । उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी । वह सुन्दरी उन स्त्रियोंके मध्यमें बैठी हुई थी और शर्मिष्ठा उसकी चरणसेवा कर रही थी ॥ १-७ ॥

ययातिने पूछा—दो हजार \* कुमारी सखियोंसे घिरी हुई कन्याओ ! मैं आप दोनोंके गोत्र और नाम पूछ रहा हूँ । शुभे ! आप दोनों अपना परिचय दें ॥ ८ ॥

देवयानी बोली—महाराज ! मैं स्वयं परिचय देती हूँ । आप मेरी बात सुनें । असुरोंके जो सुप्रसिद्ध गुरु शुक्राचार्य हैं, मुझे उन्होंकी पुत्री जानिये । यह दानवराज वृषपर्वतीकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी सखी और दासी है । मैं विवाह होनेपर जहाँ जाऊँगी, वहाँ यह भी साथ जायगी ॥ ९-१० ॥

ययाति बोले—सुन्दरि ! यह असुरराजकी रूपवती कन्या सुन्दर भौंहोंवाली शर्मिष्ठा आपकी सखी और दासी किस प्रकार हुई ? यह बताइये । इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ११ ॥

देवयानी बोली—नरश्रेष्ठ ! सब लोग दैवके विधानका ही अनुसरण करते हैं । इसे भी भाग्यका विधान मानकर संतोष कीजिये । इस विषयकी विचित्र घटनाओंको न पूछिये । आपके रूप और वेश राजके समान हैं और आप विशुद्ध संस्कृत भाषा बोल रहे हैं । मुझे बताइये, आपका क्या नाम है, आप कहाँसे आये हैं और किसके पुत्र हैं ? ॥ १२-१३ ॥

ययातिने कहा—मैंने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक सम्पूर्ण वेदका अध्ययन किया है । मैं राजा नहुषका पुत्र हूँ और इस समय स्वयं राजा हूँ । मेरा नाम ययाति है ॥ १४ ॥

देवयानीने कहा—महाराज ! आप किस कार्यसे वनके इस प्रदेशमें आये हैं ? आप जल अथवा कमल लेना चाहते हैं या शिकारकी इच्छासे ही आये हैं ? ॥ १५ ॥

ययातिने कहा—भद्रे ! मैं एक हिंसक पशुको मारनेके लिये उसका पीछा कर रहा था, इससे बहुत थक गया हूँ और पानी पीनेके लिये यहाँ आया हूँ, अतः अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥

\* यहाँ किन्हीं श्लोकोंमें देवयानीकी दो हजार और किन्हींमें एक हजार सखियोंका उल्लेख हुआ है । यथावसर दोनों ही ठीक हैं ।

देवयान्युवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठ्या सह ।  
त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखे भर्ता च मे भव ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वदर्होऽस्मि भामिनि ।  
अविवाहा: स्म राजानो देवयानि पितुस्तव ॥ १८ ॥

देवयान्युवाच

सृष्टं ब्रहणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रहणि संश्रितम् ।  
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्य भजस्व माम् ॥ १९ ॥

ययातिरुवाच

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने ।  
पृथग्धर्माः पृथक्छौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः ॥ २० ॥

देवयान्युवाच

पाणिग्रहो नाहुषायं न पुम्भः सेवितः पुरा ।  
त्वमेनमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ॥ २१ ॥

कथं तु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान् स्पृशेत् ।  
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ॥ २२ ॥

ययातिरुवाच

कुद्धादाशीविषात् सर्पञ्जलनात् सर्वतोमुखात् ।  
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच

कथमाशीविषात् सर्पञ्जलनात् सर्वतोमुखात् ।  
दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥

ययातिरुवाच

दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।  
हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः ॥ २५ ॥  
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद् भीरु मतो मम ।  
अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवहाम्यहम् ॥ २६ ॥

देवयान्युवाच

दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन् वृतो मया ।  
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृहतः ॥ २७ ॥

देवयानीने कहा—सखे! आपका कल्याण हो। मैं दो हजार कन्याओं तथा अपनी सेविका शर्मिष्ठाके साथ आपके अधीन होती हूँ। आप मेरे पति हो जायँ ॥ १७ ॥

ययाति बोले—शुक्रनन्दिनी देवयानि! आपका भला हो। भामिनि! मैं आपके योग्य नहीं हूँ। क्षत्रियलोग आपके पितासे कन्यादान लेनेके अधिकारी नहीं हैं ॥ १८ ॥

देवयानीने कहा—नहुषनन्दन! ब्राह्मणसे क्षत्रिय जाति और क्षत्रियसे ब्राह्मण जाति मिली हुई है। आप राजर्षिके पुत्र हैं और स्वयं भी राजर्षि हैं; अतः आज मुझसे विवाह कीजिये ॥ १९ ॥

ययाति बोले—वरानने! एक ही परमेश्वरके शरीरसे चारों वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है, परंतु सबके धर्म और शौचाचार अलग-अलग हैं। ब्राह्मण उन सभी वर्णोंमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

देवयानीने कहा—नहुषकुमार! नारीके लिये पाणिग्रहण एक धर्म है। पहले किसी भी पुरुषने मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। सबसे पहले आपने ही मेरा हाथ पकड़ा था। इसलिये आपका ही मैं पतिरूपमें वरण करती हूँ। मैं मनको वशमें रखनेवाली स्त्री हूँ। आप-जैसे राजर्षिकुमार अथवा राजर्षिद्वारा पकड़े गये मेरे हाथका स्पर्श अब दूसरा कोई कैसे कर सकता है? ॥ २१-२२ ॥

ययाति बोले—देवि! विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणको क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्प अथवा सब औरसे प्रज्वलित अग्निसे भी अधिक दुर्धर्ष एवं भयंकर समझे ॥ २३ ॥

देवयानीने कहा—पुरुषप्रवर! ब्राह्मण विषधर सर्प और सब औरसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निसे भी दुर्धर्ष एवं भयंकर है, यह बात आपने कैसे कही? ॥ २४ ॥

ययाति बोले—भद्रे! सर्प एकको ही डँसता है, शस्त्रसे भी एक ही व्यक्तिका वध होता है; परंतु क्रोधमें भरा हुआ ब्राह्मण समस्त राष्ट्र और नगरका भी नाश कर सकता है। भीरु! इसलिये मैं ब्राह्मणको अधिक दुर्धर्ष मानता हूँ। अतः जबतक आपके पिता आपको मेरे हवाले न कर दें, तबतक मैं आपसे विवाह नहीं करूँगा ॥ २५-२६ ॥

देवयानीने कहा—राजन्! मैंने आपका वरण कर लिया है, अब आप मेरे पिताके देनेपर ही मुझसे विवाह करें। आप स्वयं तो उनसे याचना करते नहीं हैं, उनके देनेपर ही मुझे स्वीकार करेंगे; अतः आपको उनके कोपका भय नहीं है। (राजन्! दो घड़ी ठहर जाइये। मैं अभी पिताके पास संदेश भेजती हूँ। धाय! शीघ्र जाओ और मेरे ब्रह्मतुल्य पिताको यहाँ बुला ले आओ। उनसे यह भी कह देना कि देवयानीने स्वयंवरकी विधिसे नहुष-नन्दन राजा ययातिका पतिरूपमें वरण किया है।) ॥ २७ ॥

शौनक उवाच

त्वरितं देवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः ।  
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥ २८  
श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः ।  
दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ॥ २९  
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ।  
तं चाप्यभ्यवदत् काव्यः साम्ना परमवल्मुना ॥ ३०

देवयान्युवाच

राजायं नाहुषस्तात् दुर्गमे पाणिमग्रहीत् ।  
नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ॥ ३१

शुक्र उवाच

वृतोऽनया पतिवीरं सुतया त्वं ममेष्टया ।  
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ॥ ३२

यातिरुवाच

अधर्मो मां स्पृशेदेवं पापमस्याश्र भार्गव ।  
वर्णसंकरतो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम् ॥ ३३

शुक्र उवाच

अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम् ।  
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहः पापं नुदामि ते ॥ ३४  
वहस्व भार्या धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम् ।  
अनया सह सम्प्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥ ३५  
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।  
सम्पूज्या सततं राजन् न चैनां शयने हृय ॥ ३६

शौनक उवाच

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।

जगाम स्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना ॥ ३७

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

शौनकजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार देवयानीने तुरन्त धायको भेजकर अपने पिताको संदेश दिया। धायने जाकर शुक्राचार्यसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। सब समाचार सुनते ही शुक्राचार्यने वहाँ आकर राजाको दर्शन दिया। विप्रवर शुक्राचार्यको आया देख राजा ययातिने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनप्रभावसे खड़े हो गये। तब शुक्राचार्यने भी राजाको परम मधुर वाणीसे सान्त्वना प्रदान की ॥ २८—३० ॥

देवयानी बोली—तात! आपको (हाथ जोड़कर) नमस्कार है। ये नहुषपुत्र राजा ययाति हैं। इन्होंने संकटके समय मेरा हाथ पकड़ा था। आप मुझे इन्हींकी सेवामें संमर्पित कर दें। मैं इस जगत्‌में इनके सिवा दूसरे किसी पतिका वरण नहीं करूँगी ॥ ३१ ॥

शुक्राचार्यने कहा—वीर नहुषनन्दन! मेरी इस लाड़ली पुत्रीने तुम्हें पतिरूपमें वरण किया है, अतः मेरी दी हुई इस कन्याको तुम अपनी पटरानीके रूपमें ग्रहण करो ॥ ३२ ॥

ययाति बोले—भार्गव ब्रह्मन्! मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि इस विवाहमें यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला वर्णसंकरजनित महान् अधर्म मेरा स्पर्श न करे ॥ ३३ ॥

शुक्राचार्यने कहा—राजन्! मैं तुम्हें अधर्मसे मुक्त करता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो। विवाहको लेकर तुम प्रशंसाके पात्र बन जाओगे। मैं तुम्हारे सारे पापको दूर करता हूँ। तुम सुन्दर मुसकानवाली देवयानीको धर्मपूर्वक अपनी पत्नी बनाओ और इसके साथ रहकर अतुल सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त करो। महाराज! वृषपर्वाकी पुत्री यह कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हें समर्पित है। इसका सदा आदर करना, किंतु इसे अपनी सेजपर कभी न सुलाना ॥ ३४—३६ ॥

(तुम्हारा कल्याण हो। इस शर्मिष्ठाको एकान्तमें बुलाकर न तो इससे बात करना और न इसके शरीरका स्पर्श ही करना। अब तुम विवाह करके इसे (देवयानीको) अपनी पत्नी बनाओ। इससे तुम्हें इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होगी।)

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! शुक्राचार्यके ऐसा कहनेपर राजा ययातिने उनकी परिक्रमा की (और शास्त्रोक्त विधिसे मङ्गलमय विवाह-कार्य सम्पन्न किया)। पुनः उन महात्माकी आज्ञा ले नृपत्रेष्ठ ययाति बड़े हर्षके साथ अपनी राजधानीको चले गये ॥ ३७ ॥

## एकतीसवाँ अध्याय

ययातिसे देवयानीको पुत्रप्राप्ति, ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्त-मिलन और उनसे एक पुत्रका जन्म

शौनक उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसंनिभम्।  
प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत्॥ १  
देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः।  
अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत्॥ २  
वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम्।  
वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसंवृताम्॥ ३  
देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः।  
विजहार बहूनब्दान् देववन्मुदितो भृशम्॥ ४  
ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते देवयानी वराङ्गना।  
लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारश्च व्यजायत्॥ ५  
गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।  
दर्दशं यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा कमलेक्षणा॥ ६  
चिन्तयामास धर्मज्ञा ऋतुप्राप्तौ च भामिनी।  
ऋतुकालश्च सम्प्राप्तो न कश्चिन्मे पतिर्वृतः॥ ७  
किं प्राप्तं किं च कर्तव्यं कथं कृत्वा सुखं भवेत्।  
देवयानी प्रसूतासौ वृथाहं प्राप्तयौवना॥ ८  
यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम्।  
राजा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः।  
अपीदानीं स धर्मात्मा रहो मे दर्शनं व्रजेत्॥ ९

शौनक उवाच

अथ निष्क्रम्य राजासौ तस्मिन् काले यदृच्छया।  
अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्राप्य विस्मितः॥ १०  
तमेकं रहसि दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी।  
प्रत्युदगायाञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत्॥ ११

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! ययातिकी राजधानी महेन्द्रपुरी (अमरावती)-के समान थी। उन्होंने वहाँ आकर देवयानीको अन्तःपुरमें स्थान दिया तथा उसीकी अनुमतिसे अशोकवाटिकाके समीप एक महल बनवाकर उसमें वृषपर्वकी पुत्री शर्मिष्ठाको उसकी एक हजार दासियोंके साथ ठहराया और उन सबके लिये अत्र, वस्त्र तथा पेय आदिकी अलग-अलग व्यवस्था कर दी। (देवयानी ययातिके साथ परम रमणीय एवं मनोरम अशोकवाटिकामें आती और शर्मिष्ठाके साथ वन-विहार करके उसे वहीं छोड़कर स्वयं राजाके साथ महलमें चली जाती थी। इस तरह वह बहुत समयतक प्रसन्नतापूर्वक आनन्द भोगती रही।) नहुषकुमार राजा ययातिने देवयानीके साथ बहुत वर्षोंतक देवताओंकी भाँति विहार किया। वे उसके साथ बहुत प्रसन्न और सुखी थे। ऋतुकाल आनेपर सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया और समयानुसार प्रथम पुत्रको जन्म दिया। इधर एक हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर युवावस्थाको प्राप्त हुई वृषपर्वकी पुत्री कमलनयनी शर्मिष्ठाने अपनेको रजस्वलावस्थामें देखा और चिन्तामग्न हो मन-ही-मन कहने लगी—‘मुझे ऋतुकाल प्राप्त हो गया, किंतु अभीतक मैंने पतिका वरण नहीं किया। यह कैसी परिस्थिति आ गयी। अब क्या करना चाहिये अथवा क्या करनेसे सुख होगा। देवयानी तो पुत्रवती हो गयी, किंतु मुझे जो युवावस्था प्राप्त हुई है, वह व्यर्थ जा रही है। जिस प्रकार उसने पतिका वरण किया है, उसी तरह मैं भी उन्हीं महाराजका क्यों न पतिके रूपमें वरण कर लूँ। मेरे याचना करनेपर राजा मुझे पुत्ररूप फल दे सकते हैं, इस बातका मुझे पूरा विश्वास है; परंतु क्या वे धर्मात्मा नरेश इस समय मुझे एकान्तमें दर्शन देंगे?॥ १-९॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! शर्मिष्ठा इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि राजा ययाति उसी समय दैववश महलसे बाहर निकले और अशोकवाटिकाके निकट शर्मिष्ठाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। मनोहर हासवाली शर्मिष्ठाने उन्हें एकान्तमें अकेला देखा। तब उसने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की तथा हाथ जोड़कर राजासे यह बात कही—॥ १०-११॥

## शर्मिष्ठोवाच

सोमश्वेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा ।  
तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुर्महति ॥ १२  
रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन् वेत्थ मां सदा ।  
सा त्वां याचे प्रसाद्येह रन्तुमेहि नराधिप ॥ १३

## ययातिरुवाच

वेद्यि त्वां शीलसम्पन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम् ।  
रूपं तु ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम् ॥ १४  
मामब्रवीत् तदा शुक्रो देवयानीं यदावहम् ।  
नेयमाहृयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी ॥ १५

## शर्मिष्ठोवाच

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति  
न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले ।  
प्राणात्यये सर्वधनापहरे  
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६  
पृष्ठस्तु साक्ष्ये प्रवदन्ति चान्यथा  
भवन्ति मिथ्यावचना नरेन्द्र ते ।  
एकार्थतायां तु समाहितायां  
मिथ्यावदन्तं ह्यनृतं हिनस्ति ॥ १७

## ययातिरुवाच

राजा प्रमाणं भूतानां स विनश्येन्मृषा वदन् ।  
अर्थकृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ १८

## शर्मिष्ठोवाच

समावेतौ मतौ राजन् पतिः सख्याश्च यः पतिः ।  
समं विवाह इत्याहुः सख्या मेऽसि पतिर्यतः ॥ १९

## ययातिरुवाच

दातव्यं याचमानस्य हीति मे व्रतमाहितम् ।  
त्वं च याचसि कामं मां ब्रूहि किं करवाणि तत् ॥ २०

## शर्मिष्ठोवाच

अधर्मात् त्राहि मां राजन् धर्मं च प्रतिपादय ।  
त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम् ॥ २१  
त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः ।  
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्वन्नम् ॥ २२ \*

शर्मिष्ठाने कहा—नहुषनन्दन ! चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम अथवा वरुण ही क्यों न हों, आपके महलमें कौन किसी स्त्रीकी ओर दृष्टि डाल सकता है ? (अतएव मैं यहाँ सर्वथा सुरक्षित हूँ) महाराज ! मेरे रूप, कुल और शील कैसे हैं, यह तो आप सदासे ही जानते हैं। मैं आज आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करती हूँ कि मुझे ऋतुदान दीजिये—मेरे ऋतुकालको सफल बनाइये ॥ १२-१३ ॥

ययातिने कहा—शर्मिष्ठे ! तुम दैत्यराजकी सुशील और निर्दोष कन्या हो। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारे शरीर अथवा रूपमें सूईकी नोक बराबर भी ऐसा स्थान नहीं है, जो निन्दाके योग्य हो; परंतु क्या करूँ, जब मैंने देवयानीके साथ विवाह किया था, उस समय शुक्राचार्यने मुझसे स्पष्ट कहा था कि ‘वृषपर्वाकी पुत्री इस शर्मिष्ठाको अपनी सेजपर न बुलाना’ ॥ १४-१५ ॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन् ! परिहासयुक्त वचन असत्य हो तो भी वह हानिकारक नहीं होता। अपनी स्त्रियोंके प्रति, विवाहके समय, प्राणसंकटके समय तथा सर्वस्वका अपहरण होते समय यदि कभी विवश होकर असत्य भाषण करना पड़े तो वह दोषकारक नहीं होता। ये पाँच प्रकारके असत्य पापशून्य बताये गये हैं। महाराज ! गवाही देते समय किसीके पूछनेपर जो अन्यथा (असत्य) भाषण करते हैं, वे मिथ्यावादी कहलाते हैं; परंतु जहाँ दो व्यक्तियोंके (जैसे देवयानीका तथा मेरा) कल्याणका प्रसङ्ग उपस्थित हो, वहाँ एकका (अर्थात् मेरा) कल्याण न करना असत्य भाषण है, जो वक्ताकी (अर्थात् आपकी) हानि कर सकता है ॥ १६-१७ ॥

ययाति बोले—देवि ! सब प्राणियोंके लिये राजा ही प्रमाण है। यदि वह झूठ बोलने लगे तो उसका नाश हो जाता है; अतः अर्थ-संकटमें पड़नेपर भी मैं गलत काम नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन् ! अपना पति और सखीका पति—दोनों बराबर माने गये हैं। मेरी सखीने आपको अपना पति बनाया है, अतः मैंने भी बना लिया ॥ १९ ॥

ययाति बोले—याचकोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दी जायें, ऐसा मेरा व्रत है। तुम भी मुझसे अपने मनोरथकी याचना करती हो; अतः बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ॥ २० ॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन् ! मुझे अधर्मसे बचाइये और धर्मका पालन कराइये। मैं चाहती हूँ आपसे संतानवती होकर इस लोकमें उत्तम धर्मका आचरण करूँ। महाराज ! तीन व्यक्ति धनके अधिकारी नहीं होते—पती, दास और पुत्र। उनकी सम्पत्ति भी उसीकी होती है, जहाँ ये

\*यह श्लोक स्वल्पान्तरसे मनुस्मृति ८। ४१६, नारदस्मृति ५। ३९, महाभारत १। ८२। २२ आदिमें भी है। मेधातिथि, गोविन्दराज, कुललूक भट्ट, राघवानन्द आदि मनुके सभी व्याख्याता इस श्लोकका तात्पर्य धनके व्ययमें अभिभावककी सहमति लेनेमें ही चरितार्थ मानते हैं। नीलकण्ठकी व्याख्या केवल प्रस्तुत प्रसङ्गसे ही सम्बद्ध है।

देवयान्या भुजिष्वास्मि वश्या च तव भार्गवी ।  
सा चाहं च त्वया राजन् भजनीये भजस्व माम् ॥ २३

शौनक उवाच

एवमुक्तस्तया राजा तथ्यमित्यभिज्ञिवान् ।  
पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रतिपादयन् ॥ २४  
स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च ।  
अन्योऽन्यं चाभिसम्पूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम् ॥ २५  
तस्मिन् समागमे सुभूः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।  
लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्वृपतिसत्तमात् ॥ २६  
प्रजज्ञे च ततः काले राज्ञी राजीवलोचना ।  
कुमारं देवगर्भाभमादित्यसमतेजसम् ॥ २७

॥ इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित नामक एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

## बत्तीसवाँ अध्याय

देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानीका रूठना और अपने पिताके पास जाना तथा शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना

शौनक उवाच

श्रुत्वा कुमारं जातं सा देवयानी शुचिस्मिता ।  
चिन्तयाविष्टदुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत ॥ १  
ततोऽभिगम्य शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम् ।  
किमर्थं वृजिनं सुभू कृतं ते कामलुब्ध्या ॥ २  
शर्मिष्ठोवाच

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद् धर्मात्मा वेदपारगः ।  
स मया तु वरः कामं याचितो धर्मसंहतम् ॥ ३  
नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते ।  
तस्मादृषेममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४

जाते—जिसके अधिकारमें रहते हैं; अर्थात् पत्रीके धनपर पतिका, सेवकके धनपर स्वामीका और पुत्रके धनपर पिताका अधिकार होता है। मैं देवयानीकी सेविका हूँ और देवयानी आपके अधीन है; अतः राजन्! वह और मैं—दोनों ही आपके सेवन अपनाने योग्य हैं। इसलिये आप मुझे भी अङ्गीकार कीजिये ॥ २१—२३ ॥

शौनकजी कहते हैं—शर्मिष्ठाके ऐसा कहनेपर राजा उसकी बातोंको ठीक समझा। उन्होंने शर्मिष्ठाका सत्कार किया और धर्मानुसार उसे अपनी भार्या बनाया। फिर शर्मिष्ठाके साथ सहवास करके एक-दूसरेका आदर-सत्कार करनेके पश्चात् दोनों जैसे आये थे, कैसे ही अपने-अपने स्थानपर चले गये। सुन्दर भौंहोंवाली वृषपर्वा-कुमारी शर्मिष्ठाने उस सहवासमें नृपत्रेष्ठ ययातिसे प्रथम गर्भ धारण किया। शतानीक! तदनन्तर समय आनेपर कमलके समान नेत्रोंवाली शर्मिष्ठाने देवबालक-जैसे सुन्दर एवं सूर्यके समान तेजस्वी एक कुमारको उत्पन्न किया ॥ २४—२७ ॥

॥ इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

शौनकजी कहते हैं—भारत! पवित्र मुसकानवाली देवयानीने जब सुना कि शर्मिष्ठाके पुत्र हुआ है, तब वह दुःखसे पीड़ित हो शर्मिष्ठाके व्यवहारको लेकर बड़ी चिन्तामें पड़ गयी। वह शर्मिष्ठाके पास गयी और इस प्रकार बोली—‘सुन्दर भौंहोंवाली शर्मिष्ठे! तुमने काम-लोलुप होकर यह कैसा पाप कर डाला है?’ ॥ १-२ ॥

शर्मिष्ठा बोली—सखी! कोई धर्मात्मा ऋषि आये थे, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। मैंने उन वरदायक ऋषिसे धर्मानुसार कामकी याचना की। शुचिस्मिते! मैं न्यायविरुद्ध कामका आचरण नहीं करती। उन ऋषिसे ही मुझे संतान पैदा हुई है, यह तुमसे सत्य कहती हूँ ॥ ३-४ ॥

## देवयान्युवाच

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम ।  
अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात् ॥ ५  
शोभनं भीरु सत्यं चेत् कथं स ज्ञायते द्विजः ।  
गोत्रनामाभिजनतः श्रोतुमिच्छामि तं द्विजम् ॥ ६

## शर्मिष्ठेवाच

ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा ।  
तं दृष्ट्वा मम सम्प्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते ॥ ७

शौनक उवाच

अन्योऽन्यमेवमुक्त्वा च सम्प्रहस्य च ते मिथः ।  
जगाम भार्गवी वेशम तथ्यमित्यभिजानती ॥ ८  
यथातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः ।  
यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥ ९  
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।  
द्वृह्णुं चानुं च पूरुं च त्रीन् कुमारानजीजनत् ॥ १०  
ततःकाले च कस्मिंश्चिद् देवयानी शुचिस्मिता ।  
यथातिसहिता राजञ्जगाम हरितं वनम् ॥ ११  
ददर्श च तदा तत्र कुमारान् देवरूपिणः ।  
क्रीडमानान् सुविस्त्रब्धान् विस्मिता चेदमब्रवीत् ॥ १२

## देवयान्युवाच

कस्यैते दारका राजन् देवपुत्रोपमाः शुभाः ।  
वर्चसा रूपतश्चैव दृश्यन्ते सदृशास्तव ॥ १३  
एवं पृष्ठा तु राजानं कुमारान् पर्यपृच्छत ।  
किं नामधेयगोत्रे वः पुत्रका ब्राह्मणः पिता ॥ १४  
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुकामास्यतो ह्यहम् ।  
तेऽदर्शयन् प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम् ॥ १५  
शर्मिष्ठां मातरं चैव तस्या ऊचुः कुमारकाः ।

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा सहितास्तेन राजानमुपचक्रमुः ॥ १६  
नाभ्यनन्दत तान् राजा देवयान्यास्तदान्तिके ।  
रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्तदा ॥ १७  
दृष्ट्वा तेषां तु बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति ।  
बुद्ध्वा च तत्त्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ॥ १८

देवयानीने कहा—शर्मिष्ठे ! यदि ऐसी बात है, तो तुमने यदि ज्येष्ठ और श्रेष्ठ द्विजसे संतान प्राप्त की है तो तुम्हरे ऊपर मेरा क्रोध नहीं रहा । भीरु ! यदि ऐसी बात है तो बहुत अच्छा हुआ । क्या उन द्विजके गोत्र, नाम और कुलका कुछ परिचय मिला है ? मैं उनको जानना चाहती हूँ ॥ ५-६ ॥

शर्मिष्ठा बोली—शुचिस्मिते ! वे अपने तप और तेजसे सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे । उन्हें देखकर मुझे कुछ पूछनेका साहस ही न हुआ ॥ ७ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! वे दोनों आपसमें इस प्रकार बातें करके हँस पड़ीं । देवयानीको प्रतीत हुआ कि शर्मिष्ठा ठीक कहती है, अतः वह चुपचाप महलमें चली गयी । राजा ययातिने देवयानीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम थे—यदु और तुर्वसु । वे दोनों दूसरे इन्द्र और विष्णुकी भाँति प्रतीत होते थे । उन्हीं राजर्षिसे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जिनके नाम थे—द्रुह्णु, अनु और पूरु । राजन् ! तदनन्तर किसी समय पवित्र मुसकानवाली देवयानी ययातिके साथ एकान्त वनमें गयी । वहाँ उसने देवताओंके समान सुन्दर रूपवाले कुछ बालकोंको निर्भय होकर क्रीड़ा करते देखा । उन्हें देखकर वह आश्र्यचकित हो इस प्रकार बोली ॥ ८-१२ ॥

देवयानीने पूछा—राजन् ! ये देवबालकोंके तुल्य शुभ लक्षणसम्पन्न कुमार किसके हैं ? तेज और रूपमें तो ये मुझे आपके ही समान जान पड़ते हैं । राजासे इस प्रकार पूछकर उसने फिर उन कुमारोंसे प्रश्न किया—‘बच्चो ! तुमलोग किस गोत्रमें उत्पन्न हुए हो ? तुम्हरे ब्राह्मण पिताका क्या नाम है ? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ । मैं तुम्हरे पिताका नाम सुनना चाहती हूँ ।’ (देवयानीके इस प्रकार पूछनेपर) उन बालकोंने पिताका परिचय देते हुए तर्जनी अङ्गुलीसे उन्हीं नृपश्रेष्ठ ययातिको दिखा दिया और शर्मिष्ठाको अपनी माता बताया ॥ १३-१५ ॥

शौनकजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे सब बालक एक साथ राजाके समीप आ गये, परंतु उस समय देवयानीके निकट राजाने उनका अभिनन्दन नहीं किया—इन्हें गोदमें नहीं उठाया । तब बालक रोते हुए शर्मिष्ठाके पास चले गये । (उनकी बातें सुनकर राजा ययाति लज्जित-से हो गये ।) उन बालकोंका राजाके प्रति विशेष प्रेम देखकर देवयानी सारा रहस्य समझ गयी और शर्मिष्ठासे इस प्रकार बोली— ॥ १६-१८ ॥

देवयान्युवाच

मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम ।  
तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम् ॥ १९

शर्मिष्ठोवाच

यदुक्तमृषिरित्येव तत् सत्यं चारुहासिनि ।  
न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते ॥ २०  
यदा त्वया वृतो राजा वृत एव तदा मया ।  
सखीभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने ॥ २१  
पूज्यासि मम मान्या च श्रेष्ठा ज्येष्ठा च ब्राह्मणी ।  
त्वत्तो हि मे पूज्यतरो राजर्षिः किं न वेत्सि तत् ॥ २२

शौनक उवाच

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम् ।  
राजन् नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे त्वया कृतम् ॥ २३  
सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम् ।  
तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा ॥ २४  
अनुवद्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन् नृपः ।  
न्यवर्तत न सा चैव क्रोधसंरक्तलोचना ॥ २५  
अविबुवन्ती किंचिच्च राजानं साश्रुलोचना ।  
अचिरादेव सम्प्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम् ॥ २६  
सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता ।  
अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम् ॥ २७

देवयान्युवाच

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम् ।  
शर्मिष्ठा यातिवृत्तास्ति दुहिता वृषपर्वणः ॥ २८  
त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राजानेन ययातिना ।  
दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते ॥ २९  
धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वृह ।  
अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत् कथयामि ते ॥ ३०

देवयानी बोली—शर्मिष्ठे ! तुमने मेरे अधीन होकर भी मुझे अप्रिय लगनेवाला बर्ताव क्यों किया ? तुम फिर उसी असुर-धर्मपर उत्तर आयी । क्या मुझसे नहीं डरती ? ॥ १९ ॥

शर्मिष्ठा बोली—मनोहर मुसकानवाली सखी ! मैंने जो ऋषि कहकर अपने स्वामीका परिचय दिया था, सो सत्य ही है । मैं न्याय और धर्मके अनुकूल आचरण करती हूँ, अतः तुमसे नहीं डरती । जब तुमने राजाका पतिरूपमें वरण किया था, उसी समय मैंने भी कर लिया । शोभने ! तुम ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हो, ब्राह्मणपुत्री हो, अतः मेरे लिये माननीय एवं पूजनीय हो; परंतु ये राजर्षि मेरे लिये तुमसे भी अधिक पूजनीय हैं । क्या यह बात तुम नहीं जानती ? (शुभे ! तुम्हरे पिता और मेरे गुरु (शुक्राचार्यजी) -ने हम दोनोंको एक ही साथ महाराजकी सेवामें समर्पित किया है । तुम्हरे पति और पूजनीय महाराज ययाति भी मुझे पालन करने योग्य मानकर मेरा पोषण करते हैं ।) ॥ २०—२२ ॥

शौनकजी कहते हैं—शर्मिष्ठाका यह वचन सुनकर देवयानीने कहा—‘राजन् ! अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी । आपने मेरा अत्यन्त अप्रिय किया है ।’ ऐसा कहकर तरुणी देवयानी आँखोंमें आँसू भरकर सहसा उठी और तुरन्त ही शुक्राचार्यजीके पास जानेके लिये वहाँसे चल दी । यह देख उस समय राजा ययाति व्यथित हो गये । वे व्याकुल हो देवयानीको समझाते हुए उसके पीछे-पीछे गये, किंतु वह नहीं लौटी । उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं । वह राजासे कुछ न बोलकर केवल नेत्रोंसे आँसू बहाये जाती थी । कुछ ही देरमें वह कवि-पुत्र शुक्राचार्यके पास पहुँची । पिताको देखते ही वह प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गयी । तदनन्तर राजा ययातिने भी शुक्राचार्यकी बन्दना की ॥ २३—२७ ॥

देवयानीने कहा—पिताजी ! अधर्मने धर्मको जीत लिया । नीचकी उन्नति हुई और उच्चकी अवनति । वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा मुझे लाँघकर आगे बढ़ गयी । इन महाराज ययातिसे ही उसके तीन पुत्र हुए हैं, किंतु तात ! मुझ भाग्यहीनाके दो ही पुत्र हुए हैं । यह मैं आपसे ठीक बता रही हूँ । भृगुश्रेष्ठ ! ये महाराज धर्मज्ञके रूपमें प्रसिद्ध हैं, किंतु इन्होंने मर्यादाका उल्लङ्घन किया है । कवि-नन्दन ! यह मैं आपसे यथार्थ कह रही हूँ ॥ २८—३० ॥

शुक्र उवाच

धर्मज्ञस्त्वं महाराज योऽधर्ममकृथा: प्रियम्।  
तस्माज्जरा त्वामचिराद् धर्षयिष्यति दुर्जया ॥ ३१

ययातिरुवाच

ऋतुं यो याच्यमानाया न ददाति पुमान् वृत्तः।  
भूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स चेह ब्रह्मवादिभिः ॥ ३२

ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।  
नोपैति यो हि धर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः ॥ ३३

इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्ध्रहं।  
अधर्मभयसंविग्रः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥ ३४

शुक्र उवाच

न त्वं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव।  
मिथ्याचरणधर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष ॥ ३५

शौनक उवाच

क्रोधेनोशनसा शसो ययातिर्नहुषस्तदा।  
पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥ ३६

ययातिरुवाच

अतृसो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्ध्रहं।  
प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं मा विशेत माम् ॥ ३७

शुक्र उवाच

नाहं मृषा वदाम्येतज्जरां प्रासोऽसि भूमिप।  
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन् संक्रामय यदीच्छति ॥ ३८

ययातिरुवाच

राज्यभाक् स भवेद् ब्रह्मन् पुण्यभाक् कीर्तिभाक् तथा।  
यो दद्यान्मे वयः शुक्र तद् भवाननुमन्यताम् ॥ ३९

शुक्राचार्यने (ययातिसे) कहा—महाराज! तुमने धर्मज्ञ होकर भी अधर्मको प्रिय मानकर उसका आचरण किया है। इसलिये जिसको जीतना कठिन है, वह वृद्धावस्था तुम्हें शीघ्र ही धर दबायेगी ॥ ३१ ॥

ययाति बोले—भगवन्! दानवराजकी पुत्री मुझसे ऋतुदान माँग रही थी, अतः मैंने धर्मसम्मत मानकर यह कार्य किया, किसी दूसरे विचारसे नहीं। ब्रह्मन्! जो पुरुष न्याययुक्त ऋतुकी याचना करनेवाली स्त्रीको ऋतुदान नहीं देता, वह ब्रह्मवादी विद्वानोंद्वारा भ्रूण (गर्भ)-की हत्या करनेवाला कहा जाता है। जो न्यायसम्मत कामनासे युक्त गम्या स्त्रीके द्वारा एकान्तमें प्रार्थना करनेपर उसके साथ समागम नहीं करता, वह धर्मशास्त्रके विद्वानोंद्वारा गर्भ या ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला बताया जाता है। (ब्रह्मन्! मेरा यह व्रत है कि मुझसे कोई जो भी वसु माँगे, उसे वह अवश्य दे दूँगा। आपके ही द्वारा मुझे सौंपी हुई शर्मिष्ठा इस जगत्‌में दूसरे किसी पुरुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती थी; अतः उसकी इच्छा पूर्ण करना धर्म समझकर मैंने वैसा किया है। आप इसके लिये मुझे क्षमा करें।) भ्रूणश्रेष्ठ! इन्हीं सब कारणोंका विचार करके अधर्मके भयसे उद्धिग्र हो मैं शर्मिष्ठाके पास गया था ॥ ३२—३४ ॥

शुक्राचार्यने कहा—राजन्! तुम्हें इस विषयमें मेरे आदेशका भी ध्यान रखना चाहता था; क्योंकि तुम मेरे अधीन हो। नहुषनन्दन! धर्ममें मिथ्या आचरण करनेवाले पुरुषको चोरीका पाप लगता है ॥ ३५ ॥

शौनकजी कहते हैं—क्रोधमें भरे हुए शुक्राचार्यके शाप देनेपर नहुष-पुत्र राजा ययाति उसी समय पूर्वावस्था (यौवन)-का परित्याग करके तत्काल बूढ़े हो गये ॥ ३६ ॥

ययाति बोले—भ्रूणश्रेष्ठ! मैं देवयानीके साथ युवावस्थामें रहकर तृप्त नहीं हो सका हूँ, अतः ब्रह्मन्! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह बुढ़ापा मेरे शरीरमें प्रवेश न करे ॥ ३७ ॥

शुक्राचार्यने कहा—भूमिपाल! मैं झूठ नहीं बोलता। बूढ़े तो तुम हो ही गये, किंतु तुम्हें इतनी सुविधा देता हूँ कि यदि चाहो तो किसी दूसरेसे जवानी लेकर इस बुढ़ापाको उसके शरीरमें डाल सकते हो ॥ ३८ ॥

ययाति बोले—ब्रह्मन्! मेरा जो पुत्र अपनी युवावस्था मुझे दे, वही पुण्य और कीर्तिका भागी होनेके साथ ही मेरे राज्यका भी भागी हो। शुक्राचार्यजी! आप इसका अनुमोदन करें ॥ ३९ ॥

शुक्र उवाच

संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टुं नहुषात्मज ।  
मामनुध्याय तत्त्वेन न च पापमवाप्स्यसि ॥ ४०  
वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति ।  
आयुष्मान् कीर्तिमांश्वैव बहुपत्यस्तथैव च ॥ ४१

शुक्राचार्यने कहा—नहुषनन्दन ! तुम भक्तिभावसे मेरा चिन्तन करके अपनी वृद्धावस्थाका इच्छानुसार दूसरेके शरीरमें संचार कर सकोगे । उस दशामें तुम्हें पाप भी नहीं लगेगा । जो पुत्र तुम्हें (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी युवावस्था देगा, वही राजा होगा । साथ ही दीर्घायु यशस्वी तथा अनेक संतानोंसे युक्त होगा ॥ ४०-४१ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिचरित नामक वत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

## तैतीसवाँ अध्याय

ययातिका अपने यदु आदि पुत्रोंसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर पूरुको जरावस्था देकर उसकी युवावस्था लेना तथा उसे वर प्रदान करना

शौनक उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि ।  
पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद् वचः ॥ १

ययातिरुवाच

जरा बली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।  
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृसोऽस्मि यौवने ॥ २  
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।  
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ३  
पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्वदीयं यौवनं त्वहम् ।  
दत्त्वा सम्प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ४

यदुरुवाच

सितश्मश्रुधरो दीनो जरसा शिथिलीकृतः ।  
बलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः ॥ ५  
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवने ।  
सहोपजीविभिश्वैव तजरां नाभिकामये ॥ ६  
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ।  
जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ ७

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! राजा ययाति बुढ़ापा लेकर वहाँसे अपने नगरमें आये और अपने ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र यदुसे इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

ययातिने कहा—तात ! कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मुझे बुढ़ापेने घेर लिया, मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं और बाल सफेद हो गये, किंतु मैं अभी जवानीके भोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ । यदो ! तुम बुढ़ापेके साथ मेरे दोषको ले लो और मैं तुम्हारी जवानीके द्वारा विषयोंका उपभोग करूँ । एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मैं पुनः तुम्हारी जवानी देकर बुढ़ापेके साथ अपना दोष वापस ले लूँगा ॥ २-४ ॥

यदु बोले—महाराज ! मैं उस बुढ़ापेको लेनेकी इच्छा नहीं करता, जिसके आनेपर दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो जाते हैं, जीवनका आनन्द चला जाता है । वृद्धावस्था सर्वथा शिथिल कर देती है । सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और मनुष्य इतना दुर्बल तथा कृशकाय हो जाता है कि उसकी ओर देखते नहीं बनता । बुढ़ापेमें काम-काज करनेकी शक्ति नहीं रहती, युवतियाँ तथा जीविका पानेवाले सेवक भी तिरस्कार करते हैं, अतः मैं वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता । धर्मज्ञ नरेश्वर ! आपके बहुत-से पुत्र हैं, जो आपको मुझसे भी अधिक प्रिय हैं; अतः बुढ़ापा लेनेके लिये आप अपने किसी दूसरे पुत्रको चुन लीजिये ॥ ५-७ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्ञातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।  
पापान्मातुलसम्बन्धाद् दुष्प्रजा ते भविष्यति ॥ ८  
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।  
यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ॥ ९  
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम् ।  
तथैव प्रतिपत्त्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ १०

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् ।  
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिमानविनाशिनीम् ॥ ११

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्ञातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।  
तस्मात् प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥ १२  
संकीर्णश्लोरधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च ।  
पिशिताशिषु लोकेषु नूनं राजा भविष्यसि ॥ १३  
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिरतेषु च ।  
पशुधर्मिषु म्लेच्छेषु पापेषु प्रभविष्यसि ॥ १४

शौनक उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः ।  
शर्मिष्ठायाः सुतं ज्येष्ठं द्रुह्युं वचनमब्रवीत् ॥ १५

ययातिरुवाच

द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ।  
जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं प्रयच्छताम् ॥ १६  
पूर्णे वर्षसहस्रे तु ते प्रदास्यामि यौवनम् ।  
स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ १७

द्रुह्यरुवाच

न राज्यं न रथं नाश्वं जीर्णो भुद्दके न च स्त्रियम् ।  
न रागश्चास्य भवति तज्जरां ते न कामये ॥ १८

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्ञातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।  
तद् द्रुह्यो वै प्रियः कामो न ते सम्पत्यते क्वचित् ॥ १९

ययातिने कहा—तात ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न (औरस पुत्र) होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये इस पापके कारण तुम्हारी संतान मामाके अनुचित सम्बन्धद्वारा उत्पन्न होकर दुष्प्रजा कहलायेगी । (अब उन्होंने तुर्वसुको बुलाकर कहा—) 'तुर्वसो ! तुम बुद्धापेके साथ मेरा दोष ले लो । बेटा ! मैं तुम्हारी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा । एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर मैं तुम्हें जवानी लौटा दूँगा और बुद्धापेसहित अपने दोषको वापस ले लूँगा' ॥ ८—१० ॥

तुर्वसु बोले—तात ! काम-भोगका नाश करनेवाली वृद्धावस्था मुझे नहीं चाहिये । वह बल तथा रूपका अन्त कर देती है और बुद्धि एवं मान-प्रतिष्ठाका भी नाश करनेवाली है ॥ ११ ॥

ययातिने कहा—तुर्वसो ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये तुम्हारी संतति नष्ट हो जायगी । मूढ़ ! जिनके आचार और धर्म वर्णसंकरोंके समान हैं, जो प्रतिलोम—संकर जातियोंमें गिने जाते हैं तथा जो कच्चा मांस खानेवाले एवं चाण्डाल आदिकी श्रेणीमें हैं, ऐसे (यवनादिसे अधिष्ठित आटटूदि देशोंके) लोगोंके तुम राजा होगे । जो गुरु-पतियोंमें आसक्त हैं, जो पशु-पक्षी आदिका-सा आचरण करनेवाले हैं तथा जिनके सारे आचार-विचार भी पशुओंके समान हैं, तुम उन पापात्मा म्लेच्छोंके राजा होगे ॥ १२—१४ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! राजा ययातिने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसुको शाप देकर शर्मिष्ठाके ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्युसे यह बात कही— ॥ १५ ॥

ययातिने कहा—द्रुह्यो ! कान्ति तथा रूपका नाश करनेवाली यह वृद्धावस्था तुम ले लो और एक हजार वर्षोंके लिये अपनी जवानी मुझे दे दो । हजार वर्ष पूर्ण हो जानेपर मैं पुनः तुम्हारी जवानी तुम्हें दे दूँगा और बुद्धापेके साथ अपना दोष फिर ले लूँगा ॥ १६—१७ ॥

द्रुह्यु बोले—पिताजी ! बुद्धा मनुष्य न तो राज्य-सुखका अनुभव कर सकता है, न घोड़े और रथपर ही चढ़ सकता है । वह स्त्रीका भी उपभोग नहीं कर सकता । उसके हृदयमें राग-प्रेम उत्पन्न ही नहीं होता; अतः मैं वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता ॥ १८ ॥

ययातिने कहा—द्रुह्यो ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी जवानी मुझे नहीं दे रहे हो, इसलिये तुम्हारा प्रिय मनोरथ कभी नहीं सिद्ध होगा ।

नौरुपप्लवसंचारो यत्र नित्यं भविष्यति ।  
अराजभोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः ॥ २०

यथातिरुवाच

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।  
एकं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥ २१

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरिवादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा ।  
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये ॥ २२

यथातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ।  
जरादोषस्त्वयोक्तो यस्तस्मात् त्वं प्रतिपद्यसे ॥ २३  
प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनश्यन्ति ह्यनो तव ।  
अग्निप्रस्कन्दनगतस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥ २४ ॥

यथातिरुवाच

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ।  
त्वं मे प्रियतरः पुत्रस्त्वं वरीयान् भविष्यसि ॥ २५  
जरा बली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ।  
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृसोऽस्मि यौवने ॥ २६  
किञ्चित्कालं चरेयं वै विषयान् वयसा तव ।  
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम् ।  
स्वं चैव प्रतिपत्स्येऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ २७

शौनक उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा ।  
यथात्थ त्वं महाराज तत् करिष्यामि ते वचः ॥ २८  
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह ।  
गृहण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेष्मितान् ॥ २९

(जहाँ घोडे जुते हुए उत्तम रथों, घोडों, हाथियों, पीठकों, पालकियों, गदहों, बकरों, बैलों और शिविका आदिकी भी गति नहीं है) जहाँ प्रतिदिन (केवल) नावपर ही बैठकर धूमना-फिरना होगा, ऐसे (पञ्चनदके निचले) प्रदेशमें तुम अपनी संतानोंके साथ चले जाओगे और वहाँ तुम्हारे वंशके लोग राजा नहीं, भोज कहलायेंगे ॥ १९-२० ॥

तदनन्तर यथातिने अनुसे कहा—अनो! तुम बुद्धापेके साथ मेरा दोष-पाप ले लो और मैं तुम्हारी जवानीके द्वारा एक हजार वर्षतक सुखसे चलते-फिरते आनन्द भोगँगा ॥ २१ ॥

अनु बोले—पिताजी! बूढ़ा मनुष्य बच्चोंकी तरह असमयमें भोजन करता है, अपवित्र रहता है तथा समयपर अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करता, अतः वैसी वृद्धावस्थाको मैं नहीं लेना चाहता ॥ २२ ॥

यथातिने कहा—अनो! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था मुझे नहीं दे रहे हो और बुद्धापेके दोष बतला रहे हो, अतः तुम वृद्धावस्थाके समस्त दोषोंको प्राप्त करोगे और तुम्हारी संतान जवान होते ही मर जायगी तथा तुम भी बूढ़े-जैसे होकर अग्निहोत्रका त्याग कर दोगे ॥ २३-२४ ॥

तत्पश्चात् यथातिने पूरुसे कहा—पूरो! तुम मेरे अत्यधिक प्रिय पुत्र हो। गुणोंमें तुम श्रेष्ठ होओगे। तात! मुझे बुद्धापेने धेर लिया, सब अङ्गोंमें द्विर्याँ पड़ गयीं और सिरके बाल सफेद हो गये। बुद्धापेके ये सारे चिह्न मुझे एक ही साथ प्राप्त हुए हैं। कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मेरी यह दशा हुई है; किंतु मैं जवानीके भोगोंसे अभी तुस नहीं हुआ हूँ। पूरो! (तुम बुद्धापेके साथ मेरे दोष-पापको ले लो और) मैं तुम्हारी युवावस्था लेकर उसके द्वारा कुछ कालतक विषयोंका उपभोग करूँगा। एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मैं तुम्हें पुनः तुम्हारी जवानी दे दूँगा और बुद्धापेके साथ अपना दोष ले लूँगा ॥ २५-२७ ॥

शौनकजी कहते हैं—यथातिके ऐसा कहनेपर पूरुने अपने पितासे विनयपूर्वक कहा—‘महाराज! आप मुझे जैसा आदेश दे रहे हैं, आपके उस वचनका मैं पालन करूँगा। (गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन मनुष्योंके लिये पुण्य, स्वर्ग तथा आयु प्रदान करनेवाला है। गुरुके ही प्रसादसे इन्द्रने तीनों लोकोंका शासन किया है। गुरुस्वरूप पिताकी अनुमति प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है।) राजन्! मैं बुद्धापेके साथ आपका दोष ग्रहण कर लूँगा। आप मुझसे जवानी ले लें और इच्छानुसार विषयोंका उपभोग करें।

जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव ।  
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथेच्छया ॥ ३०

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिचरित नामक तीनीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥

### चौंतीसवाँ अध्याय

राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके बनमें जाना  
शौनक उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिः काव्यं स्मृत्वा महाव्रतम् ।  
संक्रामयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ॥ १  
पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः ।  
प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चार विषयान् प्रियान् ॥ २  
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम् ।  
धर्माविरुद्धान् राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि ॥ ३  
देवानतर्पयद् यज्ञैः श्राद्धैरपि पितामहान् ।  
दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥ ४  
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च प्रतिपालनैः ।  
अनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून् निग्रहणेन च ॥ ५  
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् ।  
ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ६  
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः ।  
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ७  
स सम्प्राप्य शुभान् कामांस्तृपः खिन्नश्च पार्थिवः ।  
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥ ८  
परिचिन्त्य स कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् ।  
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूर्णं पुत्रमुवाच ह ॥ ९  
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शास्यति ।  
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १०

मैं वृद्धावस्थासे आच्छादित हो आपकी आयु एवं रूप धारण करके रहूँगा और आपको जवानी देकर आप मेरे लिये जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा ॥ २८—३० ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! पूरुके ऐसा कहनेपर राजर्षि ययातिने महान् ब्रतपरायण शुक्राचार्यका स्मरण कर अपने महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपनी वृद्धावस्थाका संक्रमण कराया (और उसकी युवावस्था स्वयं ले ली) । नष्टके पुत्र नरश्रेष्ठ ययातिने पूरुकी युवावस्थासे अत्यन्त प्रसन्न होकर अभीष्ट विषय-भोगोंका सेवन आरम्भ किया । उन राजेन्द्रकी जैसी कामना होती, जैसा उत्साह होता और जैसा समय होता, उसके अनुसार वे सुखपूर्वक धर्मानुकूल भोगोंका उपभोग करते थे । वास्तवमें उसके योग्य वे ही थे । उन्होंने यज्ञोद्वारा देवताओंको, श्राद्धोंसे पितरोंको, इच्छाके अनुसार अनुग्रह करके दीन-दुःखियोंको और मुँहमाँगी भोग्य वस्तुएँ देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त किया । वे अतिथियोंको अन्न और जल देकर, वैश्योंको उनके धन-वैभवकी रक्षा करके, शूद्रोंको दयाभावसे, लुटरोंको कैद करके तथा सम्पूर्ण प्रजाको धर्मपूर्वक संरक्षणद्वारा प्रसन्न रखते थे । इस प्रकार साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान राजा ययातिने समस्त प्रजाका पालन किया । वे राजा सिंहके समान पराक्रमी और नवयुवक थे । सम्पूर्ण विषय उनके अधीन थे और वे धर्मका विरोध न करते हुए उत्तम सुखका उपभोग करते थे । वे नरेश शुभ भोगोंको प्राप्त करके पहले तो तृप्त एवं आनन्दित होते थे, परंतु जब यह बात ध्यानमें आती कि ये हजार वर्ष भी पूरे हो जायेंगे, तब उन्हें बड़ा खेद होता था । कालतत्त्वको जाननेवाले पराक्रमी राजा ययाति एक-एक कला और काष्ठाकी गिनती कर एक हजार वर्षके समयकी अवधिका स्मरण रखते थे । जब उन्होंने देखा कि अब समय पूरा हो गया, तब वे अपने पुत्र पूरुके पास आकर बोले—‘शत्रुदमन् पुत्र ! मैंने तुम्हारी जवानीके द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार विषयोंका सेवन किया; परंतु विषयोंकी कामना उन विषयोंके उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है ।

यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।  
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं ब्रजेत् ॥ १  
यथासुखं यथोत्साहं यथाकाममर्दिदम् ।  
सेविता विषया: पुत्र यौवनेन मया तव ॥ २  
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम् ।  
राज्यं चैव गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत् सुतः ॥ ३

शौनक उवाच

प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा ।  
यौवनं प्रतिपेदे स पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥ ४  
अभिषेक्तुकामं च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।  
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ५  
कथं शुक्रस्य दौहित्रं देवयान्याः सुतं प्रभो ।  
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रदास्यसि ॥ ६  
ज्येष्ठो यदुस्तव सुतस्तुर्वसुस्तदनन्तरम् ।  
शर्मिष्ठायाः सुतो द्विहुस्तथानुः पूरुरेव च ॥ ७  
कथं ज्येष्ठमतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति ।  
एतत् सम्बोधयामस्त्वां स्वर्धर्ममनुपालय ॥ ८

ययातिरुच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृणवन्तु मे वचः ।  
ज्येष्ठं प्रति यतो राज्यं न देयं मे कथंचन ॥ ९  
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ।  
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ १०  
मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः ।  
स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्तते पितृमातृषु ॥ ११  
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि वा ।  
द्विहुणा चानुना चैव मध्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ १२  
पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः ।  
कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ॥ १३  
मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्रस्त्रिया ।  
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ॥ १४  
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः ।  
भवन्तः प्रतिजानन्तु पूरुं राज्येऽभिषिद्यताम् ॥ १५

इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, ऐसा मानकर शान्ति धारण कर लेना चाहिये । पूरो ! तुम्हारा भला हो, मैं प्रसन्न हूँ । तुम अपनी यह जवानी ले लो । साथ ही यह राज्य भी अपने अधिकारमें कर लो; क्योंकि तुम मेरा प्रिय करनेवाले पुत्र हो' ॥ १—१३ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! उस समय नहुषनन्दन राजा ययातिने अपनी वृद्धावस्था वापस ले ली और पूरुने पुनः अपनी युवावस्था प्राप्त कर ली । जब ब्राह्मण आदि वर्णोंने देखा कि महाराज ययाति अपने छोटे पुत्र पूरुको राजाके पदपर अभिषिक्त करना चाहते हैं, तब उनके पास आकर इस प्रकार बोले—‘प्रभो ! शुक्राचार्यके नाती और देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुके होते हुए उन्हें लाँघकर आप पूरुको राज्य क्यों देते हैं ? यदु आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं । उनके बाद तुर्वसु उत्पन्न हुए । तदनन्तर शर्मिष्ठाके पुत्र क्रमशः द्विहु अनु और पूरु हैं । ज्येष्ठ पुत्रोंका उल्लङ्घन करके छोटा पुत्र राज्यका अधिकारी कैसे हो सकता है ? हम आपको इस बातका स्मरण दिला रहे हैं । आप धर्मका पालन कीजिये’ ॥ १४—१८ ॥

ययातिने कहा—ब्राह्मण आदि सब वर्णके लोग मेरी बात सुनें, मुझे ज्येष्ठ पुत्रको किसी तरह राज्य नहीं देना है । मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदुने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया है । जो पिताके प्रतिकूल हो, वह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें पुत्र नहीं माना गया है । जो माता और पिताकी आज्ञा मानता है, उनका हित चाहता है, उनके अनुकूल चलता है तथा माता-पिताके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करता है, वही वास्तवमें पुत्र है । यदुने मेरी अवहेलना की है, तुर्वसु, द्विहु तथा अनुने भी मेरा बड़ा तिरस्कार किया है । (और) पूरुने मेरी आज्ञाका पालन किया, मेरी बातको अधिक आदर दिया है, इसीने मेरा बुढ़ापा ले रखा था; अतः मेरा यह छोटा पुत्र ही वास्तवमें मेरे राज्य और धनको पानेका अधिकारी है । पूरुने पुत्रस्त्रप होकर मेरी कामनाएँ पूर्ण की हैं । स्वयं शुक्राचार्यने मुझे वर दिया है कि ‘जो पुत्र तुम्हारा अनुसरण करे वही राजा एवं समस्त भूमण्डलका पालक हो’ । अतः मैं आपलोगोंसे विनयपूर्ण आग्रह करता हूँ कि पूरुको ही राज्यपर अभिषिक्त करें ॥ १९—२५ ॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोहितः सदा ।  
सर्वं सोऽर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥ २६  
अहं पूरोरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत् तव ।  
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ २७

शौनक उवाच

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ।  
अभिषिञ्च ततः पूरुं राज्ये स्वसुतमात्मजम् ॥ २८  
दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः ।  
पुरात् स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥ २९  
यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः सुताः ।  
द्वुह्योश्वैव सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥ ३०  
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ।  
इदं वर्षसहस्रात् तु राज्यं कुरु कुलागतम् ॥ ३१

इति श्रीमात्ये महापुराणे ययातिचरिते चतुस्त्रिशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक चाँतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

## पैंतीसवाँ अध्याय

वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति

शौनक उवाच

एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम् ।  
राज्येऽभिषिञ्च मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः ॥ १  
उषित्वा वनवासं स ब्राह्मणैः सह संश्रितः ।  
फलमूलाशनो दान्तो यथा स्वर्गमितो गतः ॥ २  
स गतः स्वर्गवासं तु न्यवसन्मुदितः सुखी ।  
कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः ॥ ३  
विवशः प्रच्युतः स्वर्गदिप्रासो मेदिनीतलम् ।  
स्थितश्शासीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया ॥ ४  
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः ।  
राजा वसुपता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान् ।  
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि ॥ ५

प्रजावर्गके लोग बोले—जो पुत्र गुणवान् और सदा माता-पिताका हितैषी हो, वह छोटा होनेपर भी श्रेष्ठतम है। वही सम्पूर्ण कल्याणका भागी होने योग्य है। पूरु आपका प्रिय करनेवाले पुत्र हैं, अतः शुक्राचार्यके वरदानके अनुसार ये ही इस राज्यको पानेके अधिकारी हैं। इस निश्चयके विरुद्ध अब कुछ भी उत्तर नहीं दिया जा सकता ॥ २६-२७ ॥

शौनकजी कहते हैं—नगर और राज्यके लोगोंने संतुष्ट होकर जब इस प्रकार कहा, तब नहुषनन्दन ययातिने अपने पुत्र पूरुको ही अपने राज्यपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार पूरुको राज्य दे वनवासकी दीक्षा लेकर राजा ययाति तपस्वी ब्राह्मणोंके साथ नगरसे बाहर निकल गये। यदुसे यादव क्षत्रिय उत्पन्न हुए तुर्वसुकी संतान (सीमान्तसे लेकर यूनानतकके निवासी) यवन कहलायी, द्वृह्युके पुत्र भोज नामसे प्रसिद्ध हुए और अनुसे म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं। राजन्! पूरुसे पौरव वंश चला, जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो। हजारों वर्षोंसे यह राज्य कुरुकुलमें सम्मिलित हो गया है, अर्थात् यह कुरुवंश नामसे प्रसिद्ध हो गया है ॥ २८-३१ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! इस प्रकार नहुषनन्दन राजा ययाति अपने प्रिय पुत्र पूरुका राज्याभिषेक करके प्रसन्नतापूर्वक वानप्रस्थ मुनि हो गये। वे वनमें ब्राह्मणोंके साथ रहकर कठोर व्रतका पालन करते हुए फल-मूलका आहार तथा मन और इन्द्रियोंका संयम करते थे, इससे वे स्वर्गलोकमें गये। स्वर्गलोकमें जाकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और बहुत कालके बाद इन्द्रद्वारा वे पुनः स्वर्गसे नीचे गिरा दिये गये। स्वर्गसे श्रृष्ट हो पृथ्वीपर गिरते समय वे भूतलतक नहीं पहुँचे, आकाशमें ही स्थिर हो गये, ऐसा मैंने सुना है। फिर यह भी सुननेमें आया है कि वे पराक्रमी राजा ययाति मुनिसमाजमें राजा वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिबिसे मिलकर पुनः वहाँसे साधु पुरुषोंके सङ्गके प्रभावसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १-५ ॥

शतानीक उवाच

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः ।  
 कथमिन्द्रेण भगवन् पातितो मेदिनीतले ॥ ६  
 सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।  
 कथ्यमानं त्वया विप्र देवर्षिगणसंनिधौ ॥ ७  
 देवराजसमो ह्यासीद् ययातिः पृथिवीपतिः ।  
 वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥ ८  
 तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तंर्महात्मनः ।  
 श्रोतुमिच्छामि देवेश दिवि चेह च सर्वशः ॥ ९

शौनक उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम् ।  
 दिवि चेह च पुण्यार्था सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १०  
 ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम् ।  
 राज्येऽभिषिद्य मुदितः प्रवब्राज वनं तदा ॥ ११  
 अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान् यदुपुरोगमान् ।  
 फलमूलाशनो राजा वनेऽसौ न्यवसच्चिरम् ॥ १२  
 स जितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन् पितृदेवताः ।  
 अग्रींश्च विधिवज्ञुह्नन् वानप्रस्थविधानतः ॥ १३  
 अतिथीन् पूजयन् नित्यं वन्येन हविषा विभुः ।  
 शिलोऽच्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥ १४  
 पूर्णं सहस्रं वर्षाणामेवंवृत्तिरभूत्रूपः ।  
 अम्बुभक्षः स चाब्दांस्त्रीनासीन्नियतवाइमनाः ॥ १५  
 ततस्तु वायुभक्षोऽभूत् संवत्सरमतन्द्रितः ।  
 पञ्चाग्रिमध्ये च तपस्तेषे संवत्सरं पुनः ॥ १६  
 एकपादस्थितश्चासीत् षण्मासाननिलाशनः ।  
 पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी ॥ १७

शतानीकने पूछा—भगवन्! किस कर्मसे वे भूपाल

पुनः स्वर्गमें पहुँचे थे? तथा इन्द्रने उन्हें भूतलपर क्यों ढकेल दिया था? विप्रवर! मैं ये सारी बातें पूर्णरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ। इन ब्रह्मर्षियोंके समीप आप इस प्रसंगका वर्णन करें। कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले अग्निके समान तेजस्वी राजा ययाति देवराज इन्द्रके समान थे। उनका यश चारों ओर फैला था। देवेश! मैं उन सत्यकीर्ति महात्मा ययातिका चरित्र, जो इहलोक और स्वर्गलोकमें सर्वत्र प्रसिद्ध है, सुनना चाहता हूँ ॥ ६—९ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! ययातिकी उत्तम कथा इहलोक और स्वर्गलोकमें भी पुण्यदायक है। यह सब पापोंका नाश करनेवाली है, मैं तुमसे उसका वर्णन करता हूँ। नहुष-पुत्र महाराज ययातिने अपने छोटे पुत्र पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके यदु आदि अन्य पुत्रोंको सीमान्त (किनारेके देशों)-में रख दिया। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ वे वनमें चले गये। वहाँ फल-मूलका आहार करते हुए उन्होंने दीर्घकालतक निवास किया। उन्होंने अपने मनको शुद्ध करके क्रोधपर विजय पायी और प्रतिदिन देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करते हुए वानप्रस्थाश्रमकी विधिसे शास्त्रीय विधानके अनुसार अग्निहोत्र प्रारम्भ किया। वे राजा शिलोऽच्छवृत्तिका आश्रय ले यज्ञशेष अन्नका भोजन करते थे। भोजनसे पूर्व वनमें उपलब्ध होनेवाले फल, मूल आदि हविष्यके द्वारा अतिथियोंका आदर-सत्कार करते थे। राजाको इसी वृत्तिसे रहते हुए पूरे एक हजार वर्ष बीत गये। उन्होंने मन और वाणीपर संयम करके तीन वर्षोंतक केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे आलस्यरहित हो एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे। फिर एक वर्षतक पाँच अग्नियोंके बीच बैठकर तपस्या की। इसके बाद छः महीनेतक हवा पीकर वे एक पैरसे खड़े रहे। तदनन्तर पुण्यकीर्ति महाराज ययाति पृथ्वी और आकाशमें अपना यश फैलाकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १०—१७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्ण-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक पैतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

## छत्तीसवाँ अध्याय

इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना

शौनक उवाच

स्वर्गतस्तु स राजेन्द्रो न्यवसद् देवसद्गनि ।  
 पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्धिर्वसुभिस्तथा ॥ १  
 देवलोकाद् ब्रह्मलोकं स चरन् पुण्यकृद् वशी ।  
 अवसत् पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः ॥ २  
 स कदाचिवृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागतः ।  
 कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्ठः स पृथिवीपतिः ॥ ३

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राज-  
 ऊरां गृहीत्वा प्रचचार लोके ।  
 तदा राज्यं सम्प्रदायैवमस्मै  
 त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४

ययातिरुवाच

प्रकृत्यनुमते पूर्णं राज्ये कृत्वेदमब्लुवम् ।  
 गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव ।  
 मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्तेऽधिपास्तव ॥ ५  
 अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्ट-

स्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।

अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो  
 विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः ॥ ६

आक्रोश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति ।  
 आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ७  
 नारुंतुदः स्यान्न नृशंसवादी

न हीनतः परमभ्याददीत ।

ययास्य वाचा पर उद्विजेत  
 न तां वदेद् रुशर्तीं पापलौत्याम् ॥ ८

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! स्वर्गलोकमें जाकर महाराज ययाति देव-भवनमें निवास करने लगे । वहाँ देवताओं, साध्यगणों, मरुदणों तथा वसुओंने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया । पुण्यात्मा तथा जितेन्द्रिय राजा वहाँ देवलोकसे ब्रह्मलोकतक भ्रमण करते हुए दीर्घकालतक रहे—ऐसी पौराणिक परम्परा है । एक दिन नृपत्रेष्ठ ययाति देवराज इन्द्रके पास आये । वार्तालापके अन्तमें इन्द्रने राजा ययातिसे इस प्रकार प्रश्न किया ॥ १—३ ॥

इन्द्रने पूछा—राजन् ! जिस समय पूरु आपसे वृद्धावस्था लेकर आपके स्वरूपसे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगा, सत्य कहिये, उस समय राज्य देकर आपने उसको क्या आदेश दिया था ? ॥ ४ ॥

ययातिने कहा—देवराज ! मैंने प्रजाओंकी अनुमतिसे पूरुको राज्याभिषिक्त करके उससे यह कहा था कि 'बेटा ! गङ्गा और यमुनाके बीचका यह सारा प्रदेश तुम्हारे अधिकारमें रहेगा । यह पृथ्वीका मध्य भाग है, इसके तुम राजा होओगे और तुम्हारे भाई सीमान्त देशोंके अधिपति होंगे ।' देवेन्द्र ! (इसके बाद मैंने यह उपदेश दिया कि मनुष्यको चाहिये कि वह दीनता, शठता और क्रोध न करे । कुटिलता, मात्सर्य और वैर कहीं न करे । माता, पिता, विद्वान्, तपस्वी तथा क्षमाशील पुरुषका बुद्धिमान् मनुष्य कभी अपमान न करे । शक्तिशाली पुरुष सदा क्षमा करता है । शक्तिहीन मनुष्य सदा क्रोध करता है । दुष्ट मानव साधु पुरुषसे और दुर्बल अधिक बलवान्-से द्वेष करता है । कुरुप मनुष्य रूपवान्-से, निर्धन धनवान्-से, अकर्मण्य कर्मनिष्ठसे और अधार्मिक धर्मात्मासे द्वेष करते हैं । इसी प्रकार गुणहीन मनुष्य गुणवान्-से डाह खता है । इन्द्र ! यह कलिका लक्षण है ।) क्रोध करनेवालोंसे वह पुरुष श्रेष्ठ है जो कभी क्रोध नहीं करता । इसी प्रकार असहनशीलसे सहनशील उत्तम है, मनुष्येतर प्राणियोंसे मनुष्य श्रेष्ठ है और मूर्खोंसे विद्वान् उत्तम है । यदि कोई किसीकी निन्दा करता या उसे गाली देता है तो वह भी बदलेमें निन्दा या गाली-गलौज न करे; क्योंकि जो गाली या निन्दा सह लेता है, उस पुरुषका आन्तरिक दुःख ही गाली देनेवाले या अपमान करनेवालेको जला डालता है । साथ ही उसके पुण्यको भी वह ले लेता है । क्रोधवश किसीके मर्म-स्थानमें

|   |        |                  |           |
|---|--------|------------------|-----------|
| अरुंतुदं  | पुरुषं | तीव्रवाचं        |           |
| वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।                    |        |                  |           |
| विद्यादलक्ष्मीकर्तमं                                |        | जनानां           |           |
| मुखे निबद्धं निर्वृतिं वहन्तम्॥ ९                   |        |                  |           |
| सद्गः पुरस्तादभिपूजितः स्यात्                       |        |                  |           |
| सद्ग्रस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।                 |        |                  |           |
| सदासतामतिवादांस्तितिक्षेत्                          |        |                  |           |
| सतां वृत्तं पालयन् साधुवृत्तः॥ १०                   |        |                  |           |
| वाक्सायका   |        | वदनान्निष्पतन्ति |           |
| यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।                          |        |                  |           |
| परस्य   | वा     | मर्मसु           | ते पतन्ति |
| तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु॥ ११                    |        |                  |           |
| नास्तीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।             |        |                  |           |
| यथा मैत्री च लोकेषु दानं च मधुरा च वाक्॥ १२         |        |                  |           |
| तस्मात् सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्। |        |                  |           |
| पूज्यान् सम्पूजयेद् दद्यान्नाभिशापं कदाचन॥ १३       |        |                  |           |

चोट न पहुँचाये (ऐसा बर्ताव न करे, जिससे किसीको मार्मिक पीड़ा हो)। किसीके प्रति कठोर बात भी मुँहसे न निकाले, अनुचित उपायसे शत्रुको भी वशमें न करे। जो जीको जलानेवाली हो, जिससे दूसरेको उद्घेग होता हो ऐसी बात मुँहसे न बोले; क्योंकि पापीलोग ही ऐसी बातें बोला करते हैं। जो स्वभावका कठोर हो, दूसरोंके मर्ममें चोट पहुँचाता हो, तीखी बातें बोलता हो और कठोर वचनरूपी काँटोंसे दूसरे मनुष्यको पीड़ा देता हो, उसे अत्यन्त लक्ष्मीहीन (दरिद्र या अभागा) समझे। उसको देखना भी बुरा है; क्योंकि वह कड़वी बोलीके रूपमें अपने मुँहमें बँधी हुई एक पिशाचिनीको ढो रहा है। (अपना बर्ताव और व्यवहार ऐसा रखे, जिससे) साधु पुरुष सामने तो सत्कार करें ही, पीठ-पीछे भी उनके द्वारा अपनी रक्षा हो। दुष्ट लोगोंकी कही हुई अनुचित बातें सदा सह लेनी चाहिये तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके सदाचारका आश्रय लेकर साधु पुरुषोंके व्यवहारको ही अपनाना चाहिये। दुष्ट मनुष्योंके मुखसे कटुवचनरूपी बाण सदा छूटते रहते हैं, जिनसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्तामें डूबा रहता है। वे वाग्वाण दूसरोंके मर्मस्थानोंपर ही चोट करते हैं; अतः विद्वान् पुरुष दूसरोंके प्रति ऐसी कठोर वाणीका प्रयोग न करे। सभी प्राणियोंके प्रति दया और मैत्रीका बर्ताव, दान और सबके प्रति मधुर वाणीका प्रयोग—तीनों लोकोंमें इनके समान कोई वशीकरण नहीं है। इसलिये कभी कठोर वचन न बोले। सदा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन ही बोले। पूजनीय पुरुषोंका पूजन (आदर-सत्कार) करे। दूसरोंको दान दे और स्वयं कभी किसीसे कुछ न माँगे॥ ५—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३६॥

## सैंतीसवाँ अध्याय

यथातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना

इन्द्र उवाच

**सर्वाणि कार्याणि समाप्य राजन्**  
गृहान् परित्यज्य वनं गतोऽसि।  
**तत् त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र**  
केनासि तुल्यस्तपसा ययाते॥ १  
यथातिरुवाच

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु।  
आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित् पश्यामि वासव॥ २

इन्द्र उवाच

**यदावमंस्था:** सदृशः श्रेयसश्च  
पापीयसश्चाविदितप्रभावः ।  
**तस्माल्लोका** ह्यन्तवन्तस्तवेमे  
क्षीणे पुण्ये पतितोऽस्यद्य राजन्॥ ३  
यथातिरुवाच

**सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात्**  
क्षयं गता मे यदि शक्त लोकाः।  
**इच्छाम्यहं सुरलोकाद् विहीनः**  
सतां मध्ये पतितुं देवराज॥ ४  
इन्द्र उवाच

**सतां सकाशे पतितोऽसि राज-**  
श्चयुतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूयः।  
**एवं विदित्वा तु पुनर्याते**  
न तेऽवमान्याः सदृशः श्रेयसे च॥ ५

शौनक उवाच

**ततः पपातामरराजजुष्टात्**  
पुण्याल्लोकात् पतमानं ययातिम्।  
**सम्प्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्त-**  
मुवाच सद्बद्धर्मविधानगोप्ता॥ ६

अष्टक उवाच

**कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः**  
स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्निः।  
**पतस्युदीर्णाम्बुधरप्रकाशः**  
खे खेचराणां प्रवरो यथार्कः॥ ७

इन्द्रने कहा—राजन्! आप सम्पूर्ण कर्मोंको समाप्त करके घर छोड़कर वनमें चले गये थे; अतः नहुषपुत्र ययाते! मैं आपसे पूछता हूँ कि आप तपस्यामें किसके समान हैं?॥ १॥

यथातिने कहा—इन्द्र! मैं न तो देवताओं एवं मनुष्योंमें तथा न गन्धर्वों और महर्षियोंमें ही किसीको ऐसा देख रहा हूँ जो तपस्यामें मेरे समान हो (अर्थात् मैं तपमें अद्वितीय हूँ)॥ २॥

इन्द्र बोले—राजन्! आपने अपने समान, अपने-से बड़े और छोटे लोगोंका प्रभाव न जानकर सबका तिरस्कार किया है, अतः आपके इन पुण्यलोकोंमें रहनेकी अवधि समाप्त हो गयी; क्योंकि (दूसरोंकी निन्दा करनेके कारण) आपका पुण्य क्षीण हो गया, इसलिये अब आप यहाँसे नीचे गिरेंगे॥ ३॥

यथातिने कहा—देवराज इन्द्र! देवता, ऋषि, गन्धर्व और मनुष्य आदिका अपमान करनेके कारण यदि मेरे पुण्यलोक क्षीण हो गये हैं तो इन्द्रलोकसे भ्रष्ट होकर मैं साधु पुरुषोंके बीचमें गिरनेकी इच्छा करता हूँ॥ ४॥

इन्द्र बोले—राजन् ययाति! आप यहाँसे च्युत होकर साधु पुरुषोंके ही समीप गिरेंगे और वहाँ अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर लेंगे; किंतु यह सब जानकर आप फिर (आगे) कभी अपनी बराबरीवाले तथा अपनेसे बड़े लोगोंका अपमान मत कीजियेगा॥ ५॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर देवराज इन्द्रके सेवन करनेयोग्य पुण्यलोकोंका परित्याग कर राजा ययाति नीचे गिरने लगे। उस समय राजर्षियोंमें श्रेष्ठ एवं उत्तम धर्मविधिके पालक अष्टकने उन्हें गिरते देखा। (तब) उन्होंने उन (ययाति)-से (इस प्रकार) कहा॥ ६॥

अष्टकने पूछा—‘इन्द्रके समान सुन्दर रूपवाले तरुण पुरुष आप कौन हैं? आप अपने तेजसे अग्निकी भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं। मेघरूपी घने अन्धकारवाले आकाशसे आकाशचारी ग्रहोंमें श्रेष्ठ सूर्यके समान आप कैसे गिर रहे हैं?’

दृष्टा च त्वां सूर्यपथात् पतनं  
 वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम्।  
 किं नु स्विदेतत् पततीव सर्वे  
 वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः॥ ८  
 दृष्टा च त्वाधिष्ठितं देवमार्गं  
 शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम् ।  
 प्रत्युद्रूतास्त्वां वयमद्य सर्वे  
 तस्मात् पाते तव जिज्ञासमानाः॥ ९  
 न चापि त्वां धृष्णावः प्रष्टुमग्रे  
 न च त्वमस्मान् पृच्छसि के वयं स्म ।  
 तत् त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूप  
 कस्य त्वं वा किं निमित्तं त्वमागाः॥ १०  
 भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ  
 त्यजाशु देवेन्द्रसमानरूप ।  
 त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे  
 शक्रो न सोङु बलहापि शक्तः॥ ११  
 सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां  
 सतां सदैवामरराजकल्प ।  
 ते सङ्गताः स्थावरजङ्गमेशाः  
 प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु॥ १२  
 प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः।  
 प्रभुः सूर्यः प्रकाशाच्च सतां चाभ्यागतः प्रभुः॥ १३

आपका तेज सूर्य और अग्निके सदृशा है। आप अप्रमेय शक्तिशाली जान पड़ते हैं। आपको सूर्यके मार्गसे गिरते देख हम सब लोग मोहित (आश्वर्यचकित) होकर इस तर्क-वितर्कमें पड़े हैं कि यह क्या गिर रहा है? आप इन्द्र, सूर्य और विष्णुके समान प्रभावशाली हैं। आपको आकाशमें स्थित देखकर हम सब लोग अब यह जाननेके लिये आपके निकट आये हैं कि आपके पतनका यथार्थ कारण क्या है। हम पहले आपसे कुछ पूछनेका साहस नहीं कर सकते और आप भी हमसे हमारा परिचय नहीं पूछते कि हम कौन हैं। इसलिये मैं ही आपसे पूछता हूँ। मनोरम रूपवाले महापुरुष! आप किसके पुत्र हैं और किसलिये यहाँ आये हैं? इन्द्रके तुल्य शक्तिशाली पुरुष! आपका भय दूर हो जाना चाहिये। अब आपको (स्वर्गसे गिरनेका) विषाद और मोह भी तुरंत त्याग देना चाहिये। इस समय आप संतोंके समीप विद्यमान हैं। बल दानवका नाश करनेवाले इन्द्र भी अब आपका तेज सहन करनेमें असमर्थ हैं। देवेश्वर इन्द्रके समान तेजस्वी महानुभाव! सुखसे वञ्चित होनेवाले साधु पुरुषोंके लिये सदा संत ही परम आश्रय हैं। वे स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंपर शासन करनेवाले सत्पुरुष यहाँ एकत्र हुए हैं। आप अपने समान पुण्यात्मा संतोंके बीचमें स्थित हैं। जैसे तपनेकी शक्ति अग्निमें है, बोये हुए बीजको धारण करनेकी शक्ति पृथ्वीमें है, प्रकाशित होनेकी शक्ति सूर्यमें है, उसी प्रकार संतोंका स्वामित्व—उनपर शासन करनेकी शक्ति केवल अतिथिको ही प्राप्त है'॥ ७—१३॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते ययातिपतनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक सेंटीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३७॥

## अड़तीसवाँ अध्याय

### ययाति और अष्टकका संवाद

|     |  |
|-----|--|
| अहं | ययातिर्नहृष्टस्य पुत्रः<br>पूरोः पिता सर्वभूतावमानात्।<br>प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात्<br>परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः॥ १ |
|-----|--|

ययातिने कहा—महात्मन्! मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता ययाति हूँ। समस्त प्राणियोंका अपमान करनेसे मेरा पुण्य क्षीण हो गया है। इस कारण मैं देवताओं तथा सिद्धोंके लोकसे च्युत होकर नीचे गिर रहा हूँ।

अहं हि पूर्वो वयसा भवद्द्वय-  
स्तेनाभिवादं भवतां न युज्ञे।  
यो विद्यया तपसा जन्मना वा  
वृद्धः स वै सम्भवति द्विजानाम्॥ २

अष्टक उवाच

अवादीस्त्वं वयसास्मि वृद्ध  
इति वै राजन्नधिकः कथंचित्।  
यो वै विद्वांस्तपसा च वृद्धः  
स एव पूज्यो भवति द्विजानाम्॥ ३

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहु-  
स्तद्वर्तिनां प्रवणं पापलोकम्।  
सन्तोऽसतो नानुवर्तत्त ते वै  
यदात्मनैषां प्रतिकूलवादी॥ ४

अभूद् धनं मे विपुलं महद् वै  
विचेष्टमानोऽधिगन्ता तदस्मि।

एवं प्रथार्यात्महिते निविष्टे  
यो वर्तते स विजानाति धीरः॥ ५

नानाभावा बहवो जीवलोके  
दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः।

तत् तत् प्राय्य न विहन्येत धीरो  
दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुद्ध्या॥ ६

सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं  
दैवाधीनं विन्दति नात्मशक्त्या।

तस्माद् दिष्टं बलवन्मन्यमानो  
न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित्॥ ७

दुःखे न तप्येत् सुखे न हृष्येत्  
समेन वर्तेत् सदैव धीरः।

दिष्टं बलीय इति मन्यमानो  
न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित्॥ ८

भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित्  
संतापे मे मानसो नास्ति कश्चित्।

धाता यथा मां विदधाति लोके  
ध्रुवं तदाहं भवितेति मत्वा॥ ९

संस्वेदजा ह्याण्डजा ह्युद्धिदश्श  
सरीसृपाः कृमयोऽप्यप्सु मत्स्याः।

तथाशमानस्तृणकाष्ठं च सर्वं  
दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते॥ १०

मैं आपलोगोंसे अवस्थामें बड़ा हूँ, अतः आपलोगोंको प्रणाम नहीं कर रहा हूँ। द्विजातियोंमें जो विद्या, तप और अवस्थामें बड़ा होता है वही पूजनीय माना जाता है॥ १-२॥

अष्टक बोले—राजन्! आपने जो यह कहा है कि मैं अवस्थामें बड़ा हूँ, इसलिये ज्येष्ठ हूँ, सो इसमें आप कुछ अधिक कह गये; क्योंकि द्विजोंमें जो विद्या और तपस्यामें बड़ा-चड़ा होता है, वही पूज्य माना जाता है॥ ३॥

ययातिने कहा—पापको पुण्यकर्मोंका नाशक बताया जाता है। वह नरककी प्रासि करानेवाला है और वह उद्दण्ड पुरुषोंमें ही देखा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष दुराचारी पुरुषोंके दुराचारका अनुसरण नहीं करते। पहलेके साधु पुरुष भी उन श्रेष्ठ पुरुषोंके ही अनुकूल आचरण करते थे। मेरे पास पुण्यरूपी बहुत धन था, किंतु दूसरोंकी निन्दा करनेके कारण वह सब नष्ट हो गया। अब मैं चेष्टा करके भी उसे नहीं पा सकता। मेरी इस दुरवस्थाको समझ-बूझकर जो आत्मकल्याणमें संलग्न रहता है, वही ज्ञानी और धीर है। इस जीव-जगत्में भिन्न-भिन्न स्वभाववाले बहुत-से प्राणी हैं, वे सभी प्रारब्धके अधीन हैं, अतः उनके धनादि पदार्थोंके लिये किये हुए उद्योग और अधिकार सभी व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिये धीर पुरुषको चाहिये कि वह अपनी बुद्धिसे ‘प्रारब्ध ही बलवान् है’—यह जानकर दुःख या सुख जो भी मिले, उसमें विकारको न प्राप्त हो। जीव जो सुख अथवा दुःख पाता है, वह उसे प्रारब्ध (भाग्य)-से ही प्राप्त होता है, अपनी शक्तिसे नहीं; अतः प्रारब्धको ही बलवान् मानकर मनुष्य किसी प्रकार भी हर्ष अथवा शोक न करे। दुःखोंसे संतप्त न हो और सुखोंसे हर्षित न हो। धीर पुरुष सदा समभावसे ही रहे और भाग्यको ही प्रबल मानकर किसी प्रकार चिन्ता एवं हर्षके वशीभूत न हो। अष्टक! मैं कभी भयमें पड़कर मोहित नहीं होता, मुझे कोई मानसिक संताप भी नहीं होता; क्योंकि मैं समझता हूँ कि विधाता इस संसारमें मुझे जैसे रखेगा वैसे ही रहूँगा। स्वेदज, अण्डज, उद्धिज, सरीसृप, कृमि, जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीव तथा पर्वत, तृण और काष्ठ—ये सभी प्रारब्ध-भोगका सर्वथा क्षय हो जानेपर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं।

अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा  
कस्मात् संतापमष्टकाहं भजेयम्।  
किं कुर्या वै किं च कृत्वा न तप्ये  
तस्मात् संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥ ११  
शौनक उवाच

एवं ब्रुवाणं नृपतिं यथाति-  
मथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत् ।  
मातामहं सर्वगुणोपपत्रं  
यत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत् ॥ १२  
अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्र प्रधाना-  
स्वया भुक्ता यं च कालं यथा च ।  
तत्मे राजन् ब्रूहि सर्वं यथावत्  
क्षेत्रज्ञवद् भाषसे त्वं हि धर्मम् ॥ १३  
यथातिरुचाच

राजाहमासं त्विह सार्वभौम-  
स्ततो लोकान् महतश्चार्जयं वै ।  
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं  
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १४

ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां  
सहस्रद्वारां शतयोजनान्ताम् ।  
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं  
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १५

ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं  
प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम् ।  
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं  
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः ॥ १६

देवस्य देवस्य निवेशने च  
विजित्य लोकान् न्यवसं यथेष्टम् ।  
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तै-  
स्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १७

तथावसं नन्दने कामरूपी  
संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।  
सहाप्सरोभिर्विचरन् पुण्यगन्धान्  
पश्यन् नगान् पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १८

अष्टक! मैं सुख तथा दुःख—दोनोंकी अनित्यताको जानता हूँ, फिर मुझे संताप हो तो कैसे? मैं क्या करूँ और क्या करके संताप न होऊँ—इन बातोंकी चिन्ता छोड़ चुका हूँ, अतः सावधान रहकर शोक-संतापको अपनेसे दूर रखता हूँ॥ ४—११ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! राजा यथाति समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे और नातेमें अष्टकके नाना लगते थे। वे अन्तरिक्षमें वैसे ही ठहरे हुए थे, जैसे मानो स्वर्गलोकमें हों। जब उन्होंने उपर्युक्त बातें कहीं तब अष्टकने उनसे पुनः प्रश्न किया॥ १२ ॥

अष्टकने कहा—महाराज! आपने जिन-जिन प्रधान लोकोंमें रहकर जितने समयतक वहाँके सुखोंका भली-भाँति उपभोग किया है, उन सबका मुझे यथार्थ परिचय दीजिये। राजन्! आप तो महात्माओंकी भाँति धर्मोंका उपदेश कर रहे हैं॥ १३ ॥

यथातिने कहा—अष्टक! मैं पहले समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा था। तदनन्तर सत्कर्मोद्वारा बड़े-बड़े लोकोंपर मैंने विजय प्राप्त की और उनमें एक हजार वर्षोंतक (सुखपूर्वक) निवास किया। इसके बाद उनसे भी उच्चतम लोकमें जा पहुँचा। वहाँ सौ योजन विस्तृत और एक हजार दरवाजोंसे युक्त इन्द्रकी रमणीय पुरी प्राप्त हुई। उसमें मैंने केवल एक हजार वर्षोंतक निवास किया और उसके बाद उससे भी ऊँचे लोकमें गया। तदनन्तर लोकपालोंके लिये भी दुर्लभ प्रजापतिके उस दिव्यलोकमें जा पहुँचा, जहाँ जरावस्थाका प्रवेश नहीं है। वहाँ एक हजार वर्षतक रहा, फिर उससे भी उत्तम लोकमें चला गया। वह देवाधिदेव ब्रह्माजीका धाम था। वहाँ मैं अपनी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न लोकोंमें विहार करता हुआ सम्पूर्ण देवताओंसे सम्मानित होकर रहा। उस समय मेरा प्रभाव और तेज देवेश्वरोंके समान था। इसी प्रकार मैं नन्दनवनमें इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ दस लाख वर्षोंतक रहा। वहाँ मुझे पवित्र गन्ध और मनोहर रूपवाले वृक्ष देखनेको मिले, जो फूलोंसे लदे हुए थे।

तत्र स्थितं मां देवसुखेषु सक्तं  
 कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।  
 दूतो देवानामब्रवीदुग्रस्त्वा  
 ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १९  
 एतावन्मे विदितं राजसिंहं  
 ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात् क्षीणपुण्यः।  
 वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणा-  
 मनुक्रोशाच्छोचतां मां नरेन्द्र ॥ २०  
 अकस्माद् वै क्षीणपुण्यो यथातिः  
 पतत्यसौ पुण्यकृत् पुण्यकीर्तिः।  
 तानब्रुवं पतमानस्तदाहं  
 सतां मध्ये निपत्तेयं कथं नु ॥ २१  
 तैराख्यातां भवतां यज्ञभूमिं  
 समीक्ष्य चैनामहमागतोऽस्मि।  
 हविर्गन्धैर्दर्शितां यज्ञभूमिं  
 धूमापाङ्गं परिगृह्य प्रतीताम् ॥ २२

वहाँ रहकर मैं देवलोकके सुखोंमें आसक्त हो गया। तदनन्तर बहुत अधिक समय बीत जानेपर एक भयंकर रूपधारी देवदूत आकर मुझसे ऊँची आवाजमें तीन बार बोला—‘गिर जाओ, गिर जाओ, गिर जाओ।’ राजशिरोमणे! मुझे इतना ही ज्ञात हो सका है। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेके कारण मैं नन्दनवनसे नीचे गिर पड़ा। नरेन्द्र! उस समय मेरे लिये शोक करनेवाले देवताओंकी अन्तरिक्षमें यह दयाभरी बाणी सुनायी पड़ी—‘अहो! बड़े कष्टकी बात है कि पवित्र कीर्तिवाले ये पुण्यकर्म महाराज यथाति पुण्य क्षीण होनेके कारण नीचे गिर रहे हैं!’ तब नीचे गिरते हुए मैंने उनसे पूछा—‘देवताओं! मैं साधु पुरुषोंके बीच गिरूँ, इसका क्या उपाय है?’ तब देवताओंने मुझे आपकी यज्ञभूमिका परिचय दिया। मैं इसीको देखता हुआ तुरंत यहाँ आ पहुँचा हूँ। यज्ञभूमिका परिचय देनेवाली हविष्यकी सुगन्धका अनुभव तथा धूमप्रान्तका अवलोकन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता और सान्त्वना मिली है ॥ १४—२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे यथातिचरितेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें यथाति-चरित-वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

## उन्तालीसवाँ अध्याय

### अष्टक और यथातिका संवाद

|   |  |
|---|--|
| यदा वसन् नन्दने कामरूपे<br>संवत्सराणामयुतं शतानाम्।<br>किं कारणं कार्तयुगप्रधानं<br>हित्वा तद् वै वसुधामन्वपद्यः ॥ १<br><small>यथातिरिक्त</small> | अष्टक उवाच<br>सुहृत् स्वजनो यो यथेह<br>क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि।<br>तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं<br>त्यजन्ति सद्यः खचरा देवसंघाः ॥ २<br><small>अष्टक उवाच</small> |
| कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति<br>सम्मुहृते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम्।<br>किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति<br>तद् वै ब्रूहि क्षेत्रवित् त्वं मतो मे ॥ ३  |  |

अष्टकने पूछा—सत्ययुगके निष्पाप राजाओंमें प्रधान नरेश! जब आप इच्छानुसार रूप धारण करके दस लाख वर्षोंतक नन्दनवनमें निवास कर चुके हैं, तब क्या कारण है कि आप उसे छोड़कर भूतलपर चले आये? ॥ १ ॥

यथाति बोले—जैसे इस लोकमें जाति-भाई, सुहृद् अथवा स्वजन कोई भी क्यों न हो, धन नष्ट हो जानेपर उसे सब मनुष्य त्याग देते हैं, उसी प्रकार स्वर्गलोकमें जिसका पुण्य समाप्त हो जाता है, उस मनुष्यको देवराज इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तुरंत त्याग देते हैं ॥ २ ॥

अष्टकने पूछा—देवलोकमें मनुष्योंके पुण्य कैसे क्षीण होते हैं? इस विषयमें मेरा मन अत्यन्त मोहित हो रहा है। प्रजापतिका वह कौन-सा धाम है, जिसमें विशिष्ट (अपुनरावृत्तिकी योग्यतावाले) पुरुष जाते हैं? यह बताइये; क्योंकि आप मुझे जानी जान पड़ते हैं ॥ ३ ॥

यथातिरुचाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति  
लालप्यमाना नरदेव सर्वे ।  
ते कङ्गोमायुपलाशनार्थ  
क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥ ४  
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र  
दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म ।  
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद्  
भूयश्वेदानीं वद किं ते वदामि ॥ ५

अष्टक उवाच

यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि  
तथा गृधाः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।  
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति  
त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि ॥ ६

यथातिरुचाच

ऊर्ध्वं देहात् कर्मणो जृम्भमाणाद्  
व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति ।  
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति  
नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७  
षष्ठि सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि  
तथाशीतिं चैव तु वत्सराणाम् ।  
तान् वै तुदन्ते प्रपतन्तः प्रयातान्  
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥ ८

अष्टक उवाच

यदेतांस्ते सम्पतन्तस्तुदन्ति  
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।  
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति  
कथंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ९

यथातिरुचाच

असुग्रेतःपुष्परसानुयुक्त-  
मन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम् ।  
तद्वै तस्या रज आपद्यते च  
स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥ १०  
वनस्पतीनोषधीश्वाविशन्ति  
अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।  
चतुष्पदं द्विपदं चापि सर्व  
एवंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ११

यथाति बोले—नरदेव ! जो अपने मुखसे अपने पुण्यकर्मोंका बखान करते हैं, वे सभी इस भौम नरकमें आ गिरते हैं । यहाँ वे गीधों, गीदड़ों और कौओं आदिके खानेयोग्य इस शरीरके लिये पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रादिरूपसे बहुधा विस्तारको प्राप्त होते हैं । इसलिये नरेन्द्र ! इस लोकमें जो दुष्ट और निन्दनीय कर्म हो, उसे सर्वथा त्याग देना चाहिये । भूपाल ! मैंने तुमसे सब कुछ कह दिया; बोलो, अब तुम्हें क्या बताऊँ ॥ ४-५ ॥

अष्टकने पूछा—जब मनुष्योंको मृत्युके पश्चात् पक्षी, गीध, मयूर और पतङ्ग—ये नोच-नोचकर खा लेते हैं तब वे कैसे और किस रूपमें उत्पन्न होते हैं ? आज मैं आपके ही मुखसे (प्रथम बार) भौम नरकका (जिसे कभी नहीं सुना था) नाम सुन रहा हूँ ॥ ६ ॥

यथाति बोले—कर्मसे उत्पन्न होने और बढ़नेवाले शरीरको पाकर गर्भसे निकलनेके पश्चात् जीव सबके समक्ष इस पृथ्वीपर (विषयोंमें) विचरते हैं । उनका यह विचरण ही भौम नरक कहा गया है । इसीमें वे पड़ते हैं । इसमें पड़नेपर वे व्यर्थ बीतनेवाले अनेक वर्षसमूहोंकी ओर दृष्टिपात नहीं करते । कितने ही प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें साठ हजार वर्ष रहते हैं । कुछ अस्सी हजार वर्षोंतक वहाँ निवास करते हैं । इसके बाद वे भूमिपर गिरते हैं । यहाँ उन गिरनेवाले जीवोंको तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयानक राक्षस (दुष्ट प्राणी) अत्यन्त पीड़ा देते हैं ॥ ७-८ ॥

अष्टकने पूछा—तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयंकर राक्षस पापवश आकाशसे गिरते हुए जिन जीवोंको सताते हैं, वे गिरकर कैसे जीवित रहते हैं ? किस प्रकार इन्द्रिय आदिसे युक्त होते हैं ? और गर्भमें कैसे आते हैं ? ॥ ९ ॥

यथाति बोले—अन्तरिक्षसे गिरा हुआ प्राणी असृक् (रक्त) होता है । फिर वही क्रमशः नूतन शरीरका बीजभूत वीर्य बन जाता है । (फिर) वह पुष्पके रससे संयुक्त होकर कर्मानुरूप योनिका अनुसरण करता है । गर्भाधान करनेवाले पुरुषके द्वारा स्त्रीसंसर्ग होनेपर वीर्यमें आविष्ट हुआ वह जीव उस स्त्रीके रजसे मिल जाता है । तदनन्तर वही गर्भरूपमें परिणत हो जाता है । जीव जलरूपसे गिरकर वनस्पतियों और ओषधियोंमें प्रवेश करते हैं तथा जल, वायु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदिमें प्रवेश करते हुए कर्मानुसार पशु अथवा मनुष्य सब कुछ होते हैं । इस प्रकार वे भूमिपर आकर फिर पूर्वोक्त क्रमके अनुसार गर्भभावको प्राप्त होते हैं ॥ १०-११ ॥

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह                            गर्भे  
 उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति ।  
 आपद्यमानो                                    नरयोनिमेता-  
 माचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम् ॥ १२  
 शरीरदेहादिसमुच्छ्रयं                            च  
 चक्षुः श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।  
 एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्ठः  
 क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे ॥ १३  
 यातिरुवाच  
 वायुः समुत्कर्षति                            गर्भयोनि-  
 मृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम् ।  
 स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः  
 क्रमेण संवर्धयतीह                            गर्भम् ॥ १४  
 स जायमानोऽथ                                    गृहीतगात्रः  
 संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः ।  
 स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं  
 स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥ १५  
 घ्राणेन गन्धं जिह्वाथो रसं च  
 त्वचा स्पर्शं मनसा देवभावम् ।  
 इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि  
 महात्मनः प्राणभूतः शरीरे ॥ १६  
 अष्टक उवाच  
 यः संस्थितः पुरुषो दद्यते वा  
 निखन्यते वापि निकृष्यते वा ।  
 अभावभूतः स विनाशमेत्य  
 केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥ १७  
 यातिरुवाच  
 हित्वा सोऽसून् सुसवनिष्ठितत्वात्  
 पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं च ।  
 अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां  
 हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥ १८  
 पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति  
 पापां योनिं पापकृतो तजन्ति ।  
 कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापा-  
 न्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥ १९

अष्टकने पूछा—राजन्! इस मनुष्ययोनिमें आनेवाला जीव अपने इसी शरीरसे गर्भमें आता है या दूसरा शरीर धारण करता है? आप यह रहस्य मुझे बताइये। मैं संशय होनेके कारण पूछता हूँ। गर्भमें आनेपर वह भिन्न-भिन्न शरीररूपी आश्रयको, आँख और कान आदि इन्द्रियोंको तथा चेतनाको भी कैसे उपलब्ध करता है? मेरे पूछनेपर ये सब बातें आप बताइये। तात! हम सब लोग आपको क्षेत्रज्ञ (आत्मज्ञानी) मानते हैं ॥ १२-१३ ॥

याति बोले—ऋतुकालमें पुष्परससे संयुक्त वीर्यको वायु गर्भाशयमें खींच लेता है और वह वहाँ उसपर अधिकार जमाकर क्रमशः गर्भकी वृद्धि करता रहता है। वह गर्भ बढ़कर जब सम्पूर्ण अवयवोंसे सम्पन्न हो जाता है तब चेतनाका आश्रय ले योनिसे बाहर निकलकर मनुष्य कहलाता है। वह कानोंसे शब्द सुनता है, आँखोंसे रूप देखता है, नासिकासे गन्ध लेता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, त्वचासे स्पर्श और मनसे आन्तरिक भावोंका अनुभव करता है। अष्टक! इस प्रकार महान् आत्मबलसे सम्पन्न प्राणधारियोंके शरीरमें जीवकी स्थापना होती है ॥ १४-१६ ॥

अष्टकने पूछा—जो मनुष्य मर जाता है, वह जलाया जाता है या गाड़ दिया जाता है अथवा जलमें बहा दिया जाता है। इस प्रकार विनाश होकर स्थूल शरीरका अभाव हो जाता है। फिर वह चेतन जीवात्मा किस शरीरके आधारपर रहकर चैतन्ययुक्त व्यवहार करता है? ॥ १७ ॥

याति बोले—राजसिंह! जैसे मनुष्य श्वास लेते हुए प्राणयुक्त स्थूल शरीरको छोड़कर स्वप्रमें विचरण करता है, वैसे ही यह चेतन जीवात्मा अस्फुट शब्दोच्चारणके साथ इस मृतक स्थूल शरीरको त्यागकर सूक्ष्म शरीरसे संयुक्त होता है और फिर पुण्य अथवा पापको आगे रखकर उसी पुण्य-पापके अनुसार अन्य योनिको प्राप्त होता है। पुण्य करनेवाले मनुष्य पुण्य-योनिमें और पाप करनेवाले मनुष्य पाप-योनिमें जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव कीट-पतङ्ग आदि होते हैं। महानुभाव! इन सब विषयोंको विस्तारके साथ कहनेकी इच्छा नहीं होती।

चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च  
तथाभूता गर्भभूता भवन्ति ।  
आख्यातमेतत्रिखिलं हि सर्वं  
भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥ २०  
अष्टक उवाच

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां  
मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा ।  
तम्मे पृष्ठः शंस सर्वं यथाव-  
च्छुभाँल्लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण ॥ २१  
ययातिरुवाच

तपश्च दानं च शमो दमश्च  
हीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।  
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो  
द्वाराणि समैव महान्ति पुंसाम् ॥ २२

सर्वाणि चैतानि यथोदितानि  
तपः प्रधानान्यभिमर्षकेण ।

नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः  
पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥ २३

अधीयानः पण्डितमन्यमानो  
यो विद्यया हन्ति यशः परस्य ।

तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोका  
न चास्य तद् ब्रह्मफलं ददाति ॥ २४

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि  
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।

पानाग्निहोत्रमुत मानमौनं  
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ २५

न मान्यमानो मुदमाददीत  
न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।

सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके  
नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते ॥ २६

इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम् ।  
इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानि नित्यशः ॥ २७

ये चाश्रयं वेदयन्ते पुराणं  
मनीषिणो मानसमार्गरुद्धम् ।

तत्रिःश्रेयस्तेन संयोगमेत्य  
परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥ २८

नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार जीव गर्भमें आकर चार पैरवाले (चतुष्पाद), दो पैरवाले मनुष्यादि और पक्षियोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं । यह सब मैंने पूरा-पूरा बतला दिया । अब और क्या पूछना चाहते हो ? ॥ १८—२० ॥

अष्टकने पूछा—तात ! मनुष्य कौन-सा कर्म करके उत्तम यश प्राप्त करता है ? वह यश तपसे प्राप्त होता है या विद्यासे ? मैं यही पूछता हूँ । जिस कर्मके द्वारा क्रमशः श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति हो सके, वह सब यथार्थ-रूपसे बताइये ॥ २१ ॥

ययाति बोले—राजन् ! साधु पुरुष स्वर्गलोकके सात महान् दरवाजे बतलाते हैं, जिनसे प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं । उनके नाम ये हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और समस्त प्राणियोंके प्रति दया । वे तप आदि द्वारा सदा ही पुरुषके अभिमानरूप तमसे आच्छादित होनेपर नष्ट हो जाते हैं, यह संत पुरुषोंका कथन है । जो वेदोंका अध्ययन करके अपनेको सबसे बड़ा पण्डित मानता और अपनी विद्याद्वारा दूसरोंके यशका नाश करता है, उसके पुण्यलोक अन्तवान् (विनाशशील) होते हैं और उसका पढ़ा हुआ वेद भी उसे फल नहीं देता । अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ—ये चार कर्म मनुष्यको भयसे मुक्त करनेवाले हैं; परंतु वे ही ठीकसे न किये जायँ, दूषित भावसे अनुष्ठित हों तो वे उलटे भय प्रदान करते हैं । विद्वान् पुरुष सम्मानित होनेपर अधिक आनन्दित न हो, अपमानित होनेपर संतस न हो । इस लोकमें संत पुरुष ही सत्पुरुषोंका आदर करते हैं । दुष्ट पुरुषोंको 'यह सत्पुरुष है' ऐसी बुद्धि प्राप्त ही नहीं होती । ऐसा दान देना चाहिये, इस प्रकार यजन करना चाहिये, इस तरह स्वाध्यायमें लगा रहना चाहिये—ये सभी वचन अभयदायक हैं, अतः नित्य पालनीय हैं—ऐसा मैंने सुना है । जो सबका आश्रय है, पुराण (कूटस्थ) है तथा जहाँ मनकी गति भी रुक जाती है, वह (परब्रह्म परमात्मा) तुम सब लोगोंके लिये कल्याणकारी हो । जो विद्वान् उसे जानते हैं वे उस परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त होकर इहलोक और परलोकमें परम शान्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २२—२८ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

## चालीसवाँ अध्याय

यथाति और अष्टकका आश्रमधर्मसम्बन्धी संवाद

अष्टक उवाच

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान्  
 कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा ।  
 वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो  
 बहून्यस्मिन् सम्प्रति वेदयन्ति ॥ १  
यथातिरुवाच  
 आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः  
 पूर्वोत्थायी चरमं चाथ शायी ।  
 मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः  
 स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी ॥ २  
 धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत  
 दद्यात् सदैवातिथीन् भोजयेच्च ।  
 अनाददानश्च पैररदत्तं  
 सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी ॥ ३  
 स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो  
 दाता परेभ्यो न परोपतापी ।  
 तादृङ्गमुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां  
 वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः ॥ ४  
 अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं  
 जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः ।  
 अनोकशायी लघु लिप्समान-  
 श्रन् देशानेकाम्बरः स भिक्षुः ॥ ५  
 रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका  
 भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च ।  
 तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वा-  
 नरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा ॥ ६  
 दशैव पूर्वान् दशचापरांस्तु  
 ज्ञातींस्तथात्मानमर्थैकविंशम् ।  
 अरण्यवासी सुकृतं दधाति  
 मुक्त्वा त्वरण्ये स्वशरीरधातृन् ॥ ७

अष्टकने पूछा—महाराज ! वेदज्ञ विद्वान् इस धर्मके अन्तर्गत बहुत-से कर्मोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्तिका द्वार बताते हैं, अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि आचार्यकी सेवा करनेवाला ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सन्मार्गमें स्थित वानप्रस्थ और सन्न्यासी किस प्रकार धर्माचरण करके उत्तम लोकमें जाते हैं ? ॥ १ ॥

यथाति बोले—शिष्यको उचित है कि गुरुके बुलानेपर उसके समीप जाकर पढ़े, गुरुकी सेवामें बिना कहे लगा रहे, रातमें गुरुजीके सो जानेके बाद सोवे और सबेरे उनसे पहले ही उठ जाय। वह मृदुल (विनम्र), जितेन्द्रिय, धैर्यवान्, सावधान और स्वाध्यायशील हो। इस नियमसे रहनेवाला ब्रह्मचारी सिद्धिको पाता है। गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनको पाकर उससे यज्ञ करे, दान दे और सदा अतिथियोंको भोजन करावे। दूसरोंकी वस्तु उनके दिये बिना ग्रहण न करे। यह गृहस्थधर्मका प्राचीन एवं रहस्यमय स्वरूप है। वानप्रस्थ मुनि वनमें निवास करे। आहार और विहारको नियमित रखे। अपने ही पराक्रम एवं परिश्रमसे जीवन-निर्वाह करे, पापसे दूर रहे। दूसरोंको दान दे और किसीको कष्ट न पहुँचाये। ऐसा मुनि परम मोक्ष (सिद्धि)-को प्राप्त होता है। सन्न्यासी शिल्पकलासे जीवन-निर्वाह न करे। वह शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न हो, सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखे, सबसे अलग रहे, गृहस्थके घरमें न सोये, परिग्रहका भार न लेकर अपनेको हलका रखे, थोड़ा-थोड़ा चले और अकेला ही अनेक स्थानोंमें भ्रमण करता रहे। ऐसा सन्न्यासी ही वास्तवमें भिक्षु कहलाने योग्य है। जिस समय रूप, रस आदि विषय तुच्छ प्रतीत होने लगें, इच्छानुसार जीत लिये जायें तथा उनके परित्यागमें ही सुख जान पड़े, उसी समय विद्वान् पुरुष मनको वशमें करके समस्त संग्रहोंका त्याग कर वनवासी होनेका प्रयत्न करे। जो वनवासी मुनि वनमें ही अपने पञ्चभूतात्मक शरीरका परित्याग करता है, वह दस पीढ़ी पूर्वके और दस पीढ़ी बादके जाति-भाइयोंको तथा इक्कीसवें अपनेको भी पुण्यलोकोंमें पहुँचा देता है ॥ २—७ ॥

अष्टक उवाच

कतिस्विद् देव मुनयो मौनानि कति चाप्युत ।  
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ८

यथातिरुवाच

अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः ।  
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप ॥ ९

अष्टक उवाच

कथंस्विद् वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ।  
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः ॥ १०

यथातिरुवाच

न ग्राम्यमुपयुज्ञीत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।  
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः ॥ ११

अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः ।  
कौपीनाच्छादनं यावत् तावदिच्छेच्च चीवरम् ॥ १२

यावत् प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम् ।  
तदास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः ॥ १३

यस्तु कामान् परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः ।  
आतिष्ठेत मुनिर्मानं स लोके सिद्धिमाप्न्यात् ॥ १४

धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलङ्घतम् ।  
असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुमर्हति ॥ १५

तपसा कर्षितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः ।  
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मानं समास्थितः ॥ १६

अथ लोकमिमं जित्वा लोकं चापि जयेत् परम् ।  
आस्येन तु यथाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ।  
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १७

अष्टकने पूछा—राजन्! मुनि कितने हैं? और मौन कितने प्रकारके हैं! यह बताइये, हम इसे सुनना चाहते हैं ॥ ८ ॥

यथातिने कहा—जनेश्वर! अरण्यमें निवास करते समय जिसके लिये ग्राम पीछे होता है और ग्राममें वास करते समय जिसके लिये अरण्य पीछे होता है, वह मुनि कहलाता है ॥ ९ ॥

अष्टकने पूछा—अरण्यवासीके लिये ग्राम और ग्राममें निवास करनेवालेके लिये अरण्य पीछे कैसे है? ॥ १० ॥

यथातिने कहा—जो मुनि वनमें निवास करता है और गाँवमें प्राप्त होनेवाली वस्तुओंका उपयोग नहीं करता, इस प्रकार वनमें निवास करनेवाले उस (वानप्रस्थ) मुनिके लिये गाँव पीछे समझा जाता है। जो अग्नि और गृहको त्याग चुका है, जिसका गोत्र और चरण (वेदकी शाखा एवं जाति)-से भी सम्बन्ध नहीं रह गया है, जो मौन रहता और उतने ही वस्त्रकी इच्छा रखता है, जितनेसे लँगोटी और ओढ़नेका काम चल जायः इसी प्रकार जितनेसे प्राणोंकी रक्षा हो सके उतना ही भोजन चाहता है, इस नियमसे गाँवमें निवास करनेवाले उस (संन्यासी) मुनिके लिये अरण्य पीछे समझा जाता है। जो मुनि सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर कर्मोंको त्याग चुका है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक सदा मौनमें स्थित है, ऐसा संन्यासी लोकमें परम सिद्धिको प्राप्त होता है। जिसके दाँत शुद्ध और साफ हैं, जिसके नख (और केश) कटे हुए हैं, जो सदा स्नान करता है तथा यम-नियमादिसे अलंकृत (उन्हें धारण किये हुए) है, शीतोष्णको सहनेसे जिसका शरीर श्याम पड़ गया है, जिसके आचरण उत्तम हैं—ऐसा संन्यासी किसके लिये पूजनीय नहीं है। तपस्यासे मांस, हड्डी तथा रक्तके क्षीण हो जानेपर जिसका शरीर कृश और दुर्बल हो गया है तथा जो सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे रहित एवं भलीभाँति मौनावलम्बी हो चुका है, वह इस लोकको जीतकर परलोकपर भी विजय पाता है। जब संन्यासी मुनि गाय-बैलोंकी तरह मुखसे ही आहार ग्रहण करता है, हाथ आदिका भी सहारा नहीं लेता, तब उसके द्वारा ये सब लोक जीत लिये गये समझे जाते हैं और वह मोक्षकी प्राप्तिके लिये समर्थ समझा जाता है ॥ ११—१७ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे यथातिचरिते चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशवर्णन-प्रसङ्गमें यथाति-चरित-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४० ॥

## एकतालीसवाँ अध्याय

अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना

अष्टक उवाच

**कतरस्त्वेतयोः पूर्वं देवानामेति सात्म्यताम्।  
उभयोर्धावतो राजन् सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ १  
ययातिरुवाच**

**अनिकेतगृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः।  
ग्राम एव चर्न् भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः ॥ २  
अप्राप्यं दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्।  
तथेत यदि तत् कृत्वा चरेत् सोग्रं तपस्ततः ॥ ३  
यद् वै नृशंसं तदपथ्यमाहु-  
र्यः सेवते धर्मपनर्थबुद्धिः।**

**असावनीशः स तथैव राजं-  
स्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम् ॥ ४**

अष्टक उवाच

**केनाद्य त्वं तु प्रहितोऽसि राजन्  
युवा स्वर्गी दर्शनीयः सुवर्चाः।  
कुत आगतः कतमस्यां दिशि त्व-  
मुताहोस्वित् पार्थिवं स्थानमस्ति ॥ ५  
ययातिरुवाच**

**इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः  
प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद् विप्रहीणः।  
उक्त्वाहं वः प्रपतिष्ठाम्यनन्तरं  
त्वरन्त्वमी ब्रह्मणो लोकपा ये ॥ ६  
सतां सकाशे तु वृतः प्रपात-  
स्ते सङ्ग्रहता गुणवन्तस्तु सर्वे।  
शक्राच्य लब्धो हि वरो मयैष  
पतिष्ठता भूमितलं नरेन्द्र ॥ ७  
अष्टक उवाच**

**पृच्छामि त्वां प्रपतन्तं प्रपातं  
यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र।  
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः  
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ८**

अष्टकने पूछा—राजन्! सूर्य और चन्द्रमाकी तरह अपने-अपने लक्ष्यकी ओर दौड़ते हुए वानप्रस्थ और संन्यासी—इन दोनोंमेंसे पहले कौन-सा देवताओंके आत्मभाव (ब्रह्म)-को प्राप्त होता है? ॥ १ ॥

ययाति बोले—कामवृत्तिवाले गृहस्थोंके बीच ग्राममें ही वास करते हुए भी जो जितेन्द्रिय और गृहरहित संन्यासी है, वही उन दोनों प्रकारके मुनियोंमें पहले ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो वानप्रस्थ दुर्लभ दीर्घायुको पाकर भी विषयोंके प्राप्त होनेपर उनसे विकृत हो उन्हींमें विचरने लगता है, उसे यदि विषयोपभोगके अनन्तर पश्चात्ताप होता है तो उसे मोक्षके लिये पुनः तपका अनुष्ठान करना चाहिये। राजन्! जो पापबुद्धिवाला मनुष्य अधर्मका आचरण करता है, उसका वह आचरण नृशंस (पापमय) और असत्य कहा गया है (एवं उस अजितेन्द्रियका धन भी वैसा ही पापमय और असत्य है); परंतु वानप्रस्थ मुनिका जो धर्मपालन है, वही सरलता है, वही समाधि है और वही श्रेष्ठ आचरण है ॥ २—४ ॥

अष्टकने पूछा—राजन्! आपको यहाँ किसने भेजा है? आप अवस्थामें तरुण, फूलोंकी मालासे सुशोभित, दर्शनीय तथा उत्तम तेजसे उद्घासित जान पड़ते हैं। आप कहाँसे आये हैं? अथवा क्या आपके लिये इस पृथ्वीपर ही किसी दिशामें कोई उत्तम वासस्थान है? ॥ ५ ॥

ययातिने कहा—मैं अपने पुण्यका क्षय होनेसे भौमनरकमें प्रवेश करनेके लिये आकाशसे गिर रहा हूँ। ये जो ब्रह्माजीके लोकपाल हैं, वे मुझे गिरनेके लिये जल्दी मचा रहे हैं। अतः (अब) आपलोगोंसे पूछकर—विदा लेकर इस पृथ्वीपर गिरूँगा। नरेन्द्र! मैं जब इस पृथ्वीतलपर गिरनेवाला था, उस समय मैंने इन्द्रसे यह वर माँगा था कि मैं साधु पुरुषोंके समीप गिरूँ। वह वर मुझे मिला, जिसके कारण आप सब सद्गुणी संतोंका सङ्ग प्राप्त हुआ ॥ ६-७ ॥

अष्टक बोले—महाराज! मेरा विश्वास है कि आप पारलौकिक धर्मके ज्ञाता हैं। मैं नीचे गिरनेवाले आपसे एक बात पूछता हूँ—‘क्या अन्तरिक्ष या स्वर्गलोकमें मुझे प्राप्त होनेवाले कोई पुण्यलोक भी हैं?’ ॥ ८ ॥

यथातिरुचाच

यावत् पृथिव्यां विहितं गवाश्वं  
सहारण्यैः पशुभिः पश्क्षिभिश्च।  
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै  
तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह॥ ९

अष्टक उचाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत्त प्रपातं  
ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति।  
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-  
स्तानाक्रम क्षिप्रममित्रहासि॥ १०

यथातिरुचाच

नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च  
प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य।  
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्य-  
स्तथा ददे पूर्वमहं नरेन्द्र॥ ११

नाब्राह्मणः कृपणे जातु जीवेद्  
याच्चापि स्याद् ब्राह्मणी वीरपत्री।

सोऽहं यदेवाकृतपूर्वं चरेयं  
विधित्समानः किमु तत्र साधुः॥ १२

प्रतर्दन उचाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप  
प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः।  
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-  
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥ १३

यथातिरुचाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र  
अप्येकैकं सप्त सप्तान्यहानि।  
मधुच्युतो घृतवन्तो विशोका-  
स्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति॥ १४

प्रतर्दन उचाच

तांस्ते ददामि पतमानस्य राजन्  
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।  
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-  
स्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः॥ १५

यथातिरुचाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं हि कामये  
योगक्षेमं पार्थिवात् पार्थिवः सन्।  
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वां-  
श्वेरेन्द्रशंसं हि न जातु राजा॥ १६

यथातिने कहा—नरेन्द्रसिंह! इस पृथ्वीपर जंगली पशुओं और पक्षियोंके साथ जितने गाय, घोड़े आदि पशु रहते हैं, स्वर्गमें तुम्हरे लिये उतने ही लोक विद्यमान हैं। तुम इसे निश्चय जानो॥ ९॥

अष्टक बोले—राजेन्द्र! स्वर्गमें मेरे लिये जो लोक विद्यमान हैं, उन्हें मैं आपको देता हूँ, परंतु आपका पतन न हो। अन्तरिक्ष या द्युलोकमें मेरे लिये जो स्थान हैं, उनमें आप शीघ्र ही चले जायें; क्योंकि आप शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं॥ १०॥

यथातिने कहा—नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही प्रतिग्रह लेता है, मेरे-जैसा क्षत्रिय कदापि नहीं। नरेन्द्र! जैसे दान करना चाहिये, उस विधिसे मैंने पहले भी सदा उत्तम ब्राह्मणोंको बहुत दान दिये हैं। जो ब्राह्मण नहीं है, उसे दीन याचक बनकर कभी जीवन नहीं बिताना चाहिये। याचना तो विद्यासे दिग्विजय करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणकी पती है अर्थात् ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ही याचना करनेका अधिकार है। मुझे सत्कर्म करनेकी इच्छा है, अतः ऐसा कोई अकार्य कैसे कर सकता हूँ, जो पहले कभी न किया हो॥ ११-१२॥

प्रतर्दन बोले—वाञ्छनीय रूपवाले श्रेष्ठ पुरुष! मैं प्रतर्दन हूँ और आपसे पूछता हूँ, यदि अन्तरिक्ष अथवा स्वर्गमें मेरे भी लोक हों तो बताइये। मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ॥ १३॥

यथातिने कहा—नरेन्द्र! तुम्हरे तो बहुत लोक हैं, यदि एक-एक लोकमें सात-सात दिन रहा जाय तो भी उनका अन्त नहीं है। वे सब-के-सब अमृतके झरने बहते हैं एवं घृत (तेज)-से युक्त हैं। उनमें शोकका सर्वथा अभाव है। वे सभी लोक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ १४॥

प्रतर्दन बोले—महाराज! वे सभी लोक मैं आपको देता हूँ, आप नीचे न गिरें। जो मेरे लोक हैं, वे सब आपके हो जायें। वे अन्तरिक्षमें हों या स्वर्गमें, आप शीघ्र मोहरहित होकर उनमें चले जाइये॥ १५॥

यथातिने कहा—राजन्! मैं स्वयं एक तेजस्वी राजा होकर दूसरेसे पुण्य तथा योग-क्षेमकी इच्छा नहीं करता। विद्वान् राजा दैववश भारी आपत्तिमें पड़ जानेपर भी कोई पापमय कार्य न करे।

धर्म्य मार्ग चिन्तयानो यशस्यं  
कुर्यान्नपो धर्मवेक्षमाणः ।  
न मद्विधो धर्मबुद्धिर्हि राजा  
ह्येवं कुर्यात् कृपणं मां यथात्थ ॥ १७  
कुर्यामपूर्वं न कृतं यदन्यै-  
र्विधित्समानः किमु तत्र साधुः ।  
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं  
नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम् ॥ १८

धर्मपर दृष्टि रखनेवाले राजाको उचित है कि वह प्रयत्नपूर्वक धर्म और यशके मार्गपर ही चले। जिसकी बुद्धि धर्ममें लगी हो, उस मेरे-जैसे मनुष्यको जान-बूझकर ऐसा दीनतापूर्ण कार्य नहीं करना चाहिये जिसके लिये तुम मुझसे कह रहे हो। जो शुभ कर्म करनेकी इच्छा रखता है वह ऐसा काम नहीं कर सकता, जिसे अन्य राजाओंने नहीं किया हो। (तदनन्तर) इस प्रकारकी बातें कहनेवाले राजा ययातिसे नृपत्रेष्ठ वसुमान् बोले ॥ १६—१८ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

## बयालीसवाँ अध्याय

राजा ययातिका वसुमान् और शिबिके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा  
अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना

वसुमानुवाच  
पृच्छाम्यहं वसुमानौषदश्चि-  
र्यद्यस्ति लोको दिवि महां नरेन्द्र ।  
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन्  
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १  
ययातिरुवाच  
यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च  
यत्तेजसा तपते भानुमांश्च ।  
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै  
ते त्वां भवन्तं प्रतिपालयन्ति ॥ २  
वसुमानुवाच  
तांस्ते ददामि पत मा प्रपातं  
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।  
क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन् ।  
प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक् प्रदुष्टः ॥ ३  
ययातिरुवाच  
न मिथ्याहं विक्रियं वै स्मरामि  
मया कृतं शिशुभावेऽपि राजन् ।  
कुर्या न चैवाकृतपूर्वमन्यै-  
र्विधित्समानो वसुमन् न साधु ॥ ४

वसुमानने कहा—नरेन्द्र! मैं उषदश्वका पुत्र हूँ और आपसे पूछ रहा हूँ। यदि स्वर्ग या अन्तरिक्षमें मेरे लिये भी कोई विष्यात लोक हों तो बताइये। महात्मन्! मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ १ ॥

ययातिने कहा—राजन्! पृथ्वी, आकाश और दिशाओंके जितने प्रदेशको सूर्यदेव अपनी किरणोंसे तपाते और प्रकाशित करते हैं, उतने लोक तुम्हारे लिये स्वर्गमें स्थित हैं। वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

वसुमान् बोले—राजन्! वे सभी लोक मैं आपके लिये देता हूँ वे सब आपके हो जायँ। धीमन्! यदि आपको प्रतिग्रह लेनेमें दोष दिखायी देता हो तो एक मुट्ठा तिनका मुझे मूल्यके रूपमें देकर मेरे इन सभी लोकोंको आप खरीद लें ॥ ३ ॥

ययातिने कहा—राजन्! मैंने बचपनमें भी कभी इस प्रकार झूठ-मूठकी खरीद-बिक्री की हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है। जिसे पूर्ववर्ती अन्य महापुरुषोंने नहीं किया, वह कार्य मैं भी नहीं कर सकता हूँ; क्योंकि मैं सत्कर्म करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

वसुमानुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन्  
मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।  
नाहं तान् वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र  
सर्वे लोकास्तावका वै भवन्तु॥५

शिविरुवाच

पृच्छामि त्वां शिविरौशीनरोऽहं  
ममापि लोका यदि सन्ति तात।  
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः  
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥६

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन्  
परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र।  
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै  
विद्युद्गूपाः स्वनवन्तो महान्तः॥७

शिविरुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन्  
मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।  
न चाहं तान् प्रतिपद्येह दत्त्वा  
यत्र त्वं तात गन्तासि लोके॥८

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभाव-  
स्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।  
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते  
तस्माच्छ्वेन नाभिनन्दामि वाचम्॥९

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राज्ञल्लोकान् नः प्रतिनन्दसि।  
सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान् गन्तारो नरकं वयम्॥१०

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद् वदध्यं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः।  
अहं तु नाभिगृहणामि यत् कृतं न मया पुरा॥११

अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं  
न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह।

अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं  
तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम्॥१२

वसुमान् बोले—राजन्! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरे द्वारा स्वतः अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। नरेन्द्र! निश्चय जानिये कि मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा। वे सब आपके ही अधिकारमें रहें॥५॥

शिविने कहा—तात! मैं उशीनरका पुत्र शिवि आपसे पूछता हूँ। यदि अन्तरिक्ष या स्वर्गमें मेरे भी पुण्यलोक हों तो बताइये; क्योंकि मैं आपको उक्त धर्मका ज्ञाता मानता हूँ॥६॥

ययाति बोले—नरेन्द्र! जो-जो साधु पुरुष तुमसे कुछ माँगनेके लिये आये, उनका तुमने वाणीसे कौन कहे, मनसे भी अपमान नहीं किया। इस कारण स्वर्गमें तुम्हारे लिये अनन्त लोक विद्यमान हैं जो विद्युत्के समान तेजोमय, भाँति-भाँतिके सुमधुर शब्दोंसे युक्त तथा महान् हैं॥७॥

शिविने कहा—महाराज! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरे द्वारा स्वयं अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। तात! उन सबको देकर निश्चय ही मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा जिन लोकोंमें आप जा रहे होंगे॥८॥

ययाति बोले—नरदेव शिवि! जिस प्रकार तुम इन्द्रके समान प्रभावशाली हो उसी प्रकार तुम्हारे वे लोक भी अनन्त हैं, तथापि दूसरेके दिये हुए लोकमें मैं विहार नहीं कर सकता; इसीलिये तुम्हारे दिये हुएका अभिनन्दन नहीं करता॥९॥

अष्टकने कहा—राजन्! यदि आप हममेंसे एक-एकके दिये हुए लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्यलोक आपकी सेवामें समर्पित करके नरक (भूलोक)-में जानेको तैयार हैं॥१०॥

ययाति बोले—मैं जिसके योग्य हूँ, उसीके लिये यत्र करो; क्योंकि साधु पुरुष सत्यका ही अभिनन्दन करते हैं। मैंने पूर्वकालमें जो कर्म नहीं किया, उसे अब भी स्वीकार नहीं कर सकता। नरेन्द्रसिंह! मुझ निर्लोभके प्रति तुमलोगोंने जो कुछ कहा है उसका फल वैसे ही निराशापूर्ण नहीं होगा, अपितु इतने बड़े दानके लिये जो उपयुक्त होगा, वह अनन्त फल तुम लोगोंको अवश्य प्राप्त होगा॥११-१२॥

अष्टक उवाच

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः।  
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव॥ १३  
ययातिरुवाच

भवतां मम चैवैते रथा भान्ति हिरण्मयाः।  
आरुहृतेषु गन्तव्यं भवद्विश्व मया सह॥ १४  
अष्टक उवाच

आतिष्ठस्व रथं राजन् विक्रमस्व विहायसा।  
वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति॥ १५  
ययातिरुवाच

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गो जितो यतः।  
एष वो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्बगः॥ १६  
शौनक उवाच

तेऽभिरुहा रथं सर्वे प्रयाता नृपते नृपाः।  
आक्रमन्तो दिवं भान्ति धर्मेणावृत्य रोदसी॥ १७

अष्टक उवाच

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽभिगन्ता  
सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा।  
कस्मादेवं शिविरौशीनरोऽय-  
मेकोऽत्ययात् सर्ववेगेन वाहान्॥ १८  
ययातिरुवाच

अददाद् देवयानाय यावद् वित्तमनिन्दितः।  
उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छेष्ठो हि वः शिविः॥ १९  
दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा  
हीः श्रीस्तितिक्षा समताऽनृशंस्यम्।  
राजन्त्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि  
शिवौ स्थितान्यप्रतिमेषु बुद्ध्या।  
एवं वृत्तं हीनिषेवी विभर्ति  
तस्माच्छिविरभिगन्ता रथेन॥ २०  
शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छ-  
न्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम्।  
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं  
कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः।  
कृतं त्वया यद्विन तस्य कर्ता  
लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा॥ २१

अष्टकने पूछा—आकाशमें ये किसके पाँच सुवर्णमय रथ दिखायी देते हैं, जो आकाशमण्डलमें बड़ी ऊँचाईपर स्थित हैं और अग्नि-शिखाकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं?॥ १३॥

ययाति बोले—ये जो स्वर्णमय रथ चमक रहे हैं, सभी मेरे तथा तुमलोगोंके लिये आये हैं। इन्हींपर आरुह होकर तुमलोग मेरे साथ इन्द्र-लोकको चलोगे॥ १४॥

अष्टक बोले—राजन्! आप रथमें बैठिये और आकाशमें ऊपरकी ओर बढ़िये। जब समय होगा तब हम भी आपका अनुसरण करेंगे॥ १५॥

ययाति बोले—हम सब लोगोंने साथ-साथ स्वर्गपर विजय पायी है, इसलिये इस समय सबको वहाँ चलना चाहिये। देवलोकका यह रजोहीन सत्त्विक मार्ग हमें स्पष्ट दिखायी दे रहा है॥ १६॥

शौनकजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे सभी नृपत्रेष्ठ उन दिव्य रथोंपर आरुह हो धर्मके बलसे स्वर्गमें पहुँचनेके लिये चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाशमें उनकी प्रभा व्यास हो रही थी॥ १७॥

अष्टक बोले—राजन्! महात्मा इन्द्र मेरे बड़े मित्र हैं, अतः मैं तो समझता था कि अकेला मैं ही सबसे पहले उनके पास पहुँचूँगा; परंतु ये उशीनर-पुत्र शिवि अकेले सम्पूर्ण वेगसे हम सबके वाहनोंको लाँधकर आगे बढ़ गये हैं, ऐसा कैसे हुआ?॥ १८॥

ययातिने कहा—राजन्! उशीनरके पुत्र शिविने ब्रह्मलोकके मार्गकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया था, इसलिये ये तुमलोगोंमें श्रेष्ठ हैं। नरेश्वर! दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ही, श्री, क्षमा, समता और दयालुता—ये सभी अनुपम गुण राजा शिविमें विद्यमान हैं तथा बुद्धिमें भी उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है। राजा शिवि ऐसे सदाचारसम्पन्न और लज्जाशील हैं। (इनमें अभिमानकी मात्रा छू भी नहीं गयी है।) इसीलिये शिवि रथारुह हो हम सबसे आगे बढ़ गये हैं॥ १९-२०॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर अष्टकने कौतूहलवश इन्द्रतुल्य अपने नाना राजा ययातिसे पुनः प्रश्न किया—‘महाराज! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। आप उसे सच-सच बताइये। आप कहाँसे आये हैं, कौन हैं और किसके पुत्र हैं? आपने जो कुछ किया है, उसे करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण इस संसारमें नहीं है’॥ २१॥

ययातिरुचाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः  
पूरोः पिता सार्वभौमस्त्वहासम्।  
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि  
मातामहो भवतां सुप्रकाशः ॥ २२  
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय  
ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः।  
मेध्यानश्वान् नैकशस्तान् सुरूपां-  
स्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २३  
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः  
पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम्।  
गोभिः सुवर्णेश्व धनैश्व मुख्यै-  
रश्वाः सनागाः शतशस्त्वबुदानि ॥ २४  
सत्येन मे द्यौश्व वसुंधरा च  
तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु ।  
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं  
सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥ २५  
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं  
प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च।  
सर्वे देवा मुनयश्व लोकाः  
सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥ २६  
यो नः स्वर्गाजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत्।  
अनसूयुर्दिजाऽत्येभ्यः स भोजेन्नः सलोकताम् ॥ २७  
शौनक उचाच  
एवं राजन् स महात्मा ययातिः  
स्वदौहित्रैस्तारितो मित्रवर्यैः।  
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा  
स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥ २८  
एवं सर्वं विस्तरतो यथाव-  
दाख्यातं ते चरितं नाहुषस्य।  
वंशो यस्य प्रथितः पौरवेयो  
यस्मिञ्ञातस्त्वं मनुजेन्द्रकल्पः ॥ २९

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥  
इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन-विषयक बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

ययातिने कहा—मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता राजा ययाति हूँ। मैं इस लोकमें चक्रवर्ती नरेश था। तुम सब लोग मेरे अपने हो, अतः तुमसे गुप्त बात भी खोलकर बतलाये देता हूँ। मैं तुमलोगोंका नाना हूँ। (यद्यपि पहले भी यह बात बता चुका हूँ, तथापि पुनः स्पष्ट कर देता हूँ।) मैंने इस सारी पृथ्वीको जीत लिया था और पुनः इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान भी कर दिया था। मनुष्य जब एक सौ सुन्दर पवित्र अश्वोंका दान करते हैं तब वे पुण्यात्मा देवता होते हैं। मैंने सब तरहके अन्न, गौ, सुवर्ण तथा उत्तम धनसे परिपूर्ण यह प्रशस्त पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी एवं सौ अर्बुद (दस अरब) हाथियोंसहित घोड़ोंका दान भी किया था। सत्यसे ही पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं। इसी प्रकार सत्यसे ही मनुष्य-लोकमें अग्नि प्रज्वलित होती है। मैंने कभी व्यर्थ बात मुँहसे नहीं निकाली है; क्योंकि साधु पुरुष सदा सत्यका ही आदर करते हैं। अष्टक! मैं तुमसे, प्रतर्दनसे, वसुमानसे और शिविसे भी यहाँ जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य ही है। मेरे मनका यह विश्वास है कि समस्त लोक, मुनि और देवता सत्यसे ही पूजनीय होते हैं। जो मनुष्य हृदयमें ईर्ष्या न रखकर स्वर्गपर अधिकार करनेवाले हम सब लोगोंके इस वृत्तान्तको यथार्थरूपसे श्रेष्ठ द्विजोंके सामने सुनायेगा, वह हमारे ही समान पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेगा ॥ २२—२७ ॥

शौनकजी कहते हैं—राजन्! राजा ययाति बड़े महात्मा थे और उनके कर्म अत्यन्त उदार थे। उनके श्रेष्ठ मित्ररूपी दौहित्रोंने उनका उद्धार किया और वे सत्कर्मोद्वारा सम्पूर्ण भूमण्डलको व्याप्त करके पृथ्वीको छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुमसे नहुष-पुत्र राजा ययातिका सारा चरित्र यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया। यही वंश आगे चलकर पूर्ववंशके नामसे विख्यात हुआ, जिसमें तुम मनुष्योंमें इन्द्रके समान उत्पन्न हुए हो ॥ ४८-४९ ॥

## तैंतालीसवाँ अध्याय

ययाति-वंश-वर्णन, यदुवंशका वृत्तान्त तथा कार्तवीर्य अर्जुनकी कथा

सूत उवाच

इत्येतच्छौनकाद् राजा शतानीको निशम्य तु ।  
 विस्मितः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥ १  
 पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम् ।  
 रत्नैर्गोभिः सुवर्णेश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ॥ २  
 प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद् राजा प्रहितं धनम् ।  
 दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ॥ ३

ऋष्य ऊचुः

ययातेर्वशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद ।  
 यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितम् ॥ ४

सूत उवाच

यदोर्वशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥ ५  
 यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः ।  
 महारथा महेष्वासा नामतस्तान् निबोधत ॥ ६  
 सहस्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः ।  
 सहस्रजेस्तु दायादः शतजिर्नाम पार्थिवः ॥ ७  
 शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।  
 हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥ ८  
 हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः ।  
 धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥ ९  
 संहतस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः ।  
 आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेष्यः प्रतापवान् ॥ १०  
 वाराणस्यामभूद् राजा कथितं पूर्वमेव तु ।  
 रुद्रश्रेष्यस्य पुत्रोऽभूद् दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥ ११  
 दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान् ।  
 कनकस्य तु दायादाश्वत्वारो लोकविश्रुताः ॥ १२  
 कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।  
 कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् ततोऽर्जुनः ॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! राजा शतानीक महर्षि शौनकसे यह सारा वृत्तान्त सुनकर विस्मयाविष्ट हो गये तथा उत्कृष्ट प्रेमके कारण उनका चेहरा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति खिल उठा । तदनन्तर राजाने अनेक प्रकारके रल, गौ, सुवर्ण और वस्त्रोंद्वारा महर्षि शौनककी विधिपूर्वक पूजा की । शौनकजीने राजाद्वारा दिये गये उस सारे धनको ग्रहण करके पुनः उसे ब्राह्मणोंको दान कर दिया और स्वयं वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ १—३ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब हमलोग ययातिके वंशका वर्णन सुनना चाहते हैं । जब उनके यदु आदि पुत्र लोकमें प्रतिष्ठित हुए तब फिर आगे चलकर क्या हुआ ? इसे विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र परम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमसे एवं विस्तारपूर्वक\* वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग मेरे कथनानुसार उसे ध्यानपूर्वक सुनिये । यदुके पाँच पुत्र हुए जो सभी देवपुत्र-सदृश तेजस्वी, महारथी और महान् धनुर्धर थे । उन्हें नामनिर्देशानुसार यों जानिये—उनमें ज्येष्ठका नाम सहस्रजि था, शेष चारोंका नाम क्रमशः क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु था । सहस्रजिका पुत्र राजा शतजि हुआ । शतजिके हैह्य, हय और वेणुहय नामक परम यशस्वी तीन पुत्र हुए । हैह्यका विश्वविख्यात पुत्र धर्मनेत्र हुआ । धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र संहत हुआ । संहतका पुत्र राजा महिष्मान् हुआ । महिष्मान्का पुत्र प्रतापी रुद्रश्रेष्य था, जो वाराणसी नगरीका राजा हुआ । इसका वृत्तान्त पहले ही कहा जा चुका है । रुद्रश्रेष्यका पुत्र दुर्दम नामका राजा हुआ । दुर्दमका पुत्र परम बुद्धिमान् एवं पराक्रमी कनक था । कनकके चार विश्वविख्यात पुत्र हुए जिनके नाम हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा । इनमें कृतवीर्यसे अर्जुनका जन्म हुआ,

\* यह वर्णन भागवत १। २३। १९ से २४। ६७ तक तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी मिलता है।

जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः।  
वर्षायुतं तपस्तेषे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥ १४

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्।  
तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ १५

पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वक्त्रे राजसत्तमः।  
अधर्मं चरमाणस्य सद्दिश्शापि निवारणम् ॥ १६

युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्।  
संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद् भवेत् ॥ १७

तेनेयं पृथिवीं सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।  
सप्तोदधिपरिक्षिपा क्षात्रेण विधिना जिता ॥ १८

जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः।  
रथो ध्वजश्च सञ्ज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥ १९

दशयज्ञसहस्राणि राजा द्वीपेषु वै तदा।  
निर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥ २०

सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः।  
सर्वे काञ्छनयूपास्ते सर्वाः काञ्छनवेदिकाः ॥ २१

सर्वे देवैः समं प्रासैर्विमानस्थैरलङ्घताः।  
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः ॥ २२

तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वों नारदस्तथा।  
कार्तवीर्यस्य राजर्णमहिमानं निरीक्ष्य सः ॥ २३

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवः।  
यज्ञदैर्नैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ॥ २४

स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्री शरासनी।  
रथी द्वीपान्यनुचरन् योगी पश्यति तस्करान् ॥ २५

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः।  
स सर्वरलसम्पूर्णश्चक्रवर्तीं बभूव ह ॥ २६

स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि।  
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत् ॥ २७

योऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याधातकठिनत्वचा।  
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैव भास्करः ॥ २८

जो सहस्र भुजाधारी (होनेके कारण सहस्रार्जुन नामसे प्रसिद्ध था) तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर था। पुरुषश्रेष्ठ कृतवीर्यनन्दन राजा सहस्रार्जुनने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते हुए महर्षि अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयकी आराधना की। उससे प्रसन्न होकर दत्तात्रेयने उसे चार वर प्रदान किये। उनमें प्रथम वरके रूपमें राजश्रेष्ठ अर्जुनने अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगी। दूसरे वरसे सत्पुरुषोंके साथ अधर्म करनेवालोंके निवारणका अधिकार माँगा। तीसरे वरसे युद्धद्वारा सारी पृथिवीको जीतकर धर्मानुसार उसका पालन करना था और चौथा वर यह माँगा कि रणभूमिमें युद्ध करते समय मुझसे अधिक बलवान्के हाथों मेरा वध हो ॥ ५—१७ ॥

उस वरदानके प्रभावसे कार्तवीर्य अर्जुनने क्षात्रधर्मानुसार सातों समुद्रोंसे परिवेष्टित पर्वतोंसहित सातों द्वीपोंकी समग्र पृथिवीको जीत लिया; क्योंकि उस बुद्धिमान् अर्जुनके इच्छा करते ही एक हजार भुजाएँ निकल आयीं तथा उसी प्रकार रथ और ध्वज भी प्रकट हो गये—ऐसा हमलोगोंके सुननेमें आया है। साथ ही उस बुद्धिमान् अर्जुनके विषयमें यह भी सुना जाता है कि उसने सातों द्वीपोंमें दस सहस्र यज्ञोंका अनुष्ठान निर्विघ्नात्पूर्वक सम्पन्न किया था। उस राजराजेश्वरके सभी यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। उनमें गड़े हुए यूप (यज्ञस्तम्भ) स्वर्णनिर्मित थे। सभी वेदिकाएँ सुवर्णकी बनी हुई थीं। वे सभी यज्ञ अपना-अपना भाग लेनेके लिये आये हुए विमानारूढ़ देवोंद्वारा सुशोभित थे। गन्धर्व और अप्सराएँ भी नित्य आकर उनकी शोभा बढ़ाती थीं। राजर्षि कार्तवीर्यके महत्वको देखकर नारदनामक गन्धर्वने उनके यज्ञमें ऐसी गाथा गायी थी—‘भावी क्षत्रिय नरेश निश्चय ही यज्ञ, दान, तप, पराक्रम और शास्त्रज्ञानके द्वारा कार्तवीर्यकी समकक्षताको नहीं प्राप्त होंगे।’ योगी अर्जुन रथपर आरूढ़ हो हाथमें खड्ग, चक्र और धनुष धारण करके सातों द्वीपोंमें भ्रमण करता हुआ चोरों-डाकुओंपर कड़ी दृष्टि रखता था। राजा अर्जुन पचासी हजार वर्षोंतक भूतलपर शासन करके समस्त रक्तोंसे परिपूर्ण हो चक्रवर्तीं सप्राद् बना रहा। राजा अर्जुन ही अपने योगबलसे पशुओंका पालक था, वही खेतोंका भी रक्षक था और वही समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। प्रत्यञ्चाके आधातसे कठोर हुई त्वचाओंवाली अपनी सहस्रों भुजाओंसे वह उसी प्रकार शोभा पाता था, जिस प्रकार सहस्रों किरणोंसे युक्त शारदीय सूर्य शोभित होते हैं ॥ १८—२८ ॥

एष नांगं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः ।  
 ककोटकसुतं जित्वा पुर्या तत्र न्यवेशयत् ॥ २९  
 एष वेगं समुद्रस्य प्रावृद्धकाले भजेत वै ।  
 क्रीडन्नेव सुखोद्दिनः प्रतिस्त्रोतो महीपतिः ॥ ३०  
 ललनाः क्रीडता तेन प्रतिस्त्रगदाममालिनीः ।  
 ऊर्मिभुकुटिसंत्रासाच्चकिताभ्येति नर्मदा ॥ ३१  
 एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवः ।  
 करोत्युद्वृत्तवेगां तु नर्मदां प्रावृद्धताम् ॥ ३२  
 तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ।  
 भवन्त्यतीव निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥ ३३  
 चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम् ।  
 मारुताविद्धफेनौघमावर्ताक्षिसदुःसहम् ॥ ३४  
 करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम् ।  
 मन्दरक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः ॥ ३५  
 तदा निश्चलमूर्धनो भवन्ति च महोरगाः ।  
 सायाहे कदलीखण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥ ३६  
 एवं बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शैरः ।  
 लङ्घायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ॥ ३७  
 निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्यां बबन्ध च ।  
 ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु हर्जुनः सम्प्रसादयत् ॥ ३८  
 मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेह सान्त्वितम् ।  
 तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः ॥ ३९  
 युगान्ताभ्रसहस्रस्य आस्फोटस्त्वशनेरिव ।  
 अहो बत विधेवीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत् ॥ ४०  
 तद् वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा ।  
 यत्रापवस्तु संकुद्धो हर्जुनं शसवान् प्रभुः ॥ ४१  
 यस्माद् वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय ।  
 तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति ॥ ४२

मनुष्योंमें महान् तेजस्वी अर्जुनने कर्कोटक नागके पुत्रको जीतकर अपनी माहिष्मती पुरीमें बाँध रखा था । भूपाल अर्जुन वर्षा-त्रितुमें प्रवाहके सम्मुख सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए ही समुद्रके वेगको रोक देता था । ललनाओंके साथ जलविहार करते समय उसके गलेसे टूटकर गिरी हुई मालाओंको धारण करनेवाली तथा लहररूपी भ्रुकुटियोंके व्याजसे भयभीत-सी हुई नर्मदा चकित होकर उसके निकट आ जाती थी । वह अकेला ही अपनी सहस्र भुजाओंसे आगाध समुद्रको विलोडित कर देता था एवं वर्षाकालमें वेगसे बहती हुई नर्मदाको और भी उद्धत वेगवाली बना देता था । उसकी हजारों भुजाओंद्वारा विलोडन करनेसे महासागरके क्षुब्ध हो जानेपर पातालनिवासी बड़े-बड़े असुर अत्यन्त निश्चेष्ट हो जाते थे । अपनी सहस्र भुजाओंसे महासागरका विलोडन करते समय वह समुद्रकी उठती हुई विशाल लहरोंके मध्य आयी हुई मछलियों और बड़े-बड़े तिमिङ्गिलोंके चूर्णसे उसे व्यास कर देता था तथा वायुके झक्कोरेसे उठे हुए फेनसमूहसे फेनिल और भँकरोंके चपेटसे दुःसह बना देता था । उस समय पूर्वकालमें मन्दराचलके मन्थनके विक्षेपभसे चकित एवं पुनः अमृतोत्पादनकी आशङ्कासे सशङ्कित-से हुए बड़े-बड़े नागोंके मस्तक इस प्रकार निश्चल हो जाते थे, जैसे सायंकाल वायुके स्थगित हो जानेपर केलेके पत्ते प्रशान्त हो जाते हैं । इसी प्रकार अर्जुनने एक बार लंकामें जाकर अपने पाँच बाणोंद्वारा सेनासहित रावणको मोहित कर दिया और उसे बलपूर्वक जीतकर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चामें बाँध लिया, फिर माहिष्मती पुरीमें लाकर उसे बंदी बना लिया । यह सुनकर महर्षि पुलस्त्यने माहिष्मतीपुरीमें जाकर अर्जुनको अनेकों प्रकारसे समझा-बुझाकर प्रसन्न किया । तब अर्जुनने महर्षि पुलस्त्यद्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उस पुलस्त्य-पौत्र राक्षसराज रावणको बन्धनमुक्त कर दिया । उसकी हजारों भुजाओंद्वारा धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेपर ऐसा भयंकर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन सहस्रों बादलोंकी घटाके मध्य बज्रकी गड़गड़ाहट हो रही हो; परंतु विधिका पराक्रम धन्य है जो भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजीने उसकी हजारों भुजाओंको हेमतालके वनकी भाँति काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया । इसका कारण यह है कि एक बार सामर्थ्यशाली महर्षि आपव\* (वसिष्ठ)-ने क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देते हुए कहा था—‘हैहय ! चौंकि तुमने मेरे लोकप्रसिद्ध वनको जलाकर भस्म कर दिया है, इसलिये तुम्हारे द्वारा किये गये इस दुष्कर कर्मका फल कोई दूसरा

\* आप शब्द वरुणका वाचक है । उनके पुत्र मैत्रावारुणिके होनेसे यहाँ महर्षि वसिष्ठ ही महाभारत, हरिवंश, देवीभागवत तथा उसके व्याख्याताओंके अनुसार ‘आपव’ नामसे निर्दिष्ट हैं ।

छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमं तरसा बली ।  
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः ॥ ४३

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः ।  
वरश्वैवं तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४४  
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।  
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः ॥ ४५  
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च ।  
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशांपते ॥ ४६  
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः ।  
तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥ ४७  
तेषां पञ्च कुलाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् ।  
वीतिहोत्राश्च शार्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा ॥ ४८  
कुण्डकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ।  
वीतिहोत्रसुतश्चापि आनर्तो नाम वीर्यवान् ।  
दुर्जेयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्णनः ॥ ४९  
सद्दावेन महाप्राज्ञः प्रजा धर्मेण पालयन् ।  
कार्तवीर्यर्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ॥ ५०  
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही ।  
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥ ५१  
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः ।  
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ।  
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२

हरण कर लेगा । भृगुकुलमें उत्पत्र एक तपस्वी एवं बलवान् ब्राह्मण पहले तुम्हारी सहस्रों भुजाओंको काटकर फिर तुम्हारा वध कर देगा' ॥ २९—४३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार उस शापके कारण परशुरामजी उसकी मृत्युके कारण तो अवश्य हुए, परंतु पूर्वकालमें उस राजर्षिने स्वयं ही ऐसे वरका वरण किया था । राजन् ! सहस्रार्जुनके पुत्र तो एक सौ हुए, परंतु उनमें पाँच महारथी थे । उनके अतिरिक्त शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्ट, जयध्वज, वैकर्ता और अवन्ति—ये सातों अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूरवीर, धर्मात्मा और महान् पराक्रमशाली थे । जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ । उसके एक सौ पुत्र हुए जो तालजङ्घके नामसे विख्यात हुए । हैहयवंशी इन महात्मा नरेशोंका कुल विभक्त होकर पाँच भागोंमें विख्यात हुआ । उनके नाम हैं—वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, आवन्ति तथा पराक्रमी कुण्डिकेर । ये ही तालजङ्घके भी नामसे प्रसिद्ध थे । वीतिहोत्रका पुत्र प्रतापी आनर्त (गुजरातका शासक) हुआ । उसका पुत्र दुर्जेय हुआ जो शत्रुओंका विनाशक था । अमित बुद्धिसम्पन्न एवं सहस्रभुजाधारी कृतवीर्य-नन्दन राजा अर्जुन सद्दावना एवं धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता था । उसने अपने धनुषके बलसे सागरपर्यन्त पृथ्वीपर विजय पायी थी । जो मानव प्रातःकाल उठकर उसका नाम स्मरण करता है उसके धनका नाश नहीं होता और यदि नष्ट हो गया है तो पुनः प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य कार्तवीर्य अर्जुनके जन्म-वृत्तान्तको कहता है उसका आत्मा यथार्थरूपसे पवित्र हो जाता है और वह स्वर्गलोकमें प्रशंसित होता है ॥ ४४—५२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे सहस्रार्जुनचरिते त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें सहस्रार्जुनचरित नामक तैतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४३ ॥

## चौवालीसवाँ अध्याय

कार्तवीर्यका आदित्यके तेजसे सम्पन्न होकर वृक्षोंको जलाना, महर्षि  
आपवद्वारा कार्तवीर्यको शाप और क्रोष्टुके वंशका वर्णन

ऋषय ऊचुः

किमर्थं तद् वनं दग्धमापवस्य महात्मनः ।  
कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥ १  
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम् ।  
स कथं रक्षिता भूत्वा अदहत् तत् तपोवनम् ॥ २

सूत उवाच

आदित्यो द्विजस्तपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः ।  
तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहं नरेश्वर ॥ ३

राजोवाच

भगवन् केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर ।  
कीदृशं भोजनं दद्यि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम् ॥ ४

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर ।  
तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥ ५

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च ।  
निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ६

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्यि अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।  
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजः समन्विताः ॥ ७  
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान् ।  
शुक्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिनराधिप ॥ ८

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत ।  
ततो ददाह सम्प्राप्तान् स्थावरान् सर्वमेव च ॥ ९  
ग्रामांस्तथाऽश्रमांश्चैव घोषणिण नगराणि च ।  
तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ १०  
एवं प्राचीमन्वदहं ततः सर्वा सदक्षिणाम् ।  
निर्वक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा ॥ ११

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कार्तवीर्यने बलपूर्वक महात्मा आपवके उस बनको किस कारण जलाया था? अभी-अभी हम लोगोंने सुना है कि वे राजर्षि कार्तवीर्य प्रजाओंके रक्षक थे तो फिर रक्षक होकर उन्होंने महर्षिके तपोवनको कैसे जला दिया? ॥ १-२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! एक बार सूर्य\* ब्राह्मणका रूप धारण करके कार्तवीर्यके निकट पहुँचे और कहने लगे—‘नरेश्वर! मैं सूर्य हूँ, आप मुझे एक बार तृप्ति प्रदान कीजिये’ ॥ ३ ॥

राजाने पूछा—भगवन्! किस पदार्थसे आपकी तृप्ति होगी? दिवाकर! मैं आपको किस प्रकारका भोजन प्रदान करूँ? आपकी बात सुनकर मैं उसी प्रकारका विधान करूँगा ॥ ४ ॥

सूर्य बोले—दानिशिरोमणे! मुझे समस्त स्थावर अर्थात् वृक्ष आदिको आहाररूपमें प्रदान कीजिये। मैं उसीसे तृप्ति होऊँगा। राजन्! वही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ तृप्ति होगी ॥ ५ ॥

कार्तवीर्यने कहा—तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य! ये समस्त वृक्ष मेरे तेज और बलद्वारा जलाये नहीं जा सकते; अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥

सूर्य बोले—नरेश्वर! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं आपको ऐसे अक्षय एवं सर्वतोमुखी बाण दे रहा हूँ, जो मेरे तेजसे युक्त होनेके कारण चलाये जानेपर स्वयं जल उठेंगे और मेरे तेजसे परिपूर्ण हुए वे सारे वृक्षोंको सुखा देंगे; फिर सूखा जानेपर उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे। उससे मेरी तृप्ति हो जायगी ॥ ७-८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर सूर्यने कार्तवीर्य अर्जुनको अपने बाण प्रदान कर दिये। तब अर्जुनने सम्मुख आये हुए समस्त वृक्षों, ग्रामों, आश्रमों, घोषों, नगरों, तपोवनों तथा रमणीय वनों एवं उपवनोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया। इस प्रकार पूर्व दिशाको जलाकर फिर समूची दक्षिण दिशाको भी भस्म कर दिया। उस भयंकर तेजसे पृथ्वी वृक्षों एवं तृणोंसे रहित होकर नष्ट-

\* यहाँ आदित्य सूर्य हैं, पर हरिवंशपु० १। ३३ आदिके अनुसार अग्निदेव ही ब्राह्मणवेषमें आये थे।

एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः।  
दशवर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महान् ऋषिः ॥ १२

पूर्णे ब्रते महातेजा उदतिष्ठुंस्तपोधनः।  
सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥ १३

क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तिं वो यथा मया।  
क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वशमुत्तमपौरुषम् ॥ १४

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुवृष्णिकुलोद्ध्रुः।  
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः ॥ १५

वृजिनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहो नाम महाबलः।  
स्वाहपुत्रोऽभवद् राजन् रुषङ्गुर्वदतां वरः ॥ १६

स तु प्रसूतिमिच्छन् वै रुषङ्गुः सौम्यमात्मजम्।  
चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ १७

अथ चैत्ररथीर्वारो जज्ञे विपुलदक्षिणः।  
शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥ १८

अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन् पुराभवत्।  
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥ १९

धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्।  
तेषां शतप्रथानानां पृथुसाहा महाबलाः ॥ २०

पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः।  
पृथुकीर्तिः पृथुमना राजानः शशबिन्दवः ॥ २१

शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्वसमुत्तमम्।  
अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ॥ २२

उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षेत् पृथिवीमिमाम्।  
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ॥ २३

तितिक्षुरभवत् पुत्र औशनः शत्रुतापनः।  
मरुत्स्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः ॥ २४

आसीन्मरुत्तनयो वीरः कम्बलबर्हिषः।  
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ॥ २५

निहत्य रुक्मकवचः परान् कवचधारिणः।  
धन्विनो विविधैर्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम् ॥ २६

भ्रष्ट हो गयी। उसी समय महर्षि आपव जो महान् तेजस्वी और तपस्याके धनी थे, दस हजार वर्षोंसे जलके भीतर बैठकर तप कर रहे थे, ब्रत पूर्ण होनेपर बाहर निकले तो उन महामुनिने अर्जुनद्वारा अपने आश्रमको जलाया हुआ देखा। तब उन्होंने कुद्ध होकर राजिष्ठ अर्जुनको उक्त शाप दे दिया, जैसा कि मैंने अभी आप लोगोंको बतलाया है ॥ ९—१३ ॥

ऋषियो! (अब) आपलोग राजर्षि क्रोष्टके उस उत्तम बल-पौरुषसे सम्पन्न वंशका वर्णन सुनिये, जिस वंशमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) अवतीर्ण हुए थे। क्रोष्टके पुत्र महारथी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान्के स्वाह (पद्मपुराणमें स्वाति) नामक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ। राजन्! वक्ताओंमें श्रेष्ठ रुषङ्गु स्वाहके पुत्ररूपमें पैदा हुए। रुषङ्गुने संतानकी इच्छासे सौम्य स्वभाववाले पुत्रकी कामना की। तब उनके सत्कर्मोंसे समन्वित एवं चित्र-विचित्र रथसे युक्त चित्ररथ नामक पुत्र हुआ। चित्ररथके एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जो शशबिन्दु नामसे विख्यात था। वह आगे चलकर चक्रवर्ती सम्प्राद् हुआ। वह यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाला था। पूर्वकालमें इस शशबिन्दुके विषयमें वंशानुक्रमणिकारूप यह श्लोक गाया जाता रहा है कि शशबिन्दुके सौ पुत्र हुए। उनमें भी प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए। वे सभी प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं तेजसे परिपूर्ण, सौन्दर्यशाली एवं बुद्धिमान् थे। उन पुत्रोंके नामके अग्रभागमें ‘पृथु’ शब्दसे संयुक्त छः महाबली पुत्र हुए। उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति और पृथुमना। ये शशबिन्दुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा थे। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग इनमें सबसे ज्येष्ठ पृथुश्रवाकी विशेष प्रशंसा करते हैं। उत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले पृथुश्रवाका पुत्र सुयज्ञ हुआ। सुयज्ञका पुत्र उशना हुआ, जो सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा था। उसने इस पृथिवीकी रक्षा करते हुए सौ अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उशनाका पुत्र तितिक्षु हुआ जो शत्रुओंको संतास कर देनेवाला था। राजर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ मरुत्त तितिक्षुके पुत्र हुए। मरुत्तका पुत्र वीरवर कम्बलबर्हिष था। कम्बलबर्हिषका पुत्र विद्वान् रुक्मकवच हुआ। रुक्मकवचने अपने अनेकों प्रकारके बाणोंके प्रहारसे धनुर्धारी एवं कवचसे सुसज्जित शत्रुओंको मारकर इस पृथिवीको प्राप्त किया था।

१. भागवत ९। २३। ३१ तथा विष्णुपुराण ४। १२। २ में ‘रुषङ्गु’ एवं पद्म १। १३। ४ में ‘कुशङ्ग’ पाठ है।

२. अन्यत्र शिमेयु, रुचक या शितपु पाठ भी मिलता है।

अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्।  
 यज्ञे तु रुक्मकवचः कदाचित् परवीरहा ॥ २७  
 जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः।  
 रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ॥ २८  
 परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत् पिता।  
 रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ॥ २९  
 तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे।  
 प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः ॥ ३०  
 जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी।  
 नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः ॥ ३१  
 ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्।  
 ज्यामघस्याभवद् भार्या शैव्या परिणता सती ॥ ३२  
 अपुत्रो न्यवसद् राजा भार्यामन्यां न विन्दति।  
 तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः ॥ ३३  
 भार्यामुवाच संत्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते।  
 एकमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च ॥ ३४

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति।  
 तस्मात् सा तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत ॥ ३५  
 पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती।  
 राजपुत्रां च विद्वान् स स्नुषायां क्रथकैशिकौ।  
 लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ३६  
 तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान् रणविशारदान्।  
 लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः ॥ ३७  
 कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।  
 क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ३८  
 कुन्तेर्धष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्।  
 धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ॥ ३९

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राजा रुक्मकवचने एक बार बड़े (भारी) अश्वमेध-यज्ञमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा प्रदान की थी ॥ १४—२७ ॥

इन (राजा रुक्मकवच)-के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरिनामक पाँच पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी एवं श्रेष्ठ धनुर्धर थे । पिता रुक्मकवचने इनमेंसे परिघ और हरि—इन दोनोंको विदेह देशके राज-पदपर नियुक्त कर दिया । रुक्मेषु प्रधान राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित बन गया । उन लोगोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया । वहाँ एकत्र ब्राह्मणद्वारा समझाये—बुझाये जानेपर वह प्रशान्त-चित्त होकर वानप्रस्थीरूपसे आश्रमोंमें स्थिररूपसे रहने लगा । कुछ दिनोंके पश्चात् वह (एक ब्राह्मणकी शिक्षासे) ध्वजायुक्त रथपर सवार हो हाथमें धनुष धारणकर दूसरे देशकी ओर चल पड़ा । वह केवल जीविकोपार्जनकी कामनासे अकेले ही नर्मदातटपर जा पहुँचा । वहाँ दूसरोंद्वारा उपभुक्त ऋक्षवान् गिरि (शतपुरा पर्वत-श्रेणी)—पर जाकर निश्चितरूपसे निवास करने लगा । ज्यामघकी सती-साध्वी पत्नी शैव्या \* प्रौढ़ा हो गयी थी । (उसके गर्भसे) कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ । इस प्रकार यद्यपि राजा ज्यामघ पुत्रहीन अवस्थामें ही जीवन यापन कर रहे थे, तथापि उन्होंने दूसरी पत्नी नहीं स्वीकार की । एक बार किसी युद्धमें राजा ज्यामघकी विजय हुई । वहाँ उन्हें (विवाहार्थ) एक कन्या प्राप्त हुई । (पर) उसे लाकर पत्नीको देते हुए राजाने उससे भयपूर्वक कहा—‘शुचिस्मिते ! यह (मेरी स्त्री नहीं,) तुम्हारी सुषा (पुत्रवधु) है ।’ इस प्रकार कहे जानेपर उसने राजासे पूछा—‘यह किसकी सुषा है ?’ ॥ २८—३४ ॥

तब राजाने कहा—(प्रिये) तुम्हरे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीकी यह पत्नी होगी । (यह आश्वर्य देख-सुनकर वह कन्या तप करने लगी ।) तत्पश्चात् उस कन्याकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप वृद्धा प्रायः बूढ़ी होनेपर भी शैव्याने (गर्भ धारण किया और) विदर्भ नामक एक पुत्रको जन्म दिया । उस विद्वान् विदर्भने स्नुषाभूता उस राजकुमारीके गर्भसे क्रथ, कैशिक तथा तीसरे परम धर्मात्मा लोमपाद नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया । ये सभी पुत्र शूरवीर एवं युद्धकुशल थे । इनमें लोमपादसे मनु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा मनुका पुत्र ज्ञाति हुआ । कैशिकका पुत्र चिदि हुआ, उससे उत्पन्न हुए नरेश चैद्य नामसे प्रख्यात हुए । विदर्भ-पुत्र क्रथके कुन्ति नामक पुत्र पैदा हुआ । कुन्तिसे धृष्ट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो परम प्रतापी एवं रणविशारद था । धृष्टका पुत्र निर्वृति हुआ जो धर्मात्मा एवं शत्रु-

\* प्रायः: अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंमें एवं भागवतादिकी टीकाओंमें ‘ज्यामघ’की पत्नी शैव्या ही कही गयी है । कुछ मत्स्यपुराणकी प्रतियोंमें ‘चैत्रा’ नाम भी आया है, परंतु यह अनुकृतिमें भ्रान्तिका ही परिणाम है ।

तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः।  
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः।  
दाशार्हाच्चैव व्योमात् पुत्रो जीमूत उच्यते ॥ ४०  
जीमूतपुत्रो विमलस्तस्य भीमरथः सुतः।  
सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतो नवरथः किल ॥ ४१  
तस्य चासीद् दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।  
तस्मात् करम्भः कारम्भिर्देवरातो बभूव ह ॥ ४२  
देवक्षत्रोऽभवद् राजा देवरातिर्महायशाः।  
देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः ॥ ४३  
मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवस्तथा।  
आसीद् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ॥ ४४  
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्या भद्रसेन्यां पुरुद्वतः।  
ऐक्षवाकी चाभवद् भार्या जन्तोस्तस्यामजायत ॥ ४५  
सात्त्वतः सत्त्वसंयुक्तः सात्त्वतां कीर्तिवर्धनः।  
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।  
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥ ४६  
सात्त्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौसल्या सुषुवे सुतान्।  
भजिनं भजमानं तु दिव्यं देवावृथं नृपम् ॥ ४७  
अन्थकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।  
तेषां हि सर्गाश्तत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु ॥ ४८  
भजमानस्य सृज्जय्यां वाह्यकायां च वाह्यकाः।  
सृज्जयस्य सुते द्वे तु वाह्यकास्तु तदाभवन् ॥ ४९  
तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान्।  
निमिं च कृमिलं चैव वृष्णिं परपुरंजयम्।  
ते वाह्यकायां सृज्जय्यां भजमानाद् विजिज्ञिरे ॥ ५०

बीरोंका संहारक था। निर्वृतिके एक ही पुत्र था जो विदूरथ नामसे प्रसिद्ध था। विदूरथका पुत्र दशार्ह\* और दशार्हका पुत्र व्योम बतलाया जाता है। दशार्हवंशी व्योमसे पैदा हुए पुत्रको जीमूत नामसे कहा जाता है ॥ ३५—४० ॥  
जीमूतका पुत्र विमल और विमलका पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथका पुत्र नवरथ नामसे प्रसिद्ध था। नवरथका पुत्र दृढरथ और उसका पुत्र शकुनि था। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरात उत्पन्न हुआ। देवरातका पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्रका पुत्र देव-पुत्रकी-सी कान्तिसे युक्त महातेजस्वी मधु नामसे उत्पन्न हुआ। मधुका पुत्र पुरवस् तथा पुरवस्का पुत्र पुरुषश्रेष्ठ पुरुद्वान् था। पुरुद्वानके संयोगसे विदर्भ-राजकुमारी भद्रसेनीके गर्भसे जन्तु नामक पुत्रने जन्म लिया। उस जन्तुकी पत्नी ऐक्षवाकी हुई, उसके गर्भसे उत्कृष्ट बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं सात्त्वतवंशियों (या आप)-की कीर्तिका विस्तारक सात्त्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार महात्मा ज्यामघकी इस संतान-परम्पराको जानकर मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है और अन्तमें बुद्धिमान् राजा सोमका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। राजन्! कौसल्या (सात्त्वतकी पत्नी थी। उसने) सात्त्वतके संयोगसे जिन बल-पराक्रमसम्पन्न पुत्रोंको जन्म दिया, उनके नाम हैं—भजि, भजमान, दिव्य राजा देवावृथ, अन्थक, महाभोज और यदुकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले वृष्णि। इनमें चार वंशका विस्तार हुआ। अब उसका विस्तारपूर्वक वर्णन श्रवण कीजिये। सृज्जयकी दो कन्याएँ सृज्जयी और वाह्यका भजमानकी पत्नियाँ थीं। इनसे वाह्यक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त उन दोनों बहनोंने और भी बहुत-से पुत्रोंको जन्म दिया था। उनके नाम हैं—निमि, कृमिल और शत्रु-नगरीको जीतनेवाला वृष्णि। ये सभी भजमानके संयोगसे सृज्जयी और वाह्यकाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ॥ ४१—५० ॥

\* इन्होंसे श्रीकृष्ण आदि दशार्हवंशीरूपमें प्रसिद्ध हुए हैं।

जज्ञे देवावृथो राजा बन्धुनां मित्रवर्धनः।  
 अपुत्रस्त्वभवद् राजा चचार परमं तपः।  
 पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन्॥५१  
 संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णशाजलमस्पृशत्।  
 तदोपस्पर्शनात् तस्य चकार प्रियमापगा॥५२  
 कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निष्प्रगोत्तमा।  
 चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम्॥५३  
 नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः।  
 जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः॥५४  
 अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः।  
 ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाब्रतः॥५५  
 अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा।  
 पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभूं देवावृथान्नपात्॥५६  
 अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्।  
 गुणान् देवावृथस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः॥५७  
 यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात्।  
 बभूः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृथः समः॥५८  
 षष्ठिशतं च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः।  
 एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बध्रोदेवावृथान्नप्॥५९  
 यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढब्रतः।  
 रूपवान् सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा॥६०  
 अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान्।  
 कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम्॥६१  
 कुकुरस्य सुतो वृष्णिवृष्णोस्तु तनयो धृतिः।  
 कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चात्मजः॥६२  
 तस्यासीत् तनुजः सर्पे विद्वान् पुत्रो नलः किल।  
 ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः॥६३

तत्पश्चात् राजा देवावृथका जन्म हुआ, जो बन्धुओंके साथ सुदृढ़ मैत्रीके प्रवर्धक थे। परंतु राजा (देवावृथ)-को कोई पुत्र न था। उन्होंने 'मुझे सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न पुत्र पैदा हो' ऐसी अभिलाषासे युक्त हो अत्यन्त घोर तप किया। अन्तमें उन्होंने मन्त्रको संयुक्त कर पर्णशां नदीके जलका स्पर्श किया। इस प्रकार स्पर्श करनेके कारण पर्णशा नदी राजाका प्रिय करनेका विचार करने लगी। वह श्रेष्ठ नदी उस राजाके कल्याणकी चिन्तासे व्यकुल हो उठी। अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि मैं ऐसी किसी दूसरी स्त्रीको नहीं देख पा रही हूँ, जिसके गर्भसे इस प्रकारका (राजाकी अभिलाषाके अनुसार) पुत्र पैदा हो सके, इसलिये आज मैं स्वयं ही हजारों प्रकारका रूप धारण करूँगी। तत्पश्चात् पर्णशाने परम सुन्दर शरीर धारण करके कुमारीरूपमें प्रकट होकर राजाको सूचित किया। तब महान् ब्रतशाली राजाने उसे (पत्नीरूपसे) स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णशाने राजा देवावृथके संयोगसे नवे महीनेमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न बभू नामक पुत्रको जन्म दिया। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग वंशानुकीर्तनप्रसङ्गमें महात्मा देवावृथके गुणोंका कीर्तन करते हुए ऐसी गाथा गाते हैं—उद्धार प्रकट करते हैं—'इन (बभू)-के विषयमें हमलोग जैसा (दूरसे) सुन रहे थे, उसी प्रकार (इन्हें) निकट आकर भी देख रहे हैं। बभू तो सभी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृथ (साक्षात्) देवताओंके समान हैं। राजन्! बभू और देवावृथके प्रभावसे इनके छिह्नतर हजार पूर्वज अमरत्वको प्राप्त हो गये। राजा बभू यज्ञानुष्ठानी, दानशील, शूरवीर, ब्राह्मणभक्त, सुदृढ़ब्रती, सौन्दर्यशाली, महान् तेजस्वी तथा विष्वात बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। तदनन्तर (बभूके संयोगसे) कङ्ककी कन्याने कुकुर, भजमान, शशि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको जन्म दिया। कुकुरका पुत्र वृष्णि<sup>२</sup> वृष्णिका पुत्र धृति, उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, उसका पुत्र विद्वान् नल था। नलका पुत्र दरदुन्दुभिरै नामसे कहा जाता था॥५१—६३॥

१. भारतमें पर्णशा नामकी दो नदियाँ हैं। ये दोनों राजस्थानकी पूर्वी सीमापर स्थित हैं और पारियात्र पर्वतसे निकली हैं। (दृष्टव्य मत्स्य० १२। ५० तथा वायुपुराण ३८। १७६)।

२. ऊपर ४८वें श्लोकमें 'वृष्णि'का उल्लेख हो चुका है, अतः अधिकांश अन्य पुराणसम्मत यहाँ 'धृष्णु' पाठ मानना चाहिये, या इन्हें द्वितीय वृष्णि मानना चाहिये।

३. पद्म० १। १३। ४० में चन्दनोदकदुन्दुभि नाम है।

तस्मिन् प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः ।  
 अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥ ६४  
 तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सभामध्यात् समुत्थितः ।  
 अतस्तु विद्वान् कर्मज्ञो यज्ञा दाता पुनर्वसुः ॥ ६५  
 तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल ।  
 आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातं मतिमतां वर ॥ ६६  
 इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान् प्रति तमाहुकम् ।  
 सोपासङ्गानुकर्षणां सध्वजानां वर्सथिनाम् ॥ ६७  
 रथानां मेघधोषाणां सहस्राणि दशैव तु ।  
 नासत्यवादी नातेजा नायज्ञा नासहस्रदः ॥ ६८  
 नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हि यो भोजेष्वभ्यजायत ।  
 आहुकस्य भृतिं प्राप्ता इत्येतद् वै तदुच्यते ॥ ६९  
 आहुकश्चाप्यवन्तीषु स्वसारं चाहुकीं ददौ ।  
 आहुकात् काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौ समसूयत ॥ ७०  
 देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावृभौ ।  
 देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥ ७१  
 देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः ।  
 तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥ ७२  
 देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ।  
 श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी ॥ ७३  
 नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः ।  
 न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूयशः ॥ ७४  
 अजभू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिः ।  
 तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ॥ ७५  
 सुतन्तू राष्ट्रपाली च कङ्का चेति वराङ्गनाः ।  
 उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्धवः ॥ ७६  
 भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः ।  
 राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥ ७७  
 राजाधिदेवस्य सुतो जज्ञाते देवसम्मितौ ।  
 नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥ ७८  
 शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शूरा रणविशारदाः ।  
 शमी च देवशर्मा च निकुन्तः शक्तशत्रुजित् ॥ ७९

नरश्रेष्ठ दरदुन्दुभि पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे । उस विशाल यज्ञमें पुनर्वसु नामक पुत्र प्रादुर्भूत हुआ । पुनर्वसु अतिरात्रके मध्यमें सभाके बीच प्रकट हुआ था, इसलिये वह विद्वान्, शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञाता, यज्ञपरायण और दानी था । बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजन्! पुनर्वसुके आहुक नामका पुत्र और आहुकी नामकी कन्या—ये जुड़वीं संतान पैदा हुईं । इनमें आहुक अजेय और लोकप्रसिद्ध था । उन आहुकके प्रति विद्वान् लोग इन श्लोकोंको गाया करते हैं—‘राजा आहुकके पास दस हजार ऐसे रथ रहते थे, जिनमें सुदृढ़ उपासङ्ग (कूबर) एवं अनुकर्ष (ध्रूरे) लगे रहते थे, जिनपर ध्वजाएँ फहराती रहती थीं, जो कवचसे सुसज्जित रहते थे तथा जिनसे मेघकी घरघराहटके सदृश शब्द निकलते थे । उस भोजवंशमें ऐसा कोई राजा नहीं पैदा हुआ जो असत्यवादी, निस्तेज, यज्ञविमुख, सहस्रोंकी दक्षिणा देनेमें असमर्थ, अपवित्र और मूर्ख हो ।’ राजा आहुकसे भरण-पोषणकी वृत्ति पानेवाले लोग ऐसा कहा करते थे । आहुकने अपनी बहन आहुकीको अवन्ती-नरेशको प्रदान किया था । आहुकके संयोगसे काश्यकी कन्याने देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया । वे दोनों देव-पुत्रोंके सदृश कान्तिमान् थे । देवकके देवताओंके समान कान्तिमान् एवं पराक्रमी चार शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए । उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित । इनके सात बहनें भी थीं, जिन्हें देवकने वसुदेवको समर्पित किया था । उनके नाम हैं—देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सातवीं सुतापी ॥ ६४—७३ ॥

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था । उनके नाम हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु अजभू राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद । उनके कंसा, कंसवती, सतन्तू राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच बहनें भी थीं, जो परम सुन्दरी थीं । अपनी संतानोंसहित उग्रसेन कुकुर-वंशमें उत्पन्न हुए कहे जाते हैं । भजमानका पुत्र महारथी विदूरथ और शूरवीर राजाधिदेव विदूरथका पुत्र हुआ । राजाधिदेवके शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र हुए, जो देवोंके सदृश कान्तिमान् और नियम एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे । शोणाश्वके शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शक्र और शत्रुजित् नामक पाँच शूरवीर एवं युद्धनिपुण पुत्र हुए ।

शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ।  
 प्रतिक्षेत्रः सुतो भोजो हृदीकस्तस्य चात्मजः ॥ ८०  
 हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ।  
 कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः ॥ ८१  
 देवार्हश्वैव नाभश्च धिषणश्च महाबलः ।  
 अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ ॥ ८२  
 देवार्हस्य सुतो विद्वाञ्ज्ञे कम्बलबर्हिषः ।  
 असोमजाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्य चात्मजः ॥ ८३  
 अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः ।  
 सुदंष्टश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः ॥ ८४  
 अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः ।  
 आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानानुते नरः ॥ ८५

शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रका पुत्र प्रतिक्षेत्र, उसका पुत्र भोज और उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीकके दस अनुपम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ और शतधन्वा मङ्गला था। शेषके नाम (इस प्रकार) हैं—देवार्ह, नाभ, धिषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक। देवार्हके कम्बलबर्हिष नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र असोमजा और असोमजाका पुत्र तमोजा हुआ। इसके बाद सुदंष्ट, सुनाभ और कृष्ण नामके तीन राजा और हुए जो परम पराक्रमी और उत्तम कीर्तिवाले थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। ये सभी अन्धकवंशी माने गये हैं। जो मनुष्य अन्धकोंके इस वंशका नित्य कीर्तन करता है वह स्वयं पुत्रवान् होकर अपने वंशकी वृद्धि करता है ॥ ७४—८५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें चौबालीसर्वाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

## पैंतालीसर्वाँ अध्याय

वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तकमणिकी कथा

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः ।  
 गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥ १  
 माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीदुषम् ।  
 अनमित्रं शिबिं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ॥ २  
 अनमित्रसुतो निघो निघस्यापि तु द्वौ सुतौ ।  
 प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ॥ ३  
 स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् ।  
 पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ॥ ४  
 हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः ।  
 गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥ ५  
 कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ।  
 यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (अब आपलोग सात्वतके कनिष्ठ पुत्र वृष्णिका वंश-वर्णन सुनिये।) गान्धारी और माद्री—ये दोनों वृष्णिकी पत्नियाँ हुईं। उनमें गान्धारीने सुमित्र और मित्रनन्दन नामक दो पुत्रोंको तथा माद्रीने युधाजित, तत्पश्चात् देवमीदुष, अनमित्र, शिबि और पाँचवें कृतलक्षण नामक पुत्रोंको जन्म दिया। अनमित्रका पुत्र निघ्र हुआ और निघ्रके महान् पराक्रमी प्रसेन और शक्तिसेन नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रसेनके पास स्यमन्तक नामक सर्वश्रेष्ठ मणिरत्न था। वह मणिरत्न भूतलपर समस्त रत्नोंका राजा था। भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों बार मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करके प्रसेनसे याचना की, परंतु वे उसे प्राप्त न कर सके। साथ ही समर्थ होनेपर भी उन्होंने उसका अपहरण भी नहीं किया। एक बार प्रसेन उस मणिसे विभूषित हो शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ उसने एक बिल (गुफा)-में, जिसका स्वामी जीव उसमें विद्यमान था, होनेवाले कोलाहलको सुना।

ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो हृक्षमैक्षत ।  
 ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित् ॥ ७  
 हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात् ।  
 अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ॥ ८  
 प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः ।  
 गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ॥ ९  
 प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरलेन भूषितः ।  
 तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह ।  
 हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥ १०  
 अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः ।  
 यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत् ॥ ११  
 तं दृष्ट्वा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराद् वली ।  
 शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्दः खड्गपाणिः प्रविश्य सः ।  
 अपश्यज्ञाम्बवन्तं तमृक्षराजं महाबलम् ॥ १२  
 ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा ।  
 जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३  
 तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम् ।  
 ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेण्यमरोचयत् ॥ १४

जाम्बवानुवाच

इच्छे चक्रप्रहारेण त्वत्तोऽहं मरणं प्रभो ।  
 कन्या चेयं मम शुभा भर्तारं त्वामवाप्युतात् ।  
 योऽयं मणिः प्रसेनं तु हत्वा प्रासो मया प्रभो ॥ १५  
 ततः स जाम्बवन्तं तं हत्वा चक्रेण वै प्रभुः ।  
 कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् ॥ १६  
 ददौ सत्राजितायै तं सर्वसात्त्वतसंसदि ।  
 तेन मिथ्यापवादेन संतसोऽयं जनार्दनः ॥ १७  
 ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्लूवन् ।  
 अस्माकं तु मतिर्हासीत् प्रसेनस्तु त्वया हतः ॥ १८

कुतूहलवश प्रसेनने उसमें प्रवेश करके एक रीछको देखा । फिर तो रीछकी दृष्टि प्रसेनपर और प्रसेनकी दृष्टि रीछपर पड़ी । (तत्पश्चात् दोनोंमें युद्ध छिड़ गया ।) रीछने प्रसेनको मारकर वह मणि ले ली ।<sup>१</sup> बिलके भीतर प्रविष्ट हुआ प्रसेन रीछद्वारा मार डाला गया, इसलिये उसे कोई देख न सका । इधर प्रसेनको मारा गया जानकर भगवान् श्रीकृष्णको आशङ्का हो गयी कि लोग स्पष्टरूपसे कहते होंगे कि मणि लेनेके लिये श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है । ऐसी किंवदन्तीके फैलनेपर भगवान् गोविन्दने उत्तर दिया कि ‘उस मणिरत्नको धारण करके प्रसेन बनमें गया था, उसे देखकर (मणिको हथियानेके लिये) किसीके द्वारा (सम्भवतः) वह मार डाला गया है । अतः वृष्णिवंशके शत्रुरूप उस दुराचारीका मैं वध करूँगा ।’ तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् आखेटके लिये निकले हुए भगवान् श्रीकृष्ण इच्छानुसार भ्रमण करते हुए उसी बिल (गुफा)-के निकट जा पहुँचे । उन्हें देखकर महाबली रीछराजने उच्चस्वरसे गर्जना की । उस शब्दको सुनकर भगवान् गोविन्द हाथमें तलवार लिये हुए उस बिलमें घुस गये । वहाँ उन्होंने उन महाबली रीछराज जाम्बवान्को देखा । तब जिनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे, उन हृषीकेश श्रीकृष्णने शीघ्र ही रीछराज जाम्बवान्को वेगपूर्वक अपने वशमें कर लिया । उस समय रीछराजने विष्णुसम्बन्धी स्तोत्रोद्वारा उन प्रभुका स्तवन किया । उससे संतुष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्णने जाम्बवान्को भी वरप्रदानद्वारा प्रसन्न कर दिया ॥ १—१४ ॥

जाम्बवान्ने कहा—प्रभो! मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके चक्र-प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होऊँ । यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पतिरूपमें प्राप्त करे । प्रभो! यह मणि, जिसे मैंने प्रसेनको मारकर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे । तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली एवं महाबाहु श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उन जाम्बवान्का वध करके कृतकृत्य हो कन्यासहित मणिको ग्रहण कर लिया ।<sup>२</sup> घर लौटकर भगवान् जनार्दनने समस्त सात्वतोंकी भरी सभामें वह मणि सत्राजितको समर्पित कर दी; क्योंकि वे उस मिथ्यापवादसे अत्यन्त दुःखी थे । उस समय सभी यदुवंशियोंने वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णसे यों कहा—‘श्रीकृष्ण! हमलोगोंका तो यह दृढ़ निश्चय था कि प्रसेन तुम्हारे ही हाथों मारा गया है ।

१. अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंके अनुसार सिंहने प्रसेनको और जाम्बवान्ने सिंहको मारा है । परिष्कारदृष्ट्या मत्स्यपुराणकी भागवतादिसे पूर्व स्थिति सिद्ध होती है ।

२. यह कथा प्रायः कल्किपुराणसे मिलती है । शेष अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें जाम्बवान् कन्या-दान करनेके बाद भी जीवित ही रहते हैं । कल्किपुराणके अन्तमें जाम्बवान् तथा शशविन्दुकी ऐसी स्थिति हुई है ।

कैकेयस्य सुता भार्या दश सत्राजितः शुभाः ।  
तासूत्पत्नाः सुतास्तस्य शतमेकं तु विश्रुताः ।  
ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ १९  
अथ ब्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात् ।  
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्तः कमललोचनाः ॥ २०  
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढब्रता ।  
तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात् ॥ २१  
अनमित्राच्छिन्निज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात् ।  
सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥ २२  
सत्यवान् युयुधानस्तु शिर्नेर्माप्ना प्रतापवान् ।  
असङ्गो युयुधानस्य द्युमिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २३  
द्युम्नेर्युगंधरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिः ।  
अनमित्रान्वयो होष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः ॥ २४  
अनमित्रस्य संज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः ।  
अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च ॥ २५  
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत ।  
जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः ॥ २६  
सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ।  
अक्रूरः सुषुवे तस्मात् सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७  
रत्ना कन्या च शैव्यस्य अक्रूरस्तामवासवान् ।  
पुत्रानुत्पादयामास त्वेकादश महाबलान् ॥ २८  
उपलभ्यः सदालभ्यो वृक्ळलो वीर्य एव च ।  
सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः ॥ २९  
धर्मभृद् धर्मवर्मणो धृष्टमानस्तथैव च ।  
सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते ॥ ३०  
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ ।  
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ ॥ ३१  
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च ।  
अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ३२  
वृष्णिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च ।  
अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ॥ ३३  
इमां मिथ्याभिशस्ति यो वेद कृष्णादपोहिताम् ।  
न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित् ॥ ३४

केकयराजकी दस सौन्दर्यशालिनी कन्याएँ सत्राजितकी पत्रियाँ थीं। उनके गर्भसे सत्राजितके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो विश्वविख्यात, प्रशंसित एवं महान् पराक्रमी थे। उनमें भंगकार ज्येष्ठ था। उस ज्येष्ठ भंगकारके संयोगसे ब्रतवतीने तीन कमलनयनी सुकुमारी कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यभासा, दृढ़ब्रतपरायणा ब्रतिनी तथा पद्मावती। भंगकारने इन तीनोंको पत्नीरूपमें श्रीकृष्णको प्रदान किया था। कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ। उसका पुत्र सत्यक और सत्यकका पुत्र सात्यकि हुआ। सत्यवान् और प्रतापी युयुधान—ये दोनों शिनिके नाती थे। युयुधानका पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युमित्र हुआ। द्युमित्रिका पुत्र युगंधर हुआ। इस प्रकार यह शिनि-वंशका वर्णन किया गया ॥१५—२३ ॥

अब मैं वृष्णि-वंशमें उत्पन्न अनमित्रके वंशका वर्णन कर रहा हूँ। अनमित्रकी दूसरी पत्नी पृथ्वीके गर्भसे वीरवर युधाजित् पैदा हुए। उनके वृषभ और क्षत्र नामवाले दो अन्य शूरवीर पुत्र थे। वृषभने काशिराजकी जयन्ती नामकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त (ग्रहण) किया। उन्हें उस जयन्तीके गर्भसे जयन्त नामक अत्यन्त सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो सदा यज्ञानुष्ठानमें निरत रहनेवाला, महान् शूरवीर, शास्त्रज्ञ तथा अतिथियोंका प्रेमी था। उससे अक्रूर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वह भी आगे चलकर सदा यज्ञानुष्ठानशील और विपुल दक्षिणा देनेवाला हुआ। शिवि-नरेशकी एक रत्ना नामकी कन्या थी, जिसे अक्रूरने पत्नीरूपमें प्राप्त किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—उपलभ्य, सदालभ्य, वृकल, वीर्य, सविता, सदापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृद्, धर्मवर्मा और धृष्टमान। रत्नाके गर्भसे उत्पन्न हुए ये सभी पुत्र यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले थे। अक्रूरके संयोगसे उग्रसेनाके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे, जो देवताके सदृश शोभाशाली और वंश-विस्तारक थे। उन्हींकी दूसरी पत्नी अश्विनीके गर्भसे पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सुबाहु, सुपाश्वर्क, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्जभूमि, श्रमिष्ठ तथा श्रवण—ये तेरह पुत्र भी पैदा हुए थे। जो मनुष्य श्रीकृष्णके शरीरसे हटाये गये इस मिथ्यापवादको जानता है, वह किसीके भी द्वारा मिथ्याभिशापसे अभिशास नहीं किया जा सकता ॥२४—३४ ॥

इति श्रीमात्ये महापुराणे सोमवंशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें पैतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४५ ॥

## छियालीसवाँ अध्याय

### वृष्णि-वंशका वर्णन

सूत उवाच

ऐक्षाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीद्भुषम्।  
पौरुषाज्ञिरे शूराद् भोजायां पुत्रका दश॥ १

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।  
देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः॥ २

अनाधृष्टिः शिनिश्वैव नन्दश्वैव ससृज्जयः।  
श्यामः शमीकः संयूपः पञ्च चास्य वराङ्गनाः॥ ३

श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः।  
राजाधिदेवी च तथा पञ्चता वीरमातरः॥ ४

कृतस्य तु श्रुतादेवी सुग्रीवं सुषुवे सुतम्।  
कैकेय्यां श्रुतकीर्त्या तु जज्ञे सोऽनुव्रतो नृपः॥ ५

श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत।  
बहुशो धर्मचारी स सम्बभूवारिमर्दनः॥ ६

अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजे सुतां ददौ।  
एवं कुन्ती समाख्याता वसुदेवस्वसा पृथा॥ ७

वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्या ह्यनिन्दिता।  
पाण्डोरथेन सा जज्ञे देवपुत्रान् महारथान्॥ ८

धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जन्मे वृकोदरः।  
इन्द्राद् धनञ्जयश्वैव शक्रतुल्यपराक्रमः॥ ९

माद्रवत्यां तु जनितावश्चिभ्यामिति शुश्रुमः।  
नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! ऐक्षाकी (माद्री)-ने शूर (शूरसेन) नामक एक अद्भुत पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर ईद्धुष (देवमीद्भुष) नामसे विख्यात हुआ। पुरुषार्थी शूरके सम्पर्कसे भोजाके गर्भसे दस पुत्रों और पाँच सुन्दरी कन्याओंकी उत्पत्ति हुई। पुत्रोंमें सर्वप्रथम महाबाहु वसुदेव उत्पन्न हुए, जिनकी आनकदुन्दुभिः नामसे भी प्रसिद्धि हुई। उसके बाद देवभाग-(देवमार्ग)-का जन्म हुआ। तत्पश्चात् पुनः देवश्रवा, अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, सृज्जय, श्याम, शमीक और संयूप पैदा हुए। कन्याओंके नाम हैं—श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतादेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों शूरवीर पुत्रोंकी माताएँ हुईं। कृतकी पत्नी श्रुतदेवीने सुग्रीव नामक पुत्रको जन्म दिया। केकय देशकी राजमहिषी श्रुतकीर्तिके गर्भसे राजा अनुव्रतने जन्म लिया। चेदि-नरेशकी पत्नी श्रुतश्रवाके गर्भसे एक सुनीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेकों प्रकारके धर्मोंका आचरण करनेवाला एवं शत्रुओंका विनाशक था। तत्पश्चात् शूरने अपनी पृथा नामी कन्याको मित्रतावश वृद्ध राजा कुन्तिभोजको पुत्रीरूपमें दे दिया। इसी कारण वसुदेवकी बहन यह पृथा कुन्ती नामसे विख्यात हुई। उसे वसुदेवने पाण्डुको (पत्नीरूपमें) प्रदान किया था। उस अनिन्द्यसुन्दरी पाण्डु-पत्नी कुन्तीने पाण्डुकी वंशवृद्धिके लिये (पतिकी आज्ञासे) महारथी देवपुत्रोंको जन्म दिया था। उनमें धर्मके संयोगसे युधिष्ठिर पैदा हुए, वायुके सम्पर्कसे वृकोदर (भीमसेन)-का जन्म हुआ और इन्द्रके सकाशसे इन्द्रके ही समान पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन)-की उत्पत्ति हुई। साथ ही अश्विनीकुमारोंके संयोगसे माद्रवती (माद्री)-के गर्भसे रूप, शील एवं सदगुणोंसे समन्वित नकुल और सहदेव पैदा हुए—ऐसा हमलोगोंने सुना है॥ १—१०॥

रोहिणी पौरवी चैव पत्न्यावानकदुन्तुभेः।  
 लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम्॥ ११  
 दुर्दमं दमनं सुभूं पिण्डारकमहाहनू।  
 चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा॥ १२  
 देवक्यां जज्ञिरे शौरैः सुषेणः कीर्तिमानपि।  
 उदारो भद्रसेनश्च भद्रवासस्तथैव च।  
 षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानधातयत्॥ १३  
 अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह।  
 लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः॥ १४  
 अनुजा त्वभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी।  
 देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः॥ १५  
 सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्ध्रुः।  
 उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता।  
 एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामध्यधातयत्॥ १६  
 विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम्।  
 एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे॥ १७  
 अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत।  
 वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दनो नाम नामतः॥ १८  
 सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप।  
 गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम्॥ १९  
 श्रद्धादेव्या विहरे तु वने हि विचरन् पुरा।  
 वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम्॥ २०  
 सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ।  
 पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ॥ २१  
 जरा नाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः।  
 सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः॥ २२

आनकदुन्तुभिं (वसुदेव)-के संयोगसे रोहिणी (उनकी चौबीस पत्नियोंमें प्रथम)-ने विश्वविख्यात ज्येष्ठ पुत्र राम-(बलराम)-को, तत्पश्चात् प्रिय पुत्र सारण, दुर्दम, दमन, सुभू, पिण्डारक और महाहनुको प्राप्त किया। (उनकी दूसरी पत्नी पौरवीके भी भद्र, सुभदादि पुत्र हुए।) उसी समय रोहिणीके गर्भसे चित्रा और अक्षी नामवाली (अथवा सुन्दर नेत्रोंवाली) दो कन्याएँ भी पैदा हुईं। वसुदेवजीके सम्पर्कसे देवकीके गर्भसे सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिन्हें कंसने मार डाला। फिर उसी समय (देवकीके गर्भसे) आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णके बाद उनकी छोटी बहन शुभभाषिणी सुभद्रा पैदा हुई। तदनन्तर देवकीके गर्भसे महान् तेजस्वी एवं महायशस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ताम्राके गर्भसे शौरिकुलका उद्वहन करनेवाला सहदेव नामक पुत्र पैदा हुआ। देवरक्षिताने उपासङ्गधर नामक पुत्रको और एक सुन्दरी कन्याको, जिसे कंसने मार डाला, उत्पन्न किया। विजय, रोचमान, वर्धमान और देवल—ये सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न पुत्र उपदेवीके गर्भसे पैदा हुए थे। महात्मा अवगाह वृकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए। इसी वृकदेवीके गर्भसे नन्दन नामक एक और पुत्र पैदा हुआ था॥ ११—१८॥

राजन्! देवकीने अपने सातवें पुत्र मदनको तथा संग्राममें अजेय एवं महान् भाग्यशाली गवेषणको जन्म दिया था। इससे पूर्व श्रद्धादेवीके साथ विहारके अवसरपर वनमें विचरण करते हुए शूरनन्दन वसुदेवने एक वैश्य-कन्याके उदरमें गर्भधान किया, जिससे कौशिक नामक ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीकी (नर्वों) सुतनु और (दसर्वों)\* रथराजी नामकी दो पत्नियाँ और थीं। उनके गर्भसे वसुदेवके पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्र तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न सौभद्र और भव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे। उनमें जो ज्येष्ठ था,

\* यहाँ वसुदेवजीकी दस, पर हरिवंशपु० १, ब्रह्मपु० ४। ३६ आदिमें चौदह पत्नियाँ और उनकी संततियाँ निर्दिष्ट हैं।

देवभागसुतश्चापि नाम्नासावुद्धवः स्मृतः ।  
पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्धवम् ॥ २३  
ऐक्षवाक्यलभतापत्यमनाधृष्टेर्यशस्विनी ।  
निधूतसत्त्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत ॥ २४  
करुषायानपत्याय कृष्णास्तुष्टः सुतं ददौ ।  
सुचन्द्रं तु महाभागं वीर्यवन्तं महाबलम् ॥ २५  
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ ।  
चारुदेष्णश्च साम्बश्च वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥ २६  
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ ।  
शमीकपुत्राश्रत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः ।  
विराजश्च धनुश्चैव श्यामश्च सृज्जयस्तथा ॥ २७  
अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ ।  
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवासवान् ॥ २८  
कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः ।  
शृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २९

वह जरा नामक निषाद हुआ, जो महान् धनुर्धर था। देवभागका पुत्र उद्धव नामसे प्रसिद्ध था। देवश्रवाके प्रथम पुत्रको पण्डित नामसे पुकारा जाता था। यशस्विनी ऐक्षवाकीने अनाधृष्टिके संयोगसे शत्रुसंहारक निधूतसत्त्व नामक पुत्रको प्राप्त किया। निधूतसत्त्वसे श्राद्धकी उत्पत्ति हुई। संतानहीन करूषपर प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसे एक सुचन्द्र नामक पुत्र प्रदान किया था, जो महान् भाग्यशाली, पराक्रमी और महाबली था। जाम्बवतीके चारुदेष्ण और साम्ब—ये दोनों पुत्र उत्तम लक्षणोंसे युक्त, पराक्रमी और महान् बलसम्पन्न थे। नन्दनके तन्तिपाल और तन्तिनामक दो पुत्र हुए। शमीकके चारों पुत्र विराज, धनु, श्याम और सृज्जय अत्यन्त पराक्रमी और महाबली थे। इनमें श्याम तो संतानहीन हो गया और शमीक भोजवंशके आचार-व्यवहारकी निन्दा करता हुआ वनमें चला गया, वहाँ आराधना करके उसने राजर्षिकी पदबी प्राप्त की। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके इस जन्म एवं अभ्युदयका नित्य कीर्तन (पाठ) अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९—२९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे वृष्णिवंशानुकीर्तनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें वृष्णिवंशानुकीर्तन नामक छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४६ ॥

## सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन, दैत्योंका इतिहास तथा देवासुर-संग्रामके प्रसङ्गमें विभिन्न अवान्तर कथाएँ

सूत उवाच

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ।  
विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते ॥ १  
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः ।  
चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलजिश्रया ॥ २  
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणैः ।  
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो ॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला-विहार करनेके लिये मृत्युलोकमें मानव-योनिमें अवतीर्ण हुए। वे वसुदेवजीकी तपस्यासे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनके नेत्र कमल-सदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित था। वसुदेवजीने इन दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीकृष्णको देखकर उनसे कहा—

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद् ब्रवीमि ते ।  
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः ॥ ४

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः ।  
अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥ ५

दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत् ।  
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति ।  
अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति ॥ ६

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी ।  
नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाब्रता ॥ ७

यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत ।  
या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत् ॥ ८

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।  
ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ॥ ९  
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत् ।  
ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः ॥ १०  
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।  
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ११  
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ।  
कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ १२  
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा ।  
सुभामा च तथा शैव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ १३  
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा ।  
सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा ।  
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥ १४  
रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् रणविशारदान् ।  
चारुदेष्णां रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ १५

'प्रभो ! आप इस रूपको समेट लीजिये । देव ! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये आपसे ऐसा कह रहा हूँ; क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी (छः) पुत्रोंको मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे ।' वसुदेवजीकी बात सुनकर अच्युतभगवान् ने शूरनन्दन वसुदेवजीको (अपनेको नन्दके घर पहुँचा देनेकी) आज्ञा देकर उस रूपका संवरण कर लिया । (तब वसुदेवजी उन्हें नन्दगोपके घर ले गये और) उन्हें नन्दगोपके हाथमें समर्पित करके यों बोले— 'सखे ! इस (बालक)की रक्षा करो, इससे यदुवंशियोंका सब प्रकारसे कल्याण होगा । देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुआ यह बालक कंसका वध करेगा' ॥ १—६ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! ये वसुदेव कौन थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और जिन्हें भगवान् 'तात-पिता' कहकर पुकारते थे तथा यशस्विनी देवकी कौन थीं, जिन्होंने भगवान्को अपने गर्भसे जन्म दिया ? साथ ही ये नन्दगोप कौन थे तथा महाब्रतपरायणा यशोदा कौन थीं, जिन्होंने बालकरूपमें भगवान्का पालन-पोषण किया ? ॥ ७-८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पुरुष (वसुदेवजी) कश्यप हैं और उनकी प्रिय पत्नी देवकी अदिति (प्रकृति) कही गयी हैं । कश्यप ब्रह्माके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका । देवकी देवीने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वरसे जो कामनाएँ की थीं, उन सभी कामनाओंको महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दिया । वे ही योगात्मा भगवान् योगमायाके आश्रयसे समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए मानव-शरीर धारण करके भूतलपर अवतीर्ण हुए । उस समय धर्मका हास हो चुका था, अतः धर्मकी स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके लिये उन सामर्थ्यशाली विष्णुने वृष्णिकुलमें जन्म धारण किया । रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्रजितकी कन्या सत्या, सुभामा, शैव्या, गान्धारराजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, मद्राजकुमारी कौसल्या तथा विजया आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ थीं । रुक्मिणीने ग्यारह पुत्रोंको जन्म दिया; जो सभी युद्धकर्ममें निष्णात थे । उनके नाम

सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च।  
परशुं चारुगुं च चारुभद्रं सुचारुकम्।  
चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा ॥ १६  
जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भरतेक्षणः।  
रोहितो दीसिमांश्चैव ताम्रश्वको जलंधमः ॥ १७  
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारस्तु यवीयसीः।  
जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ॥ १८  
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रविन्दा वराङ्ग्ना।  
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्रजित्याः प्रजा हि सा ॥ १९  
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत।  
शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः ॥ २०  
अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा।  
लक्ष्मेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः ॥ २१  
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च।  
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषणसुतावुभौ ॥ २२  
प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्थ्या बुद्धिसत्तमः।  
अनिरुद्धो रणोऽरुद्धो जज्ञेऽस्य मृगकेतनः ॥ २३  
काश्या सुपार्श्वतनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः।  
सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः ॥ २४  
तिस्त्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।  
षष्ठिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २५  
देवांशाः सर्वं एवेह ह्युत्पन्नास्ते महौजसः।  
देवासुरे हता ये च त्वसुरा ये महाबलाः ॥ २६  
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्।  
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले ॥ २७  
कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्।  
सर्वमेतत् कुलं यावद् वर्तते वैष्णवे कुले ॥ २८  
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।  
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ॥ २९

हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, भद्रचारु, सुदेष्ण, भद्र, परशु, चारुगुप्त, चारुभ्रद, सुचारुक और सबसे छोटा चारुहास। रुक्मिणीसे एक चारुमती नामकी कन्या भी उत्पन्न हुई थी ॥ ९—१६ ॥

सत्यभामाके गर्भसे भानु भ्रमरतेक्षण, रोहित, दीसिमान्, ताम्र, चक्र और जलन्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनकी चार छोटी बहनें भी पैदा हुई थीं। जाम्बवतीके संग्रामशोभी साम्ब नामक पुत्र पैदा हुआ। श्रेष्ठ सुन्दरी मित्रविन्दाने मित्रवान् और मित्रविन्दको तथा नाग्रजिती सत्याने मित्रबाहु और सुनीथको पुत्ररूपमें जन्म दिया। इसी प्रकार अन्य पलियोंसे भी हजारों पुत्रोंकी उत्पत्ति समझ लीजिये। द्विजवरो! इस प्रकार उन बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके पुत्रोंकी संख्या एक करोड़ एक लाख अस्सी हजार बतलायी गयी है। उपासङ्गके दो पुत्र वज्र और संक्षिप्त थे। भूरीन्द्रसेन और भूरि—ये दोनों गवेषणके पुत्र थे। प्रद्युम्नके विदर्भ-राजकुमारीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो परम बुद्धिमान् एवं युद्धमें उत्साहपूर्वक लड़नेवाला वीर था। अनिरुद्धके पुत्रका नाम मृगकेतन था। पार्श्वनन्दिनी काश्याने साम्बके संयोगसे ऐसे पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, जो तरस्वी (एवं फुर्तीले), सत्यवादी, देवोंके समान सौन्दर्यशाली और शूरवीर थे। इस प्रकार प्रबल शूरवीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ थी, उनमें साठ लाख तो महाबली और महान् पराक्रमी थे। ये सभी महान् ओजस्वी यादव देवताओंके अंशसे ही भूतलपर उत्पन्न हुए थे। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे ही भूतलपर मानव-योनिमें उत्पन्न होकर सभी मानवोंको कष्ट दे रहे थे। उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए। इन महाभाग यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। ये सब-के-सब कुल विष्णुसे सम्बन्धित कुलके अंदर ही वर्तमान थे। भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) उनके नेता और स्वामी थे तथा वे सभी यादव श्रीकृष्णकी आज्ञाके अधीन रहते थे—ऐसा कहा जाता है ॥ १७—२९ ॥

ऋषय ऊचुः

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिचरस्तथा \* ।  
 शालङ्किनारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा ॥ ३०  
 आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः ।  
 किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति ॥ ३१  
 भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः ।  
 ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥ ३२  
 यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ट्यन्धकोत्तमः ।  
 पुनः पुनर्मनुष्येषु तत्रः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३३

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते ।  
 युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः ॥ ३४

देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः ।  
 हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति ॥ ३५

बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात् ।  
 सख्यमासीत् परमकं देवानामसुरैः सह ॥ ३६

युगाख्यासुरसम्पूर्णं ह्यासीदत्याकुलं जगत् ।  
 निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम् ॥ ३७

मृधो बलिविमर्दाय सम्प्रवृद्धः सुदारुणः ।  
 देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान् ॥ ३८

कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह ।  
 भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ॥ ३९

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान् स्वतः ।  
 देवासुरं यथा वृत्तं तत्रः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ४०

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तु सुदारुणाः ।  
 वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः ॥ ४१

ऋषियोने पूछा—सूतजी ! सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालङ्कि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सबके साथ आदिदेव भगवान् विष्णु संघबद्ध होकर किसलिये अवतीर्ण होते हैं ? इन महापुरुषके कितने अवतार होनेवाले हैं ? ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके थक जानेपर ये किस कारण भूतलपर उत्पन्न होते हैं ? वृष्णि और अन्धकवंशमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु (श्रीकृष्ण) जिस प्रयोजनसे भूतलपर बारंबार मानव-योनिमें प्रकट होते हैं, वह सभी कारण हम सब प्रश्नकर्ताओंको बतलाइये ॥ ३०—३३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! युग-युगमें जब लोग धर्मसे विमुख हो जाते हैं तथा शुभ कर्मोंमें विशेषरूपसे शिथिलता आ जाती है, तब भगवान् विष्णु अपने दिव्य शरीरका त्यागकर भूतलपर मानव-योनिमें प्रकट होते हैं । पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके त्रिलोकीका शासन करते समय देवासुर-संग्रामके अवसरपर भगवान् श्रीहरि अवतीर्ण हुए थे । इसी प्रकार क्रमशः जब बलि तीनों लोकोंपर अधिष्ठित था, उस समय देवताओंकी असुरोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी थी । ऐसा समय एक युगतक चलता रहा । उस समय सारा जगत् असुरोंसे व्यास होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा था । देवता और असुर—दोनों समानरूपसे उसकी आज्ञाके अधीन थे । अन्तमें (बलि-बन्धनके समय) बलिका विमर्दन करनेके लिये देवताओं और असुरोंके बीच अत्यन्त भयंकर एवं महान् विनाशकारी घोर संग्राम प्रारम्भ हो गया । तब भगवान् विष्णु धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये तथा देवताओं और असुरोंके प्रति दिये गये भृगुके शापके कारण पृथ्वीपर मानव-योनिमें उत्पन्न हुए ॥ ३४—३९ ॥

ऋषियोने पूछा—सूतजी ! उस समय भगवान् विष्णु देवताओं और असुरोंके लिये अपने-आप इस अवताररूप कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुए थे ? तथा वह देवासुरसंग्राम जिस प्रकार हुआ था ? वह सब हमलोगोंको बतलाइये ॥ ४० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें वराह आदि बारह अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम भागप्राप्तिके निमित्त हुए थे ।

\* वायुपुराण १७ । ३ आदिमें मणिकर और मणिरथ पाठ है, सबका भाव 'मणिभद्र' से ही है।

नामतस्तु समासेन शृणु तेषां विवक्षतः।  
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥ ४२

देवासुरक्षयकरा: प्रजानां तु हिताय वै।  
तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः।  
संग्रामः पञ्चमश्चैव संजातस्तारकामयः ॥ ४३

षष्ठो ह्याढीवकाख्यस्तु सप्तमस्त्रैपुरस्तथा।  
अन्धकाख्योऽष्टमस्तेषां नवमो वृत्रघातकः ॥ ४४

धात्रश्च दशमश्चैव ततो हालाहलः स्मृतः।  
प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा ॥ ४५

हिरण्यकशिपुर्देत्यो नारसिंहेन पातितः।  
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा ॥ ४६

हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते तु दैवतैः।  
दंष्ट्र्या तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः ॥ ४७

प्रहादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने।  
विरोचनस्तु प्राहादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः ॥ ४८

इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये।  
अशक्नुवन् स देवानां सर्वं सोङुं सदैवतम् ॥ ४९

निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये त्र्यम्बकेण तु।  
असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चान्धकाहवे ॥ ५०

हता देवमनुष्ये स्वे पितृभिश्चैव सर्वशः।  
सम्पृक्तो दानवैर्वृत्रो घोरो हालाहले हतः ॥ ५१

तदा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्तितः।  
हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाच्छन्नस्तु योगवित्।  
ध्वजलक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः ॥ ५२

ये सभी युद्ध शण्डामर्कके पौरोहित्यकालमें घटित हुए बतलाये जाते हैं। मैं संक्षेपमें नामनिर्देशानुसार उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। प्रथम युद्ध नरसिंह (नृसिंहावतार)में, दूसरा वामन, तीसरा वाराह (वराहावतार)-में और चौथा अमृत-मन्थनके अवसरपर हुआ था। पाँचवाँ तारकामय संग्राम घटित हुआ था। इसी प्रकार छठा युद्ध आडीवक, सातवाँ त्रैपुर (त्रिपुरसम्बन्धी), आठवाँ अन्धक, नवाँ वृत्रघातक, दसवाँ धात्र (या वार्त्र), ग्यारहवाँ हालाहल और बारहवाँ भयंकर संग्राम कोलाहलके नामसे विख्यात हैं। (इन संग्रामोंमें) भगवान् विष्णुने दैत्यराज हिरण्यकशिपुको नृसिंह-रूप धारण करके मार डाला था। पूर्वकालमें त्रिलोकीको नापते समय भगवान् वामन-रूपसे बलिको बाँध लिया था। देवताओंके साथ भगवान् वराहका रूप धारण करके द्वन्द्व-युद्धमें अपनी दाढ़ोंसे हिरण्याक्षको विदीर्ण कर मार डाला था और समुद्रको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था। अमृत-मन्थनके अवसरपर घटित हुए युद्धमें इन्द्रने प्रह्लादको पराजित किया था। उससे अपमानित होकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचन नित्य इन्द्रका वध करनेकी ताकमें लगा रहता था। वह पृथक्-पृथक् देवोंको तथा पूरे देवसमाजको सहन नहीं कर पाता था, किंतु इन्द्रने तारकामय युद्धमें पराक्रम प्रकट करके उसे यमलोकका पथिक बना दिया। त्रिलोकीमें जितने दानव, असुर और पिशाच थे, वे सभी शंकरजीद्वारा अन्धक नामक युद्धमें मौतके घाट उतारे गये। उस युद्धमें देवता, मनुष्य और पितृगण भी सब ओरसे सहायक-रूपमें उपस्थित थे। दानवोंसे घिरा हुआ भयंकर वृत्रासुर हालाहल-युद्धमें मारा गया था।\* तत्पश्चात् इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे विप्रचित्तिको युद्धसे विमुख कर दिया, परंतु योगका ज्ञाता विप्रचित्ति अपनेको मायासे छिपाकर ध्वजरूपमें परिणत कर दिया, फिर भी इन्द्रने ध्वजमें छिपे होनेपर भी अनुज-समेत उसका सफाया कर दिया। इस प्रकार देवोंकी सहायतासे इन्द्रने कोलाहल नामक युद्धमें संगठित होकर आये हुए सभी पराक्रमी दानवों और दैत्योंको पराजित किया था। (ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धके उपरान्त देवताओंने किसी यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस) यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर अवभृथ-स्नानके

\* इसके ९ से ११ वीं संख्यातकके निर्दिष्ट संग्राम वृत्र-इन्द्र-विष्णु-युद्धसे ही सम्बद्ध दीखते हैं।

दैत्यांश्च दानवांश्चैव संयतान् किल संयुतान्।  
जयन् कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतो वृषा॥५३  
यज्ञस्यावभृथे दृश्यौ शण्डामकौ तु दैवतैः।  
एते देवासुरे वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु॥५४  
हिरण्यकशिष्यौ राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ॥५५  
द्विसप्ति तथान्यानि नियुतान्यधिकानि च।  
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः॥५६  
पर्यायेण तु राजाभूद् बलिर्वर्षायुतं पुनः।  
षष्ठिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः॥५७  
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह।  
तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह॥५८  
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः।  
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः॥५९  
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते।  
असपलमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः॥६०  
प्रह्लादस्य हते तस्मिस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्।  
पर्यायेण तु सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने।  
ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत॥६१  
यज्ञे देवानथ गतान् दितिजाः काव्यमाह्वयन्।  
किं त्वं नो मिष्टां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुर्णातः॥६२  
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्।  
एवमुक्तोऽब्रवीद् दैत्यान् विषणान् सान्त्वयन् गिरा॥६३  
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः।  
मन्त्राशौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम्॥६४  
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै।  
तत् सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थं धृता मया॥६५

समय शण्ड और अमर्क नामक दोनों दैत्यपुरोहित देवताओंके दृष्टिगोचर हुए थे। इस प्रकार ये बारह युद्ध देवताओं और असुरोंके बीच घटित हुए थे, जो देवताओं और असुरोंके विनाशक और प्रजाओंके लिये हितकारी थे॥४१—५४॥

पूर्वकालमें राजा हिरण्यकशिष्यु एक अरब सात करोड़ बीस लाख अस्सी हजार वर्षोंतक त्रिलोकीके ऐश्वर्यका उपभोग करता हुआ (सिंहासनपर) विराजमान था। तदनन्तर पर्यायक्रमसे बलि राजा हुए। इनका शासनकाल दो करोड़ सत्तर हजार वर्षोंतक था। जितने समयतक बलिका शासनकाल था, उतने कालतक प्रह्लाद अपने अनुयायी असुरोंके साथ निवृत्तिमार्गपर अवलम्बित रहे। इन महान् ओजस्वी तीनों दैत्योंको असुरोंका इन्द्र (अध्यक्ष) जाना चाहिये। इस प्रकार दस युगपर्यन्त यह सारा विश्व दैत्योंके अधीन था। पुनः कालक्रमानुसार गत युद्धमें प्रह्लादके मारे जानेपर पर्याय-क्रमसे त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके हाथोंमें आ गया। उस समय दस युगातक यह विश्व शत्रुहीन था, तब इन्द्र निश्चिन्तापूर्वक त्रिलोकीका पालन कर रहे थे। उसी समय शुक्राचार्य असुरोंका परित्याग कर एक देवयज्ञमें चले आये। इस प्रकार यज्ञके अवसरपर शुक्राचार्यको देवताओंके पक्षमें गया हुआ देखकर दैत्योंने शुक्राचार्यको उपालम्भ देते हुए कहा—‘गुरुदेव! आप हमलोगोंके देखते-देखते हमारे राज्यको छोड़कर देवताओंके यज्ञमें क्यों चले गये? अब हमलोग यहाँ किसी प्रकार ठहर नहीं सकते, अतः रसातलमें प्रवेश कर जायँगे।’ दैत्योंके इस प्रकार गिङ्गिङ्गिनेपर शुक्राचार्य उन दुःखी दैत्योंको मधुर वाणीसे सान्त्वना देते हुए बोले—‘असुरो! तुमलोग डरो मत, मैं अपने तेजोबलसे पुनः तुमलोगोंको धारण करूँगा अर्थात् अपनाऊँगा; क्योंकि त्रिलोकीमें जितने मन्त्र, ओषधि, रस और धन-सम्पत्ति हैं, वे सब-के-सब मेरे पास हैं।\* इनका चतुर्थांश ही देवोंके अधिकारमें है। मैं वह सारा-कासारा तुमलोगोंको प्रदान कर दूँगा; क्योंकि तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने उन्हें धारण कर रखा है’॥५५—६५॥

\* महाभारत उद्योगपर्व तथा भीष्मपर्व ६। २२-२३ में भी शुक्रको ही धन-रत्नोंका अधिकारी कहा गया है।

ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृत्तान् काव्येन धीमता ।  
 सम्पन्नयन्ति देवा वै संविज्ञास्तु जिघृक्षया ॥ ६६  
 काव्यो ह्रेष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात् ।  
 साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाध्यापयिष्यति ॥ ६७  
 प्रसह्य हृत्वा शिष्ठांस्तु पातालं प्रापयामहे ।  
 ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्य ह ॥ ६८  
 ततस्ते वध्यमानास्तु काव्यमेवाभिदुद्गुवुः ।  
 ततः काव्यस्तु तान् दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्गुतान् ॥ ६९  
 रक्षां काव्येन संहृत्य देवास्तेऽप्यसुरार्दिताः ।  
 काव्यं दृष्ट्वा स्थितं देवा निःशङ्कमसुरा जहुः ॥ ७०  
 ततः काव्योऽनुचिन्त्याथ ब्राह्मणो वचनं हितम् ।  
 तानुवाच ततः काव्यः पूर्वं वृत्तमनुस्मरन् ॥ ७१  
 त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः ।  
 बलिर्वद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ॥ ७२  
 महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु शरैर्हताः ।  
 तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठं निहता वः प्रथानतः ॥ ७३  
 किञ्चिच्छिष्ठास्तु यूर्यं वै युद्धं मास्त्वति मे मतम् ।  
 नीतयो वोऽभिधास्यामि तिष्ठृत्वं कालपर्ययात् ॥ ७४  
 यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयावहम् ।  
 अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात् ।  
 युध्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्यथ वै जयम् ॥ ७५  
 ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्तदासुराः ।  
 न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसंनाहा रथैर्विना ॥ ७६  
 वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने ।  
 प्रहादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत् ॥ ७७  
 ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते ।  
 न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ॥ ७८

तदनन्तर जब देवताओंने देखा कि बुद्धिमान् शुक्राचार्यने पुनः असुरोंका पक्ष ग्रहण कर लिया है, तब विचारशील देवगण समग्र राज्य ग्रहण करनेके विषयमें मन्त्रणा करते हुए कहने लगे—‘भाइयो ! ये शुक्राचार्य हमलोगोंके सभी कार्योंको बलपूर्वक उलट-पलट देंगे, अतः ठीक तो यही होगा कि जबतक ये उन असुरोंको सिखा-पढ़ाकर बली नहीं बना देते, उसके पूर्व ही हमलोग यहाँसे शीघ्र चलें और उन्हें बलपूर्वक मार डालें तथा बचे हुए लोगोंको पातालमें भाग जानेके लिये विवश कर दें।’ ऐसा परामर्श करके देवगण दानवोंके निकट जाकर उनपर टूट पड़े। इस प्रकार अपना संहार होते देखकर असुरण शुक्राचार्यकी शरणमें भाग चले। तब शुक्राचार्यने असुरोंको देवताओंद्वारा खदेड़ा गया देखकर तुरंत ही उनकी रक्षाका विधान किया। इससे उलटे देवता ही असुरोंद्वारा पीड़ित किये जाने लगे। तब देवगण वहाँ शुक्राचार्यको निःशङ्क भावसे स्थित देखकर असुरोंके सामनेसे हट गये। तदनन्तर ब्राह्मण शुक्राचार्य पूर्वमें घटित हुए वृत्तान्तका स्मरण करते हुए बहुत सोच-विचारकर असुरोंसे हितकारक वचन बोले—‘असुरो ! वामनद्वारा अपने तीन पगोंसे (बलिद्वारा शासित) सम्पूर्ण त्रिलोकीका राज्य छीन लिया गया, बलि बाँध लिया गया, जम्भासुरका वध हुआ और विरोचनका भी निधन हुआ। इस प्रकार बारहों युद्धोंमें तुमलोगोंमें जो प्रधान-प्रधान महाबली असुर थे, वे सभी देवताओंद्वारा तरह-तरहके उपायोंका आश्रय लेकर मार डाले गये। अब थोड़ा-बहुत तुमलोग शेष रह गये हो, अतः मेरा विचार है कि अभी तुमलोग युद्ध बंद कर दो और कालके विपर्ययको देखते हुए चुपचाप शान्त हो जाओ। पीछे मैं तुमलोगोंको नीति बतलाऊँगा। मैं आज ही विजय प्रदान करनेवाले मन्त्रकी प्राप्तिके लिये महादेवजीके पास जा रहा हूँ। जब मैं देवाधिदेव महेश्वरसे उन अमोघ मन्त्रोंको प्राप्त करके लौटूँ, तब पुनः मेरे सहयोगसे तुमलोग देवताओंके साथ युद्ध करना, उस समय तुम्हें विजय प्राप्त होगी’— ॥ ६६—७५ ॥

इस प्रकार परस्पर युद्धविषयक परामर्श करके उन असुरोंने देवताओंके पास जाकर कहा—‘देवगण ! इस समय हम सभी लोगोंने अपने शस्त्रास्त्रोंको रख दिया है, कवचोंको उतार दिया है और रथोंको छोड़ दिया है। अब हमलोग वल्कल-वस्त्र धारण करके वनमें छिपकर तपस्या करेंगे।’ सत्यवादी प्रह्लादके उस सत्य वचनको सुनकर तथा दैत्योंके शस्त्रास्त्र रख देनेपर देवतालोग प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता नष्ट हो गयी और वे युद्धसे विरत

ततस्तानब्रवीत् काव्यः कञ्जित्कालमुपास्यथ ।  
निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम् ॥ ७९

पितुर्माश्रमस्था वै मां प्रतीक्षथ दानवाः ।  
तत्संदिश्यासुरान् काव्यो महादेवं प्रपद्यत ॥ ८०

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ ।  
पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च ॥ ८१

एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो व्रतं त्वं चर भार्गव ।

पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः ।  
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्यसि ॥ ८२

तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः ।

पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद् वचः ।  
व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो ॥ ८३

ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत् ।

तदा तस्मिन् गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै ।  
मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥ ८४

तद बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदा सुरैः ।

अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद् देवास्तान् समुपाद्रवन् ॥ ८५

दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ८६

दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः ।

उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान् वचोऽब्रुवन् ॥ ८७

न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते ।

दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं सम्प्राप्ता नो जिघांसया ॥ ८८

अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः ।

चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ ८९

रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन ।

अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम् ॥ ९०

हो गये । युद्ध बंद हो जानेपर शुक्राचार्यने असुरोंसे कहा—‘दानवो ! तुमलोग अपने अभिमान आदि कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर तपस्यामें लग जाओ और कुछ कालतक उपासना करो; क्योंकि काल ही अभीष्ट कार्यका साधक होता है । इस प्रकार तुमलोग मेरे पिताजीके आश्रममें निवास करते हुए मेरे लौटेनेकी प्रतीक्षा करो ।’ असुरोंको ऐसी शिक्षा देकर शुक्राचार्य महादेवजीके पास जा पहुँचे (और उनसे निवेदन करने लगे) ॥ ७६—८० ॥

शुक्राचार्यने कहा—‘देव ! मैं देवताओंके पराभव तथा असुरोंकी विजयके लिये आपसे उन मन्त्रोंको जानना चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके पास नहीं हैं ।’ ऐसा कहे जानेपर महादेवजीने कहा—‘भार्गव ! तुम्हारा कल्याण हो । इसके लिये तुम्हें कठोर व्रतका पालन करना पड़ेगा । यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्षोंतक नीचा सिर करके कनीके धुएँका पान करोगे, तब कहीं तुम्हें उन मन्त्रोंकी प्राप्ति हो सकेगा ।’ तब भृगुनन्दन शुक्रने महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—‘देव ! ठीक है, मैं वैसा ही करूँगा । प्रभो ! मैं आजसे ही आपके आदेशानुसार ब्रतपालनमें लग रहा हूँ ।’ इस प्रकार महादेवजीसे विदा होकर शुक्राचार्य धूमको उत्पन्न करनेवाले कुण्डधार यक्षके निकट गये और असुरोंके हितार्थ मन्त्रप्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक महेश्वरके आश्रममें निवास करने लगे । तदनन्तर जब देवताओंको यह जात हुआ कि असुरोंद्वारा राज्य छोड़नेमें ऐसी कूटनीति और यह छिद्र था, तब वे अमर्षसे भर गये; फिर तो वे संगठित हो कवच धारणकर हथियारोंसे सुसज्जित हो बृहस्पतिजीको आगे करके असुरोंपर टूट पड़े ॥ ८१—८६ ॥

इस प्रकार पुनः देवताओंको आयुध धारण करके आक्रमण करते देख असुरगण सहस्रा भयभीत होकर उठ खड़े हुए और देवताओंसे बोले—‘देवगण ! हमलोगोंने शस्त्रास्त्र रख दिया है, आपलोगोंद्वारा हमें अभयदान मिल चुका है, मेरे गुरुदेव इस समय ब्रतमें स्थित हैं—ऐसी परिस्थितिमें अभय—दान देकर भी आपलोग हमारा वध करनेकी इच्छासे क्यों आये हैं ? इस समय हमलोग बिना गुरुके हैं, शस्त्रास्त्रोंका परित्याग करके निहत्थे खड़े हैं, तपस्वियोंकी भाँति चीर और काला मृगचर्म धारण किये हुए हैं, निष्क्रिय और परिग्रहहरित हैं । ऐसी दशामें हम किसी प्रकार भी युद्धमें आप देवताओंको जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः बिना युद्ध किये ही काव्यकी माताकी शरणमें जा रहे हैं ।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

यापयामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः ।  
निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः ॥ ११

एवमुक्त्वासुरान्योऽन्यं शरणं काव्यमातरम् ।  
प्रापद्यन्त ततो भीतस्तेभ्योऽदादभ्यं तु सा ॥ १२

न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः ।  
मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति ॥ १३

तथा चाभ्युपन्नांस्तान् दृष्ट्वा देवास्ततोऽसुरान् ।  
अभिजग्मुः प्रसहैतानविचार्य बलाबलम् ॥ १४

ततस्तान् बाध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा ।  
देवी क्रुद्धाब्रवीद् देवाननिन्द्रान् वः करोम्यहम् ॥ १५

सम्भृत्य सर्वसम्भारानिन्द्रं साभ्यचरत् तदा ।  
तस्तम्भ देवी बलवद् योगयुक्ता तपोधना ॥ १६

ततस्तं स्तम्भितं दृष्ट्वा इन्द्रं देवाश्च मूकवत् ।  
प्राद्रवन्त ततो भीता इन्द्रं दृष्ट्वा वशीकृतम् ॥ १७

गतेषु सुरसंघेषु शक्रं विष्णुरभाषत ।  
मां त्वं प्रविश भद्रं ते नयिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥ १८

एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः ।  
विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत् ॥ १९

एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवन् बलात् ।  
मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम् ॥ २००

भयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू बभूवतुः ।  
कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥ २०१

इन्द्रोऽब्रवीजहि ह्येनां यावत्रौ न दहेत् प्रभो ।  
विशेषणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं जहि मा विरम् ॥ २०२

ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः ।  
अभिध्याय ततश्चक्रमापदुद्धरणे तु तत् ॥ २०३

वहाँ हमलोग इस विषम संकटके समयको तबतक व्यतीत करेंगे, जबतक हमारे गुरुदेव लौटकर आ नहीं जाते। गुरुदेव शुक्राचार्यके वापस आ जानेपर हमलोग कवच और शस्त्रास्त्रसे लैस होकर आपलोगोंके साथ युद्ध करेंगे। इस प्रकार भयभीत हुए असुरण परस्पर परामर्श करके शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें चले गये। तब उन्होंने असुरोंको अभयदान देते हुए कहा—‘दानवो! मत डरो, मत डरो, भय छोड़ दो। मेरे निकट रहते हुए तुमलोगोंको किसी प्रकारका भय नहीं प्राप्त हो सकता’॥८७—९३॥

तत्पश्चात् शुक्रमाताद्वारा असुरोंको सुरक्षित देखकर देवताओंने बलाबलका (कौन बलवान् है, कौन दुर्बल है—ऐसा) विचार न करके बलपूर्वक उनपर धावा बोल दिया। उस समय देवताओंद्वारा उन असुरोंको पीड़ित किया जाता हुआ देखकर (शुक्रमाता ख्याति) देवी क्रुद्ध होकर देवताओंसे बोलीं—‘मैं अभी-अभी तुमलोगोंको इन्द्र-रहित कर देती हूँ।’ उस समय उन तपस्विनी एवं योगिनी देवीने सभी सामग्रियोंको एकत्र करके अभिचार-मन्त्रका प्रयोग किया और बलपूर्वक इन्द्रको स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी इन्द्रको स्तम्भित हुआ देखकर देवगण मूक-से हो गये और इन्द्रको असुरोंके वशीभूत हुआ देखकर वहाँसे भाग खड़े हुए। देवगणके भाग जानेपर भगवान् विष्णुने इन्द्रसे कहा—‘सुरश्रेष्ठ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ, मैं तुम्हें यहाँसे अन्यत्र पहुँचा दूँगा।’ ऐसा कहे जानेपर इन्द्र भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार भगवान् विष्णुद्वारा इन्द्रको सुरक्षित देखकर (ख्याति) देवी कुपित होकर ऐसा वचन बोली—‘मघवन्! यह मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके देखते-देखते विष्णुसहित तुमको बलपूर्वक जलाये देती हूँ। तुम दोनों मेरे तपोबलको देखो’॥९४—१००॥

यह सुनकर वे दोनों देवता—इन्द्र और विष्णु भयभीत हो गये। तब विष्णुने इन्द्रसे कहा—‘हम दोनों एक साथ किस प्रकार (इस संकटसे) मुक्त हो सकेंगे?’ यह सुनकर इन्द्र बोले—‘प्रभो! जबतक यह हम दोनोंको जला नहीं देती है, उसके पूर्व ही आप इसे मार डालिये। मैं तो आपके द्वारा विशेषरूपसे अभिभूत हो चुका हूँ इसलिये आप ही इसका वध कर दीजिये, अब विलम्ब मत कीजिये।’ तब भगवान् विष्णु एक ओर उस देवीकी